नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 25

आगम १८

"जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः [३]

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

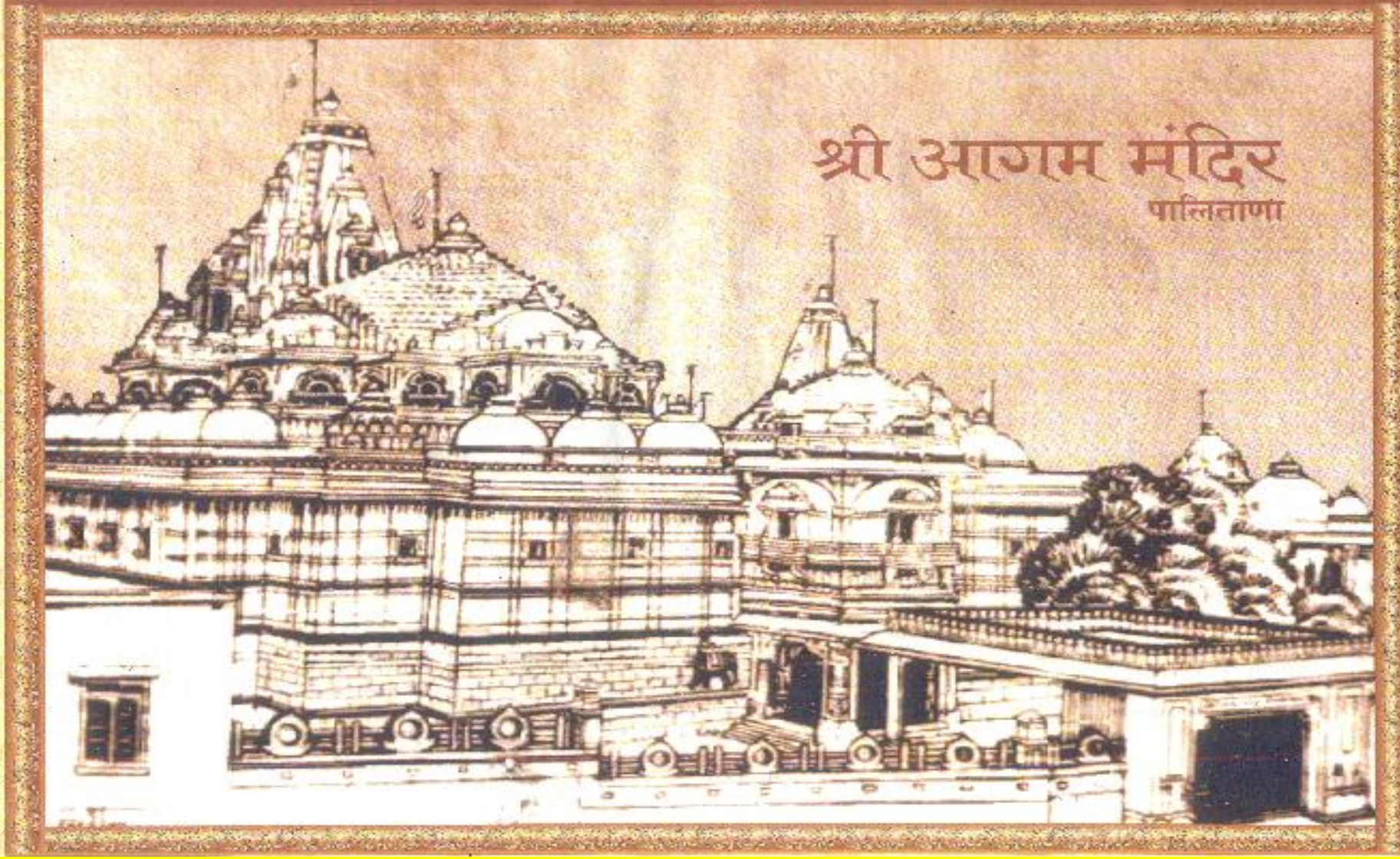

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

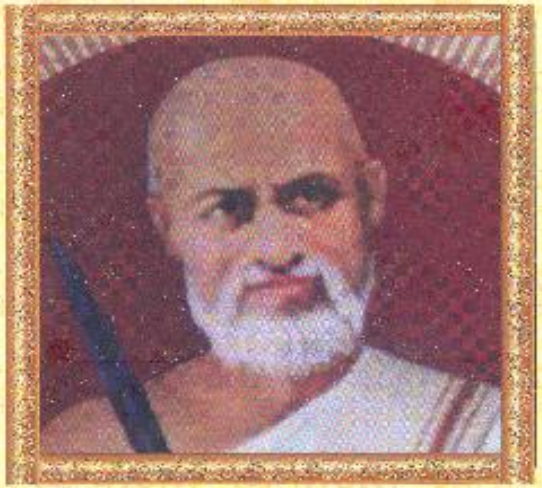

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

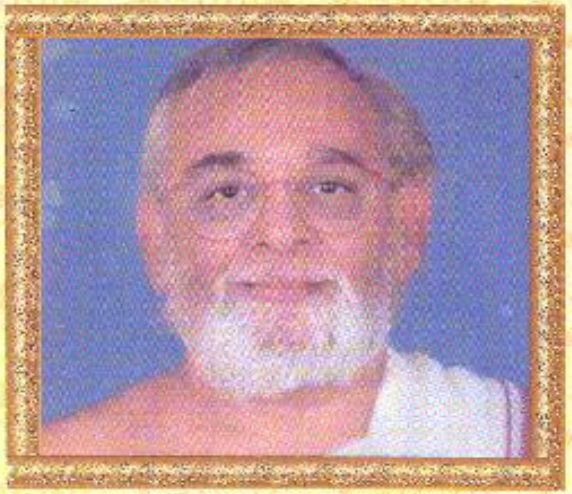

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-२५] श्री जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (उपांगसूत्रम्-७/३)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं एवं शान्तिचन्द्र विहिता वृत्ति:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ **मुनि दीपरत्नसागर** (M.Com., M.Ed., Ph.D.श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-२५

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
००१	वक्षस्कार: १		०५४	वक्षस्कार: ३		२१२	वक्षस्कार: ५	०११
	जंबूद्वीपस्य प्रमाण, संस्थान,			भरतनाम्नस्य हेतु, विनीतानगरी			जिनजन्माभिषेकस्य वर्णनं,	
	स्वरुप, जगति, गवाक्ष.			भरतचक्रवर्ती-वक्तव्यता,			दिक्कुमार्याणां वक्तव्यता,	
	पद्मवरवेदिका, वनखंड,			चक्ररत्नस्य उत्पत्ति,षटखंडयात्रा			इन्द्राणां आगमनम्, पण्डकवनं	
	विजयद्वार एवं राजधानी,			मागध-प्रभास-वरदानानां कथनं			-एवं अभिषेकशीला, सुघोषाघंटा	
	भरतक्षेत्रस्य स्थान, प्रमाण,			चतुर्दश-रत्नानि, रत्नानाम् कार्य				
	विभाग, दक्षिणार्धभरत			-एवं उत्पतिस्थानानि			वक्षस्कार: ६	०९५
	वैताढ्यपर्वत,			भरतचक्रवर्त्या: निधय:, देवा:		२४५	जम्बूद्वीपगता पदार्था:,	
	सिद्धायतनवर्णन			राजान:, सेना:, ग्रामाद्य: --			जम्बूद्वीपे स्थिता: वर्षक्षेत्रा:, -	
	उत्तरार्धभरत.			इत्यादि वर्णनं			-पर्वता:, कूटा:, तीर्थानि, गुफ़ा:,	
							द्रहा:, नद्य: आदि वक्तव्यता	
	.....			.....				
०२२	वक्षस्कार: २		१२७	वक्षस्कार: ४			वक्षस्कार: ७	१०९
	काल- अवसर्पिणि, उत्सर्पिणि,			चुल्लहिमवंत-वर्षधरपर्वत-वर्णनं,		२५०-	जम्बूद्वीपे अवस्थित चन्द्र -	
	औपमिककाल- पल्योपम, ...			पद्मद्रहवर्णनं, पद्मस्य कथनं,		-३६५	-सूर्य-नक्षत्र-तारादि वक्तव्यता,	
	सागरोपम, कल्पवृक्षवर्णन.			गंगा-सिंधु आदि नद्यानां वर्णनं,			सूर्यमंडल एवं तस्य आयामं,	
	कालस्य षड्विधत्व व तस्मिन्			सिद्धायतन-आदि कूटा:,			विष्कंभ:, परिधि:, अंतर आदि.	
	तस्मिन्काले वास्तव्या मनुष्या			हेमवन्त-हरिवर्ष-महाविदेह-कुरु-			चंद्रमंडल एवं तस्य आयामादि	
	कुलकर वक्तव्यता,			-रम्यक आदि क्षेत्राणां वर्णनं,			-वर्णनं, नक्षत्रमंडल-वक्तव्यता,	
	रुषभदेवस्य वर्णन,			निषध-नीलवंत-रुक्मि-हिमवंतादि			संवत्सराणां भेदा:,	
	नन्दीश्वरद्वीपे अष्टाह्निका-			-पर्वतानां वक्तव्यता,			तिर्थंकरआदि उत्तम पुरुषाणाम्	
	-महोत्सव, पंचभेदे मेघवर्षा			मेरुपर्वतस्य वर्णनं.			वक्तव्यता	

['जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति' - मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्रम्" के नामसे सन १९२० (विक्रम संवत १९७६) में 'देवचन्द्र-लालभाइ-जैनपुस्तकोद्धार' द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई , जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया , मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद् सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा , और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और श्रीमद्सागरानंदसूरिजी तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले , ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया , जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी , ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम , फिर वक्षस्कार और मूलसूत्र के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा वक्षस्कार एवं मूलसूत्र चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके , बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है , उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है , इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है , जिसमे प्रत्येक वक्षस्कार और मूलसूत्र लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है , जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है , जिसमे उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-२५ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

अथ पञ्चमो जिनजन्माभिषेकाख्यो वक्षस्कारः ।

सम्प्रति यदुक्तं पाण्डुकम्बलाशिलादौ सिंहासनवर्णनाधिकारे 'अत्र जिना अभिषिच्यन्ते' तत्सिंहावलोकनन्यायेनानुस्मरन् जिनजन्माभिषेकोत्सवर्णनार्थं प्रस्तावनासूत्रमाह—

जया णं एक्कमेक्के चक्कवट्टिविजए भगवन्तो तित्थयरा समुप्पज्जन्ति तेणं कालेणं तेणं समएणं अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं सएहिं २ भवणेहिं सएहिं २ पासायवडेंसएहिं पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरिआहिं सपरिवाराहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणिआहिवईहिं सोलसएहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि अ बहूहिं भवणवइवाणमन्तरेहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडाओ महया हयणट्टगीयवाइअ जाव भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति, तंजहा—भोगंकरा १ भोगवई २, सुभोगा ३ भोगमालिनी ४ । तोयधारा ५ विचित्ता य ६, पुप्फमाला ७ अणिंदिआ ८ ॥ १ ॥ तए णं तासिं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीणं मयहरिआणं पत्तेयं पत्तेअं आसणाइं चलंति, तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरिआओ पत्तेयं २ आसणाइं चलिआइं पासन्ति २ त्ता ओहिं पउंजंति पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएंति २ त्ता अण्णमण्णं सद्दाविंति २ त्ता एवं वयासी—उप्पण्णे खलु भो ! जम्बुद्दीवे दीवे भयवं ! तित्थयरे तं जीयमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरिआणं भगवओ ति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पञ्चम-वक्षस्कारः आरभ्यते

***जिनेश्वरस्य जन्म-अभिषेकस्य वर्णनं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

त्थगरस्स जम्मणमहिमं करेत्तए, तं गच्छामो णं अम्हेवि भगवओ जम्मणमहिमं करेमोत्तिकट्टु एवं वयंति २ त्ता पत्तेअं पत्तेअं आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठिअ० एवं विमाणवण्णओ भाणिअव्वो जाव जोअणविच्छिण्णं दिव्वं जाणविमाणं विउव्वित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह्त्ति । तए णं ते आभिओगा देवा अणेगखम्भसय जाव पच्चप्पिणंति, तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ हट्ठतुट्ठ० पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरिआहिं जाव अण्णेहिं बहूहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडाओ ते दिव्वे जाणविमाणे दुरूहंति दुरूहित्ता सव्विड्ढीए सव्वजुईए घणमुइंगपणवपच्चाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मणणगरे जेणेव तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवओ तित्थयस्स जम्मणभवणं तेहिं दिव्वेहिं जाणविमाणेहिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति करित्ता उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए ईसिं चउरंगुलमसंपत्ते धरणिअले ते दिव्वे जाणविमाणे ठविंति ठवित्ता पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअसहस्सीहिं जाव सद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहिंतो जाणविमाणेहिंतो पच्चोरुहंति २ त्ता सव्विड्ढीए जाव णाइएणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति २ त्ता पत्तेअं २ करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-णमोत्थु ते रयणकुच्छिधारिए जगप्पईवदाईए सव्वजगमंगलस्स चक्खुणो अ मुत्तस्स सव्वजगजीववच्छलस्स हिअकारगमग्गदेसियपाणिद्धिविभुपभुस्स जिणस्स णाणिस्स नायगस्स बुहस्स बोहगस्स [1]सव्वलोगनाहस्स निम्ममस्स पवरकुलसमुब्भवस्स जाईए

१ सव्वजगमंगलस्सेति प्राग्वत्, न चात्र पौनरुक्त्यं शङ्कनीयं, स्तुतौ तदभावात्, यदुक्तं–'सज्झाय०'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

स्वत्तिअस्स जंसि लोगुत्तमस्स जणणी धण्णासि तं पुण्णासि कयत्थासि अम्हे णं देवाणुप्पिए! अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो तण्णं तुब्भेहिं ण भाइव्वं इतिकट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निसरंति, तंजहा–रयणाणं जाव संवट्टगवाए विउव्वंति २ त्ता तेणं सिवेणं मउएणं माहएणं अणुद्धुएणं भूमितलविमलकरणेणं मणहरेणं सक्कोउअसुरहिकुसुमगन्धाणुवासिएणं पिण्डिमणिहारिमेणं गन्धुद्धुएणं तिरिअं पवाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स सव्वओ समन्ता जोअणपरिमण्डलं से जहा णामए कम्मगरदारए सिआ जाव तहेव जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइमचोक्खं पूइअं दुब्भिगन्धं तं सव्वं आहुणिअ २ एगन्ते एडेंति २ जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए अ अदूरसामन्ते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति । (सूत्रं ११२)

यदा–यस्मिन् काले एकैकस्मिन् चक्रवर्त्तिविजेतव्ये क्षेत्रखण्डे भरतैरावतादौ भगवन्तस्तीर्थकराः समुत्पद्यन्ते–जायन्ते तदाऽयं जन्ममहोत्सवः प्रवर्त्तते इति शेषः, अत्र च चक्रवर्त्तिविजये इत्यनेनाकर्मभूमिषु देवकुर्वादिषु जिनजन्मासम्भव इत्युक्तं भवति, एकैकस्मिन्नित्यत्र वीप्साकरणेन च सर्वत्रापि कर्मभूमौ जिनजन्मसम्भवश्च यथाकालमभिहित इति, तत्र चादौ षट्पञ्चाशतो दिक्कुमारीणामितिकर्त्तव्यता वक्तव्या, तत्राप्यधोलोकवासिनीनामष्टानामिति तासां स्वरूपमाह—'तेणं कालेणं'मित्यादि, तस्मिन् काले सम्भवज्जिनजन्मके भरतैरावतेषु तृतीयचतुर्थारकलक्षणे महावि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

देहेषु चतुर्थारकप्रतिभागलक्षणे, तत्र सर्वदापि तदाद्यसमयसदृशकालस्य विद्यमानत्वात् तस्मिन् समये–सर्वत्राप्यर्द्धरात्रलक्षणे, तीर्थकराणा हि मध्यरात्र एव जन्मसम्भवात्, अधोलोकवास्तव्याः–चतुर्णां गजदन्तानामधः समभूतलान्नवशतयोजनरूपां तिर्यग्लोकव्यवस्थां विमुच्य प्रतिगजदन्तं द्विद्विभावेन, तत्र भवनेषु वसनशीलाः, यत्तु गजदन्तानां षष्ठपञ्चमकूटेषु पूर्वं गजदन्तसूत्रे आसां वासः प्ररूपितस्तत्र क्रीडार्थमागमनं हेतुरिति, अन्यथा आसामपि चतुःशतयोजनादिपञ्चशतयोजनपर्यन्तोच्चत्वगजदन्तगिरिगतपञ्चशतिककूटगतप्रासादावतंसकवासित्वेन नन्दनवनकूटगतमेघङ्करादिदिक्कुमारीणामिवोर्ध्वलोकवासित्वापत्तिः। अथ प्रकृतं प्रस्तुमः, अष्टौ दिक्कुमार्यो–दिक्कुमारभवनपतिजातीया महत्तरिकाः–स्ववर्ग्येषु प्रधानतरिकाः स्वकेषु स्वकेषु कूटेषु–गजदन्तादिगिरिवर्त्तिषु स्वकेषु २ भवनेषु–भवनपतिदेवावासेषु स्वकेषु २ प्रासादावतंसकेषु–स्वस्वकूटवर्त्तिक्रीडावासेषु, सूत्रे च सप्तम्यर्थे तृतीया प्राकृतत्वात्, प्रत्येकं २ चतुर्भिः सामानिकानां–दिक्कुमारीसदृशद्युतिविभवादिकदेवानां सहस्रैः चतसृभिश्च महत्तरिकादिभिः–दिक्कुमारिकातुल्यविभवाभिस्ताभिरनतिक्रमणीयवचनाभिश्च स्वस्वपरिवारसहिताभिः सप्तभिरनीकैः–हस्त्यश्वरथपदातिमहिषगन्धर्वनाट्यरूपैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोडशभिरात्मरक्षकदेवसहस्रैरित्यादिकं सर्वं विजयदेवाधिकार इव व्याख्येयं, ननु कासाञ्चित् दिक्कुमारीणां व्यक्त्या स्थानाङ्गे पल्योपमस्थितेर्भणनात् समानजातीयत्वेनासामपि तथाभूतायुषः सम्भाव्यमानत्वाद् भवनपतिजातीयत्वं सिद्धं तेन भवनपतिजातीयानां वानमन्तरजातीयपरिकरः कथं सङ्गच्छते?, उच्यते, एतासां महर्द्धि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

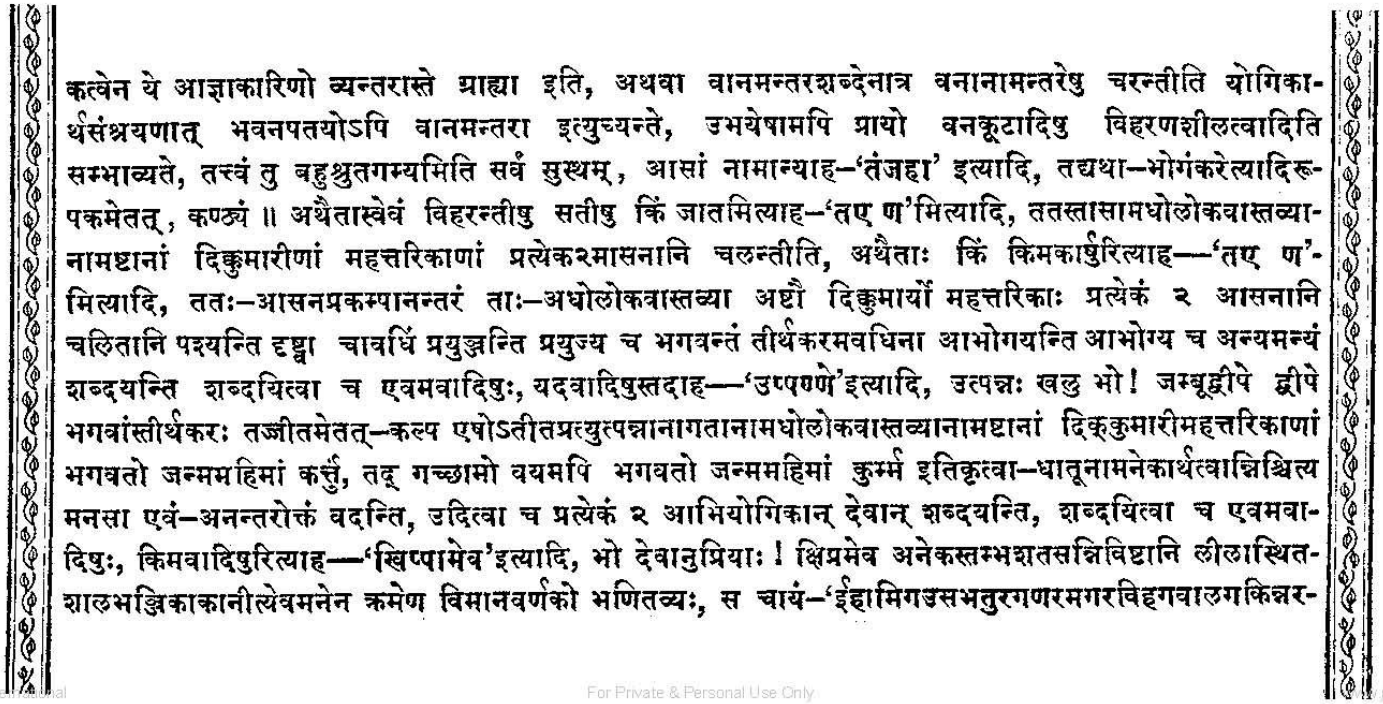

कत्वेन ये आज्ञाकारिणो व्यन्तरास्ते ग्राह्या इति, अथवा वानमन्तरशब्देनात्र वनानामन्तरेषु चरन्तीति योगिकार्थसंश्रयणात् भवनपतयोऽपि वानमन्तरा इत्युच्यन्ते, उभयेषामपि प्रायो वनकूटादिषु विहरणशीलत्वादिति सम्भाव्यते, तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्यमिति सर्वं सुस्थम्, आसां नामान्याह–'तंजहा' इत्यादि, तद्यथा–भोगंकरेत्यादिरूपकमेतत्, कण्ठ्यं ॥ अथैतास्वेवं विहरन्तीषु सतीषु किं जातमित्याह–'तए ण'मित्यादि, ततस्तासामधोलोकवास्तव्यानामष्टानां दिक्कुमारीणां महत्तरिकाणां प्रत्येकं२मासनानि चलन्तीति, अथैताः किं किमकार्षुरित्याह—'तए ण'मित्यादि, ततः–आसनप्रकम्पानन्तरं ताः–अधोलोकवास्तव्या अष्टौ दिक्कुमार्यो महत्तरिकाः प्रत्येकं २ आसनानि चलितानि पश्यन्ति दृष्ट्वा चावधिं प्रयुञ्जन्ति प्रयुज्य च भगवन्तं तीर्थकरमवधिना आभोगयन्ति आभोग्य च अन्यमन्यं शब्दयन्ति शब्दयित्वा च एवमवादिषुः, यदवादिषुस्तदाह—'उप्पण्णे'इत्यादि, उत्पन्नः खलु भो! जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवांस्तीर्थकरः तज्जीतमेतत्–कल्प एषोऽतीतप्रत्युत्पन्नानागतानामधोलोकवास्तव्यानामष्टानां दिक्कुमारीमहत्तरिकाणां भगवतो जन्ममहिमां कर्त्तुं, तद् गच्छामो वयमपि भगवतो जन्ममहिमां कुर्म्म इतिकृत्वा–धातूनामनेकार्थत्वान्निश्चित्य मनसा एवं–अनन्तरोक्तं वदन्ति, उदित्वा च प्रत्येकं २ आभियोगिकान् देवान् शब्दयन्ति, शब्दयित्वा च एवमवादिषुः, किमवादिषुरित्याह—'खिप्पामेव'इत्यादि, भो देवानुप्रियाः ! क्षिप्रमेव अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टानि लीलास्थितशालभञ्जिकाकानीत्येवमनेन क्रमेण विमानवर्णको भणितव्यः, स चायं–'ईहामिगउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिन्नर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

रुरुसरभचमरकुञ्जरवणलयपउमलयभत्तिचित्ते खंभुग्गयवइरवेइआपरिगयाभिरामे विज्जाहरजमलजुअलजन्तजुत्ते विव अच्चीसहस्समालिणीए रूवगसहस्सकलिए भिसमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोअणलेसे सुहफासे सस्सिरीअरूवे घंटावलि-अमहुरमणहरसरे सुभे कंते दरिसणिज्जे निउणोविअमिसिमिसेंतमणिरयणघंटिआजालपरिक्खित्ते'त्ति, कियत्पर्यन्त-मित्याह—यावद्योजनविस्तीर्णानि दिव्यानि यानाय–इष्टस्थाने गमनाय विमानानि अथवा यानरूपाणि–वाहनरूपाणि विमानानि यानविमानानि विकुर्वत–वैक्रियशक्त्या सम्पादयत विकुर्वित्वा च एनामाज्ञप्तिं प्रत्यर्पयत, अथ यानविमा-नवर्णकव्याख्या प्राग्वद् ज्ञेया, तोरणादिवर्णकेषु एतद्विशेषणगणस्य व्याख्यातत्वात्, ततस्ते किं चक्रुरित्याह—'तए ण'-मित्यादि' ततस्ते आभियोगिका देवा अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टानि यावदाज्ञां प्रत्यर्प्पयन्ति, अथैताः किं कुर्वन्तीत्याह—'तए णं ताओ'इत्यादि, ततस्ता अधोलोकवास्तव्या अष्टौ दिक्कुमारीमहत्तरिकाः हट्ठतुट्ठेत्याद्येकदेशदर्शनेन सम्पूर्ण आलापको ग्राह्यः, स चायं–हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिआ पीअमणा परमसोमणस्सिआ हरिसवसविसप्पमाणहिअया विअसिअ-वरकमलनयणा पचलिअवरकडगतुडिअकेऊरमउडकुण्डलहारविरायंतरइअवच्छा पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरा ससं-भमं तुरिअं चवलं सीहासणाओ अब्भुट्ठेन्ति २ त्ता पायपीढाओ पच्चोरुहन्ति २ त्ता' इति प्रत्येकं २ चतुर्भिः सामानिक-सहस्रैः चतसृभिश्च महत्तरिकाभिर्यावदन्यैर्बहुभिर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृताः तानि दिव्यानि यानविमानान्यारो-हन्ति, आरोहणोत्तरकालं येन प्रकारेण सूतिकागृहमुपतिष्ठन्ते तथाऽऽह—'दुरुहित्ता'इत्यादि, आरुह्य च सर्वर्द्ध्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वद्युत्या घनमृदङ्ग–मेघवद् गम्भीरध्वनिकं मृदङ्गं पणवो–मृत्पटहः, उपलक्षणमेतत् तेनान्येषामपि तूर्याणा संग्रहः, एतेषां प्रवादितानां यो रवस्तेन, तया उत्कृष्टया यावत्करणात् 'तुरिआए चवलाए' इत्यादिपदसंग्रहः प्राग्वत् देवगत्या यत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मनगरं यत्रैव च तीर्थकरस्य जन्मभवनं तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य च भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मभवनं तैर्दिव्यैर्यानविमानैस्त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणं कुर्वन्ति, त्रीन् वारान् प्रदक्षिणयन्तीत्यर्थः, त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य च उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे–ईशानकोणे ईषच्चतुरङ्गुलमसम्प्राप्तानि धरणितले तानि दिव्यानि यानविमानानि स्थापयन्तीति, अथ यच्चक्रुस्तदाह––'ठवित्ता'इत्यादि, स्थापयित्वा च प्रत्येकं २ अष्टावपीत्यर्थः चतुर्भिः सामानिकसहस्रैर्यावत् सार्द्धं सम्परिवृता दिव्येभ्यो यानविमानेभ्यः प्रत्यवरोहन्ति प्रत्यवरुह्य च सर्वर्द्ध्या यावच्छब्दात् सर्वद्युत्यादिपरिग्रहः कियत्पर्यन्तमित्याह––'संखपणवभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कमुरजमुइंगदुंदुहिनिग्घोसनाइएणं'ति, यत्रैव भगवांस्तीर्थकरमाता च तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकरमातरं च त्रिः प्रदक्षिणयन्ति त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य च प्रत्येकं करतलपरिगृहीतं शिरस्यावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवं–वक्ष्यमाणमवादिषुः, यदवादिषुस्तदाह–'नमोऽत्थु ते'इत्यादि, नमोऽस्तु ते–तुभ्यं रत्नं–भगवल्लक्षणं कुक्षौ धरतीति रत्नकुक्षिधारिके अथवा रत्नगर्भावद् गर्भधारकत्वेनापरस्त्रीकुक्षिभ्योऽतिशायित्वेन रत्नरूपां कुक्षिं धरतीति, शेषं तथैव, तथा जगतो–जगद्वर्त्तिजनानां सर्वभावानां प्रकाशकत्वेन प्रदीप इव प्रदीपो भगवान् तस्य दीपिके, सर्वजगन्मङ्गलभूतस्य चक्षुरिव चक्षुः सकलजगद्भावदर्शकत्वेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

तस्य, चः समुच्चये, चक्षुश्च द्रव्यभावभेदाभ्यां द्विधा, तत्राद्यं भावचक्षुरसहकृतं नार्थ(सर्व)प्रकाशकं तेन भावचक्षुषा भगवानुपमीयते, तच्चामूर्त्तमिति ततो विशेषमाह—मूर्त्तस्य–मूर्त्तिमतः चक्षुर्ग्राह्यस्येत्यर्थः, सर्वजगज्जीवाना वत्सलस्य–उपकारकस्य, उक्तार्थे विशेषणद्वारा हेतुमाह—हितकारको मार्गो–मुक्तिमार्गः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपस्तस्य देशिका–उपदेशिका उपदेशदर्शिकेत्यर्थः, तथा विश्वी–सर्वभाषानुगमनेन परिणमनात् सर्वव्यापिनी सकलश्रोतृजनहृदयसङ्क्रान्ततात्पर्यार्था एवंविधा वाग्ऋद्धिः–वाक्सम्पत्तस्याः प्रभुः–स्वामी सातिशयवचनलब्धिक इत्यर्थः, तस्य तथा, अत्र विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, जिनस्य–रागद्वेषजेतुः ज्ञानिनः–सातिशयज्ञानयुक्तस्य नायकस्य–धर्मवरचक्रवर्त्तिनः बुद्धस्य–विदिततत्त्वस्य बोधकस्य–परेषामावेदिततत्त्वस्य सकललोकनाथस्य–सर्वप्राणिवर्गस्य बोधिबीजाधानसंरक्षणाभ्यां योगक्षेमकारित्वात् निर्ममस्य–ममत्वरहितस्य प्रवरकुलसमुद्भवस्य जात्या क्षत्रियस्य एवंविधविख्यातगुणस्य लोकोत्तमस्य यत्त्वमसि जननी तत्त्वं धन्याऽसि पुण्यवत्यसि कृतार्थाऽसि, वयं हे देवानुप्रिये! अधोलोकवास्तव्या अष्टौ दिक्कुमारीमहत्तरिकाः भगवतो जन्ममहिमां करिष्यामस्तेन युष्माभिर्न भेतव्यं, असम्भाव्यमानपरजनापातेऽस्मिन् रहःस्थाने इमा विसदृशजातीयाः किमितिशङ्काकुलं चेतो न कार्यमित्यर्थः, अथैतासामितिकर्त्तव्यतामाह—'इतिकट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभाग'मित्यादि, इतिकृत्वा–प्रस्तावादित्युक्त्वा ता एवोत्तरपौरस्त्यं दिग्भागमपक्रामन्ति, अपक्रम्य च वैक्रियसमुद्घातेन समवघ्नन्ति समवहत्य च सङ्ख्यातानि योजनानि दण्डं निसृजन्ति, निसृज्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

च किं ताः कुर्वन्ति?, तदेवाह—तद्यथा रत्नानां यावत्पदात् ‘वइराणं वेरुलिआणं लोहिअक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोईरसाणं अंजणाणं पुलयाणं रयणाणं जायरूवाणं अंकाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेइ, अहासुहुमे पुग्गले परिआएइ, दुच्चंपि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणइ २ त्ता’ इति पदसंग्रहः, एतत्सविस्तरव्याख्या पूर्वं भरताभियोगिकदेवानां वैक्रियकरणाधिकारे कृता तेन ततो ग्राह्या, वाक्ययोजनार्थं तु किञ्चिल्लिख्यते, एषां रत्नानां बादरान् पुद्गलान् परिशाट्य सूक्ष्मान् पुद्गलान् गृह्णन्ति, पुनर्वैक्रियसमुद्घातपूर्वकं संवर्त्तकवातान् विकुर्वन्ति, बहुवचनं चात्र चिकीर्षितकार्यस्य सम्यक्सिद्ध्यर्थं पुनः पुनर्वातविकुर्वणाज्ञापनार्थं, विकुर्व्य च तेन—तत्कालविकुर्वितेन शिवेन—उपद्रवरहितेन मृदुकेन—भूमिसर्पिणा मारुतेन अनुद्भूतेन—अनूर्ध्वचारिणा भूमितलविमलकरणेन मनोहरेण सर्वर्तुकानां—षड्ऋतुसम्भवानां सुरभिकुसुमानां गन्धेनानुवासितेन पिण्डिमः—पिण्डितः सन् निर्हारिमो—दूरं विनिर्गमनशीलो यो गन्धस्तेन उद्धुरेण बलिष्ठेनेत्यर्थः तिर्यक्प्रवातेन—तिर्यक् वातुमारब्धेन भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मभवनस्य सर्वतो दिक्षु समन्ताद्विदिक्षु योजनपरिमण्डलं ‘से जहाणामए कम्मारदारए सिआ जाव’ इत्येतत्सूत्रैकदेशसूचितदृष्टान्तसूत्रान्तर्गतेन तहेवेति दार्ष्टान्तिकसूत्रबलादायातेन सम्मार्जतीतिपदेन सहान्वययोजना कार्या, तच्चेदं दृष्टान्तसूत्रं-से जहाणामए कम्मयरदारए सिआ तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपाए पिट्ठंतरोरुपरिणए घणनिचिअवट्टवलिअखंधे चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठिअसमाहयनिचिअगत्ते उरस्सबलसमण्णागए तलजमलजुअलपरिघबाहू लंघ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

णपवणजइणपमद्दणसमत्थे छेए दक्खे पट्ठे कुसले मेहावी निउणसिप्पोवगए एगं महंतं सिलागहत्थगं वा दंडसंपुच्छणिं वा वेणुसिलागिगं वा गहाय रायंगणं वा रायंतेउरं वा देवकुलं वा सभं वा पवं वा आरामं वा उज्जाणं वा अतुरिअमचवलमसंभंतं निरन्तरं सनिउणं सव्वओ समन्ता संपमज्जति' स यथानामको–यत्प्रकारनामकः कर्मदारकः स्याद्–भवेत्, आसन्नमृत्युर्हि दारको न विशिष्टसामर्थ्यभाग् भवतीत्यत आह—तरुणः–प्रवर्द्धमानवयाः, स च बलहीनोऽपि स्यादित्यत आह–बलवान्, कालोपद्रवोऽपि विशिष्टसामर्थ्यविघ्नहेतुरित्यत आह–युगं–सुषमदुष्षमादिकालः सोऽदुष्टो–निरुपद्रवो विशिष्टबलहेतुर्यस्यास्त्यसौ युगवान्, एवंविधश्च को भवति?–युवा–यौवनवयस्थः, ईदृशोऽपि ग्लानः सन् निर्बलो भवत्यतः अल्पातङ्कः, अल्पशब्दोऽत्राभाववचनः, तेन निरातङ्क इत्यर्थः, तथा स्थिरः–प्रस्तुतकार्यकरणेऽकम्पोऽग्रहस्तो–हस्ताग्रं यस्यासौ तथा, तथा दृढं–निबिडितरचयमापन्नं पाणिपादं यस्य स तथा, पृष्ठं–प्रतीतं अन्तरे–पार्श्वरूपे ऊरू–सक्थिनी एतानि परिणतानि–परिनिष्ठिततां गतानि यस्य स तथा, सुखादिदर्शनात् पाक्षिकः क्तान्तस्य परनिपातः अहीनाङ्ग इत्यर्थः, घननिचितौ–निबिडतरचयमापन्नौ वलितावित्र वलितौ हृदयाभिमुखौ जातावित्यर्थः वृत्तौ स्कन्धौ यस्य स तथा, तथा चर्मेष्टकेन–चर्मपरिणद्धकुट्टनोपगरणविशेषेण द्रुघणेन–घनेन मुष्टिकया च–मुष्ट्या समाहताःसमाहताः सन्तस्ताडितास्ताडिताः सन्तो ये निचिता–निबिडीकृताः प्रवहणप्रेष्यमाणवस्त्रग्रन्थकादयस्तद्वद् गात्रं यस्य स तथा, उरसि भवमुरस्यं ईदृशेन बलेन समन्वागतः–आन्तरोत्साहवीर्ययुक्तः तलौ–तालवृक्षौ तयोर्यमलं–समश्रेणीकं यद्युगलं–द्वयं परिघश्च–अर्गला तन्निभे–

॥३८७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

तत्सदृशे दीर्घसरलपीनत्वादिना बाहू यस्य स तथा लंघने–गर्त्तादेरतिक्रमे प्लवने–मनाक् विक्रमवति गमने जवने–अतिशीघ्रगमने प्रमर्दने–कठिनस्यापि वस्तुनश्चूर्णने समर्थः, छेकः–कलापण्डितः दक्षः–कार्याणामविलम्बितकारी प्रष्ठो–वाग्मी कुशलः–सम्यक्क्रियापरिज्ञानवान् मेधावी–सकृत्श्रुतदृष्टकर्मज्ञः 'निपुणशिल्पोपगतः' निपुणं यथा भवत्येवं शिल्पक्रियासु कौशलं उपगतः–प्राप्तः, एकं महान्तं शलाकहस्तकं–सरित्पर्णादिशलाकासमुदायं सरित्पर्णादिशलाकामयीं सम्मार्जनीमित्यर्थः वाशब्दा विकल्पार्थाः दण्डसंपुंछनीं–दण्डयुक्तां सम्मार्जनीं वेणुशलाकिकीं–वंशशलानिर्वृत्तां सम्मार्जनीं गृहीत्वा, राजाङ्गणं वा राजान्तःपुरं वा देवकुलं वा सभां वा, पुरप्रधानानां सुखनिवेशनहेतुमण्डपिकामित्यर्थः, प्रपां वा–पानीयशालां आरामं वा–दम्पत्योर्नगरासन्नरतिस्थानं उद्यानं वा–क्रीडार्थागतजनानां प्रयोजनाभावेनोर्ध्वावलम्बितयानवाहनाद्याश्रयभूतं तरुखण्डं अत्वरितमचपलमसम्भ्रान्तं, त्वरायां चापल्ये सम्भ्रमे वा सम्यक्कवचराद्यपगमासम्भवात्, तत्र त्वरा–मानसौत्सुक्यं चापल्यं–कायौत्सुक्यं सम्भ्रमश्च–गतिस्खलनमिति निरन्तरं न तु अपान्तरालमोचनेन सुनिपुणमल्पस्याप्यचोक्षस्यापसारणेन सम्प्रमार्जयेदिति, अथोक्तदृष्टान्तस्य दार्ष्टान्तिकयोजनायाह—तथैवैता अपि योजनपरिमण्डलं–योजनप्रमाणं वृत्तक्षेत्रं सम्मार्जयन्तीति–यत्तत्र योजनपरिमण्डले तृणं वा पत्रं वा काष्ठं वा कचवरं वा अशुचि–अपवित्रं अचोक्षं–मलिनं पूतिकं–दुरभिगन्धं तत्सर्वमाधूय २–सञ्चाल्य २ एकान्ते–योजनमण्डलादन्यत्र एडयन्ति–अपनयन्ति, अपनीयार्थात् संवर्त्तकवातोपशमं विधाय च यत्रैव भगवांस्ती-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१२--२१४]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥३८८॥

थंकरस्तीर्थंकरमाता च तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य च भगवतस्तीर्थंकरस्य तीर्थंकरमातुश्च नातिदूरासन्ने आगायन्त्य आ–ईषत्स्वरेण गायन्त्यः प्रारम्भकाले मन्दरस्वरेण गायमानत्वात् परिगायन्त्यो–गीतप्रवृत्तिकालानन्तरं तारस्वरेण गायन्त्यस्तिष्ठन्ति । अथोर्ध्वलोकवासिनीनामवसरः–

तेणं कालेणं तेणं समएणं उद्धलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं सएहिं २ भवणेहिं सएहिं २ पासायवडेंसएहिं पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं जाव विहरंति, तंजहा–मेहंकरा १ मेहवई २, सुमेहा ३ मेहमालिनी ४ । सुवच्छा ५ वच्छमित्ता य ६, वारिसेणा ७ बलाहगा ॥ १ ॥ तए णं तासिं उद्धलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरिआणं पत्तेअं २ आसणाइं चलन्ति, एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं भाणिअव्वं जाव अम्हे णं देवाणुप्पिए! उद्धलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ जेणं भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो तेणं तुब्भेहिं ण भाइअव्वं-तिकट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति २ त्ता जाव अब्भवद्दलए विउव्वन्ति २ त्ता जाव तं निहयरयं पट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति २ खिप्पामेव पचुवसमन्ति, एवं पुप्फवद्दलंसि पुप्फवासं वासंति वासित्ता जाव कालागुरुपवर जाव सुरवराभिगमणजोग्गं करेंति २ त्ता जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता जाव आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति (सूत्रं ११३)

'तेणं कालेण'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं ऊर्ध्वलोकवासित्वं चासां समभूतलात् पञ्चशतयोजनोच्चनन्दनवनगतपञ्चशतिकाष्टकूटवासित्वेन ज्ञेयं, नन्वधोलोकवासिनीनां गजदन्तगिरिगतकूटाष्टके यथा क्रीडानिमित्तको वासस्तथैव तासामप्यत्र

५वक्षस्कारे ऊर्ध्वलोक-दिक्कुमार्यु-त्सवः सू. ११३

॥३८८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११३] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१५--२१७]

भविष्यतीति चेत्, मैवं, यथाऽधोलोकवासिनीनां गजदन्तगिरीणामधो भवनेषु वासः श्रूयते तथैतासामश्रूयमाणत्वेन तत्र निरन्तरं वासस्ततश्चोर्ध्वलोकवासित्वं, ताश्चेमा नामतः पद्यबन्धेनाह–"मेघङ्करा १ मेघवती २ सुमेघा ३ मेघमालिनी ४ सुवत्सा ५ वत्समित्रा ६ चः समुच्चये वारिषेणा ७ बलाहका ८ ॥ १ ॥ अथ यत्तासां वक्तव्यं तदाह—'तए णं तासिं उद्धलोगवत्थव्वाण'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं तदेव पूर्ववर्णितं भणितव्यं, कियत्पर्यन्तमित्याह—'जाव अम्हे ण'मित्यादि, अत्र यावच्छब्दोऽवधिवाचको नतु संग्राहकः, 'अवक्कमित्ता जाव'त्ति अत्र यावत्पदात् 'वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता जाव दोच्चंपि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता' इति बोध्यम्, 'अब्भवादलकानि विकुर्वन्ति' अभ्रे–आकाशे वाः–पानीयं तस्य दलकानि अभ्रवार्दलकानि मेघानित्यर्थः, 'विउव्वित्ता जाव'त्ति अत्र यावत्करणादिदं दृश्यम्—'से जहाणामए कम्मारदारए जाव सिप्पोवगए एगं महंतं दगवारगं वा दगकुंभयं वा दगथालगं वा दगकलसं वा दगभिंगारं वा गहाय रायंगणं वा प०सभंता जाव समन्ता आवरिसिज्जा, एवमेव ताओवि उद्धलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ अब्भवद्दलए विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायंति २ त्ता खिप्पामेव विज्जुआयंति २ त्ता भगवओ तित्थगरस्स जम्मणभवणस्स सव्वओ समन्ता जोअणपरिमंडलं णिच्चोअगं णाइमट्टिअं पविरलपप्फुसिअं रयरेणुविणासणं दिव्वं सुरभिगन्धोदयवासं वासंति २,' अत्र व्याख्या—स यथा कर्मदारक इत्यादि प्राग्वत् व्याख्येयं, एकं महान्तं दकवारकं वा–मृत्तिकामयजलभाजनविशेषं दककुम्भकं वा–जलघटं दकस्थालकं वा–कांस्यादिमयं जलपात्रं दककलशं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११३] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१५--२१७]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३८९॥

वा जलभृंगारं वा गृहीत्वा राजाङ्गणं वा यावदुद्यानं वा आवर्षेत्–समन्तात् सिञ्चेत् एवमेता अपि उद्धलोगवत्थव्वाओ इत्यादि प्राग्वत्, क्षिप्रमेव 'पतणतणायन्ति'त्ति, अत्यन्तं गर्जन्तीत्यर्थः, गर्जित्वा च 'पविज्जआयन्ति'त्ति प्रकर्षेण विद्युतं कुर्वन्ति, कृत्वा च भगवत्तीर्थकरस्य जन्मभवनस्य सर्वतः समन्ताद्योजनपरिमण्डलं क्षेत्रं यावत्, अत्र नैरन्तर्ये द्वितीया, निरन्तरं योजनपरिमण्डलक्षेत्रे इत्यर्थः, नात्युदकं नातिमृत्तिकं यथा स्यात्तथा प्रकर्षेण यावता रेणवः स्थगिता भवन्ति तावन्मात्रेणोत्कर्षेणेति भावः, उक्तप्रकारेण विरलानि–सान्तराणि घनभावे कर्दमसम्भवात् प्रस्पृष्टानि–प्रकर्षवन्ति स्पर्शनानि मन्दस्पर्शनसम्भवे रेणुस्थगनासम्भवात् यस्मिन् वर्षे तत् प्रविरलप्रस्पृष्टं, अत्र एव रजसां–श्लक्ष्णरेणुपुद्गलानां रेणूनां च–स्थूलतमतत्पुद्गलानां विनाशनं दिव्यं–अतिमनोहरं सुरभिगन्धोदकवर्षं वर्षन्ति वर्षित्वा च, अथ प्रस्तुतसूत्रमनुश्रियते–तद् योजनपरिमण्डलं क्षेत्रं निहतरजः कुर्वन्तीति योगः, निहतं–भूय उत्थानाभावेन मन्दीकृतं रजो यत्र तत्तथा, तत्र निहतत्वं रजसः क्षणमात्रमुत्थानाभावेनापि सम्भवति तत आह—नष्टरजः–नष्टं सर्वथा अदृश्यीभूतं रजो यत्र तत्तथा, तथा भ्रष्टं वातोद्धूततया योजनमात्रात् दूरतः क्षिप्तं रजो यत्र तत्तथा, अत एव प्रशान्तं–सर्वथाऽसदिव रजो यत्र तत्तथा, अस्यैवात्यन्तिकताख्यापनार्थमाह—उपशान्तं रजो यत्र तत्तथा, कृत्वा च क्षिप्रमेव प्रत्युपशाम्यन्ति, गन्धोदकवर्षणान्निवर्त्तन्त इत्यर्थः, अथासां तृतीयकर्त्तव्यकरणावसरः–एवं गन्धोदकवर्षणानुसारेण पुष्पवार्दलकेन–पुष्पवर्षुकवार्दलकेन प्राकृतत्वात् तृतीयार्थे सप्तमी पुष्पवर्षं वर्षन्तीति, अत्रैवमित्यादिवाक्यसूचित-

५वक्षस्कारे ऊर्ध्वलोक-दिक्कुमार्यु-त्सवः सू. ११३

॥३८९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११३] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१५--२१७]

मिदं सूत्रं ज्ञेयम्, 'तच्चंपि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता पुप्फवद्दलए विउव्वन्ति, से जहाणामए मालागारदारए सिआ जाव सिप्पोवगए एगं महं पुप्फछज्जिअं वा पुप्फपडलगं वा पुप्फचंगेरीअं वा गहाय रायंगणं वा जाव समन्ता कयग्गहगहिअकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं पुप्फपुंजोवयारकलिअं करेति एवमेव ताओवि उद्धलोगवत्थव्वाओ जाव पुप्फवद्दलए विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायन्ति जाव जोअणपरिमण्डलं जलयथलयभासुरप्पभूयस्स विंटट्ठाइस्स दसद्धवण्णस्स कुसुमस्स जाणुस्सेहपमाणमित्तं वासं वासंति'त्ति, अत्र व्याख्या—तृतीयवारं वैक्रियसमुद्घातेन समवघ्नन्ति, कोऽर्थः?—संवर्त्तकवातविकुर्वणार्थं हि यत् वेलाद्वयमपि वैक्रियसमुद्घातेन समवहननं तत्किलैकं एवमभ्रवार्दलकविकुर्वणार्थं द्वितीयं इदं तु पुष्पवार्दलकविकुर्वणार्थं तृतीयं, समवहत्य च पुष्पवार्दलकानि विकुर्वन्ति, स यथानामको मालाकारदारको—मालिकपुत्रः अस्यैव प्रस्तुतकार्ये व्युत्पन्नत्वात् स्याद्यावन्निपुणशिल्पोपगतः एकां महतीं 'पुष्पच्छाद्यिकां वा' छाद्यते—उपरि स्थग्यते इति छाद्या छाद्यैव छाद्यिका पुष्पैर्भृता छाद्यिका पुष्पछाद्यिका तां पुष्पपटलकं वा—पुष्पाधारभाजनविशेषं पुष्पचङ्गेरिकां वा प्रतीतां यावत् समन्तात् रतकलहे या पराङ्मुखी सुमुखी तत्संमुखीकरणाय केशेषु ग्रहणं कचग्रहस्तत्प्रकारेण गृहीतं तथा करतलाद्विप्रमुक्तं सत् प्रभ्रष्टं करतलप्रभ्रष्टविप्रमुक्तं प्राकृतत्वात् पदव्यत्ययस्ततो विशेषणसमासः तेन कचग्रहगृहीतकरतलप्रभ्रष्टविप्रमुक्तेन दशार्द्धवर्णेन—पञ्चवर्णेन कुसुमेन—जात्यपेक्षया एकवचनं कुसुमजातेन पुष्पपुञ्जोपचारो—बलिप्रकारस्तेन कलितं करोति, एवमेता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११३] + गाथा

दीप अनुक्रम [२१५--२१७]

अधि ऊर्ध्वलोकवास्तव्या अष्टौ दिक्कुमारीमहत्तरिकाः पुष्पवद्दलए विउव्वित्ता इत्यादिकं योजनपरिमण्डलान्तं प्राग्वद् व्याख्येयं, वाक्ययोजना तु योजनपरिमण्डलं यावत् दशार्द्धवर्णस्य कुसुमस्य वर्षं वर्षन्तीति, कथंभूतस्य कुसुमस्य ?– 'जलजस्थलजभासुरप्रभूतस्य' जलजं–पद्मादि स्थलजं–विचकिलादि भास्वरं–दीप्यमानं प्रभूतं च–अतिप्रचुरं ततः कर्मधारयः भास्वरं च तत् प्रभूतं च भास्वरप्रभूतं जलस्थलजं च तत् भास्वरप्रभूतं च तत्तथा, तथा 'वृन्तस्थायिनः' वृन्तेन–अधोभागवर्त्तिना तिष्ठतीत्येवंशीलस्य, तथा, वृन्तमधोभागे पत्राण्युपरीत्येवं स्थानशीलस्येत्यर्थः, कथंभूतं वर्षं ?– जान्ववधिक उत्सेधो जानूत्सेधस्तस्य प्रमाणं–द्वात्रिंशदंगुललक्षणं तेन सदृशी मात्रा यस्य स तथा तं, द्वात्रिंशदंगुलानि चैवं–चरणस्य चत्वारि जंघायाश्चतुर्विंशतिः जानुनश्चत्वारीति, एवमेव सामुद्रिके चरणादिमानस्य भणनात्, वर्षित्वा च, कियत्पर्यन्तोऽयं 'एव'मित्यादिवाक्यसूचितसूत्रसंग्रह इत्याह—यावत् 'कालागुरुपवर'त्ति अत्र यावच्छब्दोऽवधिवाची 'जाव सुरवराभिगमणजोग्गं'ति अत्र यावत्करणात् कुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघन्तगंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगन्धिअं गन्धवट्टिभूअं दिव्वं'ति पर्यन्तं सूत्रं ज्ञेयं, तत्कालागुरुप्रभृतिधूपधूपितं धूपालापकव्याख्या प्राग्वत्, अत एव 'सुरवराभिगमनयोग्यं' सुरवरस्य–इन्द्रस्याभिगमनाय–अवतरणाय योग्यं कुर्वन्ति, कृत्वा च यत्रैव भगवांस्तीर्थकरस्तीर्थकरमाता च तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च यावच्छब्दात् 'भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य अदूरसामंते' इति ग्राह्यं, आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्तीति । अथ रुचकवासिनीदिक्कुमारीवक्तव्ये प्रथमं पूर्वरुचकस्थानामष्टानां वक्तव्यमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं तहेव जाव विहरंति, तंजहा– णंदुत्तरा य १ णन्दा २, आणन्दा ३ णंदिवद्धणा ४। विजया य ५ वेजयन्ती ६, जयन्ती ७ अपराजिआ ८ ॥ १ ॥ सेसं तं चेव जाव तुब्भाहिं ण भाइअव्वंतिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए अ पुरत्थिमेणं आयंसहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति। तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिणरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ तहेव जाव विहरंति, तंजहा–समाहारा १ सुप्पइण्णा २, सुप्पबुद्धा ३ जसोहरा ४। लच्छिमई ५ सेसवई ६, चित्तगुत्ता ७ वसुंधरा ८ ॥ १ ॥ तहेव जाव तुब्भाहिं न भाइअव्वंतिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ दाहिणेणं भिंगारहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति। तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ जाव विहरंति, तं० इलादेवी १ सुरादेवी २, पुहवी ३ पउमावई ४। एगणासा ५ णवमिआ ६, भद्दा ७ सीआ य ८ अट्ठमा ॥ १ ॥ तहेव जाव तुब्भाहिं ण भाइअव्वंतिकट्टु जाव भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ पच्चत्थिमेणं तालिअंटहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति। तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्लरुअगवत्थव्वाओ जाव विहरंति, तंजहा– अलंबुसा १ मिस्सकेसी २, पुण्डरीआ य ३ वारुणी ४। हासा ५ सव्वप्पभा ६ चेव, सिरि ७ हिरि ८ चेव उत्तरओ ॥ १ ॥ तहेव जाव वन्दित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति। तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसिरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ जाव विहरंति, तंजहा–चित्ता य १ चित्तकणगा २, सतेरा ३ य सोदामिणी ४। तहेव जाव ण भाइअव्वंतिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ चउसु विदिसासु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११४] + गाथा: दीप अनुक्रम [२१८--२२६]

दीविआहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्तित्ति । तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं तहेव जाव विहरंति, तंजहा–रूआ रूआसिआ, सुरूआ रूअगावई । तहेव जाव तुब्भाहिं ण भाइयव्वंतिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभिणालं कप्पन्ति कप्पेत्ता विअरगं खणन्ति खणित्ता विअरगे णाभिं णिहणंति णिहणित्ता रयणाण य वइराण य पूरेंति २ त्ता हरिआलिआए पेढं बन्धंति २ त्ता तिदिसिं तओ कयलीहरए विउव्वंति, तए णं तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चाउस्सालए विउव्वन्ति, तए णं तेसिं चाउस्सालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणे विउव्वन्ति, तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते सव्वो वण्णगो भाणिअव्वो । तए णं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीओ महत्तराओ जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हन्ति तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति २ त्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउसालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति २ त्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति २ त्ता सुरभिणा गन्धवट्टएणं उव्वट्टेंति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेण तित्थयरमायरं च बाहासु गिण्हन्ति २ त्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले कयलीहरए जेणेव चउसालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआवेंति २ त्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति, तंजहा–गन्धोदएणं १ पुप्फोदएणं २ सुद्धोदएणं, मज्जावित्ता सव्वालंकारविभूसिअं करेंति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं व बाहाहिं गिण्हन्ति २ त्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चउसालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीहासणे णिसीआविंति २ त्ता आभिओगे देवे सद्दाविन्ति २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ गोसीसचंदणकट्ठाइं साहरह, तए णं ते आभिओगा देवा ताहिं रुअगमज्झवत्थव्वाहिं चउहिं दिसाकुमारीमहत्तरिआहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव विणएणं वयणं पडिच्छन्ति २ त्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइं गोसीसचन्दणकट्ठाइं साहरन्ति, तए णं ताओ मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सरगं करेन्ति २ त्ता अरणिं घडेंति अरणिं घडित्ता सरएणं अरणिं महिंति २ त्ता अग्गिं पाडेंति २ अग्गिं संधुक्खंति २ त्ता गोसीसचन्दणकट्ठे पक्खिवन्ति २ त्ता अग्गिं उज्जालंति २ समिहाकट्ठाइं पक्खिविन्ति २ त्ता अग्गिहोमं करेंति २ त्ता भूतिकम्मं करेंति २ त्ता रक्खापोट्टलिअं बंधन्ति बन्धेत्ता णाणामणिरयणभत्तिचित्ते दुविहे पाहाणवट्टगे गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलंमि टिट्टिआविन्ति भवउ भयवं पव्वयाउए २ । तए णं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति गिण्हित्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णिसीआविंति णिसीआवित्ता भयवं तित्थयरं माउए पासे ठवेंति ठवित्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्तीति । (सूत्रं ११४)

'तेणं कालेणं तेणं समएण'मित्यादि, तस्मिन् काले तस्मिन् समये पौरस्त्यरुचकवास्तव्याः–पूर्वदिग्भागवर्त्तिरुचककूटवासिन्योऽष्टौ दिक्कुमारीमहत्तरिकाः स्वकेषु स्वकेषु कूटेषु तथैव यावद् विहरन्ति, तद्यथा–नन्दोत्तरा १ चः समुच्चये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११४] + गाथा: दीप अनुक्रम [२१८--२२६]

नन्दा २ आनन्दा ३ नन्दिवर्धना ४ विजया ५ चः पूर्ववत् वैजयन्ती ६ जयन्ती ७ अपराजिता ८ इत्येता नामतः कथिताः, शेषं आसनप्रकम्पावधिप्रयोगभगवद्दर्शनपरस्परान्हानस्वस्वाभियोगिककृतयानविमानविकुर्विणादिकं तथैव यावद्युष्माभिर्न भेतव्यमिति कृत्वा भगवतः तीर्थकरस्य तीर्थकरमातुश्च पूर्वरुचकसमागतत्वात् पूर्वतो हस्तगत आदर्शो–दर्प्पणो जिनजनन्योः शृङ्गारादिविलोकनाद्युपयोगी यासां तास्तथा, विशेषणपरनिपातः प्राकृतत्वात्, आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्तीति । अत्र च रुचकादिस्वरूपप्ररूपणेयं–एकादेशेन एकादशे द्वितीयादेशेन त्रयोदशे तृतीयादेशेन एकविंशे रुचकद्वीपे बहुमध्ये वलयाकारो रुचकशैलश्चतुरशीतियोजनसहस्राण्युच्चः मूले १००२२ मध्ये ७०२३ शिखरे ४०२४ योजनानि विस्तीर्णः, तस्य शिरसि चतुर्थे सहस्रे पूर्वदिशि मध्ये सिद्धायतनकूटं, उभयोः पार्श्वयोश्चत्वारि २ दिक्कुमारीणां कूटानि, नन्दोत्तराद्यास्तेषु वसन्तीति । सम्प्रति दक्षिणरुचकस्थानां वक्तव्यमुपक्रम्यते—'तेणं कालेण'मित्यादि, तस्मिन् काले तस्मिन् समये दक्षिणरुचकवास्तव्या इति पूर्ववद्रुचकशिरसि दक्षिणदिशि मध्ये सिद्धायतनकूटं उभयतश्चत्वारि २ कूटानि, तत्र वासिन्य इत्यर्थः, अष्टौ दिक्कुमारीमहत्तरिकाः तथैव यावद् विहरन्ति, तद्यथा–समाहारा १ सुप्रदत्ता २ सुप्रबुद्धा ३ यशोधरा ४ लक्ष्मीवती ५ शेषवती ६ चित्रगुप्ता ७ वसुन्धरा ८ तथैव यावद्युष्माभिर्न भेतव्यमितिकृत्वा जिनजनन्योर्दक्षिणदिग्गतत्वाद्दक्षिणदिग्भागे जिनजननीस्नपनोपयोगिजलपूर्णकलशहस्ता आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्तीति । साम्प्रतं पश्चिमरुचकस्थानां वक्तव्यतामाह—'तेणं कालेण'मित्यादि, सर्वं तथैव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११४] + गाथा: दीप अनुक्रम [२१८--२२६]

नवरं पश्चिमरुचकवास्तव्याः—पश्चिमदिग्भागवर्त्तिरुचकवासिन्य इति, नामान्यासां पद्येनाह—इलादेवी १ सुरादेवी २ पृथिवी ३ पद्मावती ४ एकनासा ५ नवमिका ६ भद्रा ७ सीता ८ चः समुच्चये, अष्टमी चेति, कूटव्यवस्था तथैव, पश्चिमरुचकागतत्वाज्जिनजनन्योः पश्चिमदिग्भागे तालवृन्तं—व्यजनं तद्धस्तगतास्तिष्ठन्तीति, उदीच्या अप्येवमेवेति तत्सूत्रमाह—'तेणं कालेण'मित्यादि, व्यक्तं, नवरमुत्तररुचकवास्तव्या—उत्तरदिग्भागवर्त्तिरुचकवासिन्य इति, नामान्यासां पद्येनाह—अलंबुसा १ मिश्रकेसी २ पुण्डरीका ३ चः प्राग्वत् वारुणी ४ हासा ५ सर्वप्रभा ६ चैवेति प्राग्वत् श्रीः ७ ह्री ८ श्चोत्तरतः, कूटव्यवस्था तथैव, उत्तररुचकागतत्वाज्जिनजनन्योरुत्तरदिग्भागे चामरहस्तगता आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्ति । अथ विदिग्रुचकवासिनीनामागमनावसरः—'तेणं कालेण'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं विदिग्रुचकवास्तव्यास्तस्यैव रुचकपर्वतस्य शिरसि चतुर्थे सहस्रे चतसृषु विदिक्षु एकैकं कूटं तत्र वासिन्यश्चतस्रो विदिक्कुमार्यो यावद् विहरन्ति, इमाश्च स्थानाङ्गे विद्युत्कुमारीमहत्तरिका इत्युक्ता इति, एतासां चैशान्यादिक्रमेण नामान्येवं—चित्रा १ चः समुच्चये चित्रकनका २ शतेरा ३ सौदामिनी ४ तथैव यावन्न भेतव्यमितिकृत्वा, विदिगागतत्वात् भगवतस्तीर्थकरस्य तीर्थकरमातुश्च चतसृषु विदिक्षु दीपिकाहस्तगता आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्तीति । अथ मध्यरुचकवासिन्य आगमितव्याः—'तेणं कालेण'मित्यादि, तस्मिन्काले तस्मिन् समये मध्यरुचकवास्तव्या—मध्यभागवर्त्तिरुचकवासिन्यः, कोऽर्थः ?—चतुर्विंशत्यधिकचतुःसहस्रप्रमाणे रुचकशिरोविस्तारे द्वितीयसहस्रे चतुर्दिग्वर्त्तिषु चतुर्षु कूटेषु पूर्वादिक्रमेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११४] + गाथा: दीप अनुक्रम [२१८--२२६]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥३९३॥

चतस्रस्ता वसन्तीत्यर्थः, श्रीअभयदेवसूरयस्तु षष्ठाङ्गवृत्तौ मह्यध्ययने 'मज्झिमरुअगवत्थव्वा' इत्यत्र रुचकद्वीपस्याभ्यन्तरार्द्धवासिन्य इत्याहुः, अत्र तत्त्वं बहुश्रुतगम्यं, चतस्रो दिक्कुमारिका यावद् विहरन्ति, तद्यथा–रूपा १ रूपासिका २ सुरूपा ३ रूपकावती ४, तथैव युष्माभिर्न भेतव्यमितिकृत्वा भगवतस्तीर्थकरस्य चतुरंगुलवर्जं नाभिनालं कल्पयन्ति कल्पयित्वा च विदरकं–गर्त्तां खनन्ति खनित्वा च विदरके कल्पितां तां नाभिं निधानयन्ति, निधानयित्वा च रत्नैश्च वज्रैश्च प्राकृतत्वाद् विभक्तिव्यत्ययः पूरयन्ति पूरयित्वा च हरितालिकाभिः–दूर्वाभिः पीठं बध्नन्ति, कोऽर्थः ?–पीठं बध्वा तदुपरि हरितालिकां वपन्तीत्यर्थः, वितरकखननादिकं च सर्वं भगवदवयवस्याशातनानिवृत्त्यर्थं, पीठं बध्वा च त्रिदिशि पश्चिमावर्जदिक्त्रये त्रीणि कदलीगृहाणि विकुर्वन्ति, ततस्तेषां कदलीगृहाणां बहुमध्यदेशभागे त्रीणि चतुःशालकानि–भवनविशेषान् विकुर्वन्ति, ततस्तेषा चतुःशालकानां बहुमध्यदेशभागे त्रीणि सिंहासनानि विकुर्वन्ति, तेषां सिंहासनानामयमेतादृशो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः, सिंहासनानां सर्वो वर्णकः पूर्ववद् भणितव्यः । सम्प्रति सिंहासनविकुर्वणानन्तरीयकृत्यमाह—'तए णं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीओ' इत्यादि, ततस्ता रुचकमध्यवास्तव्याः चतस्रो दिक्कुमारीमहत्तरिका यत्रैव भगवांस्तीर्थकरस्तीर्थकरमाता च तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं करतलसम्पुटेन तीर्थकरमातरं च बाहाभिर्गृह्णन्ति गृहीत्वा च यत्रैव कदलीगृहं यत्रैव चतुःशालकं यत्रैव च सिंहासनं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकरमातरं च सिंहासने निषादयन्ति–उपवेशयन्ति निषाद्य

५वक्षस्कारे रुचकवासिकुमार्युत्सवः सू. ११४

॥३९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११४] + गाथा: दीप अनुक्रम [२१८--२२६]

च शतपाकैः सहस्रपाकैः–शतकृत्वोऽपरापरौषधिरसेन कार्षापणानां शतेन वा यत्पक्वं तच्छतपाकमेवं सहस्रपाकमपि बहुवचनं तथाविधसुरभितैलसंग्रहार्थं तैलैरभ्यङ्गयंति तैलमभ्यंजयंतीत्यर्थः, अभ्यङ्गयित्वा च सुरभिणा गन्धवर्त्तकेन गन्धद्रव्याणां–उत्पलकुष्ठादीनामुद्वर्त्तकेन–चूर्णपिण्डेन गन्धयुक्तगोधूमचूर्णपिण्डेन वा उद्वर्त्तयन्ति म्रक्षिततैलापनयनं कुर्वन्ति उद्वर्त्य च भगवन्तं तीर्थकरं करतलपुटेन तीर्थकरमातरं च बाह्वोर्गृह्णन्ति गृहीत्वा च यत्रैव पौरस्त्यं कदलीगृहं यत्रैव चतुःशालं यत्रैव च सिंहासनं तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकरमातरं च सिंहासने निषादयन्ति निषाद्य च त्रिभिरुदकैर्मज्जयंति–स्नपयंति, तान्येव त्रीणि दर्शयति–'तद्यथे'त्यादिना, गंधोदकेन–कुंकुमादिमिश्रितेन पुष्पोदकेन–जात्यादिमिश्रितेन शुद्धोदकेन–केवलोदकेन, मज्जयित्वा सर्वालङ्कारविभूषितौ कुर्वन्ति, मातृपुत्राविति शेषः, कृत्वा च भगवन्तं तीर्थकरं करतलपुटेन तीर्थकरमातरं च बाहाभिर्गृह्णन्ति गृहीत्वा च यत्रैवोत्तराहं कदलीगृहं यत्रैव च चतुःशालकं यत्रैव च सिंहासनं तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकरमातरं च सिंहासने निषादयन्ति निषाद्य च आभियोगान् देवान् शब्दयन्ति शब्दयित्वा च एवमवादिषुः–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! क्षुद्रहिमवतो वर्षधरपर्वताद् गोशीर्षचन्दनकाष्ठानि संहरत–समानयत, ततस्ते आभियोगा देवास्ताभी रुचकमध्यवास्तव्याभिश्चतसृभिर्दिक्कुमारीमहत्तरिकाभिरेवं–अनन्तरोक्तमुक्ताः–आज्ञप्ताः सन्तः हृष्टतुष्ट इत्यादि यावद् विनयेन वचनं प्रतीच्छन्ति–अङ्गीकुर्वन्ति प्रतीष्य च क्षिप्रमेव क्षुद्रहिमवतो वर्षधरपर्वतात् सरसानि गोशीर्षचन्दनकाष्ठानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संहरन्ति, ततस्ते मध्यरुचकवास्तव्याश्चतस्रो दिक्कुमारीमहत्तरिकाः शरकं–शरप्रतिकृतितीक्ष्णमुखमश्युत्पादकं काष्ठविशेषं कुर्वन्ति, कृत्वा च तेनैव शरकेन सह अरणिं–लोकप्रसिद्धं काष्ठविशेषं घटयन्ति–संयोजयन्ति, घटयित्वा च शरके-नाग्निं मन्थन्ति, मथित्वा च अग्निं पातयन्ति, पातयित्वा च अग्निं सन्धुक्षन्ति–सन्दीपयन्ति, सन्धुक्ष्य च गोशीर्ष-चन्दनकाष्ठानि प्रस्तावात् खण्डशः कृतानीति बोध्यं, यादृशैश्चन्दनकाष्ठैरग्निरुद्दीपितः स्यात् तादृशानीतिभावः, प्रक्षिपन्ति, प्रक्षिप्य च अग्निमुज्ज्वालयन्ति उज्ज्वाल्य च प्रदेशप्रमाणानि हवनोपयोगीनीन्धनानि समिधस्तद्रूपाणि काष्ठानि प्रक्षिपन्ति, पूर्वो हि काष्ठप्रक्षेपोऽग्युद्दीपनाय अयं च रक्षाकरणायेति विशेषः, प्रक्षिप्य च अग्निहोमं कुर्वन्ति, कृत्वा च भूतेः–भस्मनः कर्म–क्रिया तां कुर्वन्ति, येन प्रयोगेणेन्धनानि भस्मरूपाणि भवन्ति तथा कुर्वन्तीत्यर्थः, कृत्वा च जिनजनन्योः शाकिन्यादिदुष्टदेवताभ्यो दृग्दोषादिभ्यश्च रक्षाकरीं पोट्टलिकां बध्नन्ति, बद्ध्वा च नानामणिर-त्नानां भक्त्री–रचना तया विचित्रौ द्वौ पाषाणवृत्तगोलकौ पाषाणगोलकाविति यर्थः गृह्णन्ति गृहीत्वा च भगवतस्तीर्थकरस्य कर्णमूले टिट्टिआवेंतीत्यनुकरणशब्दोऽयं तेन टिट्टिआवेंति–परस्परं ताडनेन टिट्टीतिशब्दोत्पादनपूर्वकं वादयन्तीत्यर्थः, अनेन हि बाललीलावशादन्यत्र व्यासक्तं भगवन्तं वक्ष्यमाणाशीर्वचनश्रवणे पटुं कुर्वन्तीति भावः, तथा कृत्वा च भवतु भगवान् पर्वतायुः २ इत्याशीर्वचनं ददतीति, ततः–उक्तसकलकार्यकरणानन्तरं ता रुचकमध्यवास्तव्याश्चतस्रो दिक्कुमारी-महत्तरिका भगवन्तं तीर्थकरं करतलपुटेन तीर्थकरमातरं च बाहाभिर्गृह्णन्ति गृहीत्वा च यत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११४] + गाथा: दीप अनुक्रम [२१८--२२६]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

जन्मभवनं तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य च तीर्थकरमातरं शय्यायां निषादयन्ति निषाद्य च भगवन्तं तीर्थकरं मातुः पार्श्वे स्थापयन्ति, स्थापयित्वा च नातिदूरासन्ननगा आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्ति, एतासां च मध्येऽष्टावधोलोकवासिन्यो गजदन्तगिरीणामधोभवनवासिन्यः, यत्त्वेतदधिकारसूत्रे 'सएहिं २ कूडेहिं' इति पदं तदपरसकलदिक्कुमार्यधिकारसूत्रपाठसंरक्षणार्थं, साधारणसूत्रपाठे हि यथासम्भवं विधिनिषेधौ समाश्रयणीयाविति, ऊर्ध्वलोकवासिन्योऽष्टौ नन्दनवने योजनपञ्चशतिककूटवासिन्यः अन्याश्च सर्वा अपि रुचकसत्ककूटेषु योजनसहस्रोच्चेषु मूले सहस्रयोजनविस्तारेषु शिरसि पञ्चशतविस्तारेषु वसन्ति, उक्तं षट्पञ्चाशद्दिक्कुमारीकृत्यमिति । अथेन्द्रकृत्यावसरः—

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के णामं देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयकेऊ सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाणावाससयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेमचारुचित्तचंचलकुण्डलविलिहिज्जमाणगंडे भासुरबोंदी पलम्बवणमाले महिड्डीए महज्जुईए महाबले महायसे महाणुभागे महासोक्खे सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणिआणं सत्तण्हं अणिआहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीयवाइयतंतीत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ जिन-जन्माभिषेक निमित्त इन्द्रस्य कृत्य वर्ण्यते

लतालतुडिअघणमुइंगपडुपडहवाइअरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ । तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ, तए णं से सक्के जाव आसणं चलिअं पासइ २ त्ता ओहिं पउंजइ पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्ते आनंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहिअए धाराहयकयंबकुसुमचंचुमालइअऊसविअरोमकूवे विअसिअवरकमलनयणवयणे पचलिअवरकडगतुडिअकेऊरमउडे कुण्डलहारविरायंतवच्छे पालम्बपलम्बमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ २ त्ता वेरुलिअवरिट्ठरिट्ठअंजणनिउणोविअमिसिमिसिं-तमणिरयणमंडिआओ पाउआओ ओमुअइ २ त्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ २ त्ता अंजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणीअलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवे-सेइ २ त्ता ईसिं पच्चुण्णमइ २ त्ता कडगतुडिअथंभिआओ भुआओ साहरइ २ त्ता करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोत्थु णं अरहंताणं भगवन्ताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवर-पुण्डरीआणं पुरिसवरगन्धहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं, धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरन्तचक्कवट्टीणं, दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं, जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं, सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुअमणन्तमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं जिअभयाणं, णमोऽत्थु णं भगवओ तित्थगरस्स आइगरस्स जाव संपाविउकामस्स, वंदामि णं भगवन्तं तत्थगयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहगए, पासउ मे भयवं ! तत्थगए इहगयंतिकट्टु वन्दइ णमंसइ २ त्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अयमेआरूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था–उप्पण्णे खलु भो जम्बुद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं जम्मणमहिमं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेमित्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावेन्ति २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! सभाए सुहम्माए मेघोघरसिअं गंभीरमहुरयरसद्दं जोयणपरिमण्डलं सुघोसं सूसरं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे २ महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयाहि–आणवेइ णं भो सक्के देविंदे देवराया गच्छइ णं भो सक्के देविंदे देवराया जम्बुद्दीवे २ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए, तं तुब्भेवि णं देवाणुप्पिआ ! सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वणाडएहिं सव्वोवरोहेहिं सव्वपुप्फगन्धमल्लालंकारविभूसाए सव्वदिव्वतुडिअसद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढीए जाव रवेणं णिअयपरिआलसंपरिवुडा सयाइं २ जाणविमाणवाहणाइं दुरूढा समाणा अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स जाव अंतिअं पाउब्भवह, तए णं से हरिणेगमेसी देवे पायत्ताणीयाहिवई सक्केणं ३ जाव एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव एवं देवोत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता सक्कस्स ३ अंतिआओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सभाए सुहम्माए मेघोघरसिअगम्भीरमहुरयरसद्दा जोअणपरिमण्डला सुघोसा घण्टा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं मेघोघरसिअगम्भीरमहुरयरसद्दं जोअणपरिमण्डलं सुघोसं घण्टं तिक्खुत्तो उल्लालेइ, तए णं तीसे मेघोघरसिअगम्भीरमहुरयरसद्दाए जोअणपरिमण्डलाए सुघोसाए घण्टाए तिक्खुत्तो उल्लालिआए समाणीए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावाससयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसं घण्टासयसह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [२२७]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३९६॥

स्साइं जमगसमगं कणकणारावं काउं पयत्ताइं हुत्था इति, तए णं सोहम्मे कप्पे पासायविमाणनिक्खुडावडिभसद्दसमुट्ठिअघण्टा-पडेसुआसयसहस्ससंकुले जाए आवि होत्था इति, तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य एगन्त-रइपसत्तणिच्चपमत्तविसयसुहमुच्छिआणं सूसरघण्टारसिअविउलबोलपूरिअचवलपडिबोहणे कए समाणे घोसणकोऊहलदिण्णकण्णए-गग्गचित्तउवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणीआहिवई देवे तंसि घण्टारवंसि निसंतपडिसंतंसि समाणंसि तत्थ तत्थ तहिं २ देसे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासीति–हन्त! सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणिअदेवा देवीओ अ सोहम्म-कप्पवइणो इणमो वयणं हिअसुहत्थं–आणावइ णं भो सक्के तं चेव जाव अंतिअं पाउब्भवहत्ति, तए णं ते देवा देवीओ अ एअमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ जाव हिअआ अप्पेगइआ वन्दणवत्तिअं एवं पूअणवत्तिअं सक्कारवत्तिअं सम्माणपत्तिअं दंसणवत्तिअं जिणभत्तिरागेणं अप्पेगइआ तं जीअमेअं एवमादित्तिकट्टु जाव पाउब्भवंतित्ति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते विमाणिए देवे देवीओ अ अकालपरिहीणं चेव अंतिअं पाउब्भवमाणे पासइ २ त्ता हट्ठे पालयं णामं आभिओगिअं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पा-मेव भो देवाणुप्पिआ! अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठियसालभंजिआकलिअं ईहामिअउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिण्णर-रुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं खंभुग्गयवइरवेइआपरिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्तंपिव अचीसहस्स-मालिणीअं रूवगसहस्सकलिअं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोअणलेसं सुहफासं सस्सिरीअरूवं घण्टावलिअमहुरमणहरसरं सुहं कन्तं दरिसणिज्जं णिउणोविअमिसिमिसिंतमणिरयणघंटिआजालपरिक्खित्तं जोयणसहस्सविच्छिण्णं पञ्चजोअणसयमुव्विद्धं सिग्घं तुरिअं जइणणिव्वाहि दिव्वं जाणविमाणं विउव्वाहि २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि (सूत्रं ११५)

५वक्षस्कारे इन्द्रकृत्ये पालकवि-मानं सू. ११५

॥३९६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [२२७]

'तेणं कालेण'मित्यादि, तस्मिन् काले तस्मिन् समये इत्यत्र समयो दिक्कुमारीकृत्यानन्तरीयत्वेन विशेषणीयः शक्रो नाम सौधर्माधिपतिरित्यादिव्याख्यानं कल्पसूत्रटीकादौ प्रसिद्धत्वान्नात्र लिख्यते, अथ वन्दननमस्करणानन्तरं शक्रस्य सिंहासनोपवेशने यदभूत्तदाह—'तए णं तस्स सक्कस्स'इत्यादि, 'ततः' सिंहासनोपवेशनानन्तरं तस्य शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराज्ञः अयमेतादृशो यावत्सङ्कल्पः समुदपद्यत, कोऽसावित्याह—उत्पन्नः खलु भो ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवांस्तीर्थकरः तस्माज्जीतमेतदतीतप्रत्युत्पन्नानागतानां शक्राणां देवेन्द्राणां देवराज्ञां तीर्थकराणां जन्ममहिमां कर्त्तुं तद् गच्छामि णमिति प्राग्वत् अहमपि भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमां करोमीतिकृत्वा—इतिहेतुमुद्भाव्यैवं—वक्ष्यमाणं सम्प्रेक्षते सम्प्रेक्ष्य च हरेः—इन्द्रस्य निगमं—आदेशमिच्छतीति हरिनिगमेषी तं अथवा इन्द्रस्य नैगमेषी नामा देवस्तं पदात्यनीकाधिपतिं देवं शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीत्, किमवादीदित्याह—'खिप्पामेव भो'इत्यादि, क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया! सभायां सुधर्मायां मेघानामोघः—संघातो मेघौघस्तस्य रसितं—गर्जितं तद्वद् गम्भीरो मधुरतरश्च शब्दो यस्याः सा तथा तां योजनप्रमाणं परिमण्डलं—भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य पारिमाण्डल्यं—वृत्तत्वं यस्याः सा तथा तां सुघोषां नाम सुस्वरां घण्टां त्रिकृत्वः—त्रीन् वारान् उल्लालयन् २—ताडयन् २ महता २ शब्देनोद्घोषयन् २ एवं वद—आज्ञापयति भो देवाः! शक्रो देवेन्द्रो देवराजा, किमित्याह—गच्छति भोः! शक्रो देवेन्द्रो देवराजा जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमां कर्त्तुं, सामान्यतो जिनवर्णके प्रक्रान्तेऽपि यज्जम्बूद्वीपनामग्रहणं तज्जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यधि-

श्रीजम्बू. ६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [२२७]

कारात्, तद्यूयमपि देवानुप्रियाः! सर्वर्द्ध्या सर्वद्युत्या सर्वबलेन सर्वसमुदायेन सर्वादरेण सर्वविभूषया सर्वदिव्यत्रुटित-शब्दसन्निनादेन महत्या ऋद्ध्या यावद्रवेण अत्राख्यातपदानि यावत्पदसंग्राह्यं च प्राग्वत् निजकपरिवारस-म्परिवृताः स्वकानि स्वकानि यानविमानानि प्राग्वत् वाहनानि–शिबिकादीन्यारूढाः सन्तोऽकालपरिहीणं–निर्वि-लम्बं यथा स्यात्तथा चैवोऽवधारणे शक्रस्य यावत्करणात् देवेन्द्रस्य देवराज्ञः इति पदद्वयं ग्राह्यं अन्तिकं–समीपं प्रादुर्भवत, अथ स्वाम्यादेशानन्तरं हरिणेगमेषी यदकरोत् तदाह—'तए णं से हरिणेगमेसी'इत्यादि, ततः स हरिणे-गमेषी देवः पदात्यनीकाधिपतिः शक्रेण देवेन्द्रेण देवराज्ञा एवमुक्तः सन् हृष्ट इत्यादि यावदेवं देव इति आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशृणोति प्रतिश्रुत्य च शक्रान्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च यत्रैव सभायां सुधर्मायां मेघौघरसितगम्भीरमधुरतरशब्दा योजनपरिमण्डला सुघोषा घण्टा तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च तां मेघौघरसितगम्भी-रमधुरतरशब्दां योजनपरिमण्डला सुघोषां घण्टां त्रिकृत्व उल्लालयतीति, उल्लालनानन्तरं यदजायत तदाह—'तए णं तीसे मेघोघरसिअगम्भीरमहुरयर'इत्यादि, ततः–उल्लालनानन्तरं तस्यां मेघौघरसितगम्भीरमधुरतरशब्दायां योजन-परिमण्डलायां सुघोषायां घण्टायां त्रिकृत्व उल्लालितायां सत्यां सौधर्मे कल्पे अन्येषु एकोनेषु द्वात्रिंशत्विमानरूपा ये आवासा–देववासस्थानानि तेषां शतसहस्रेषु, अत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, अन्यान्येकोनानि द्वात्रिंशद् घण्टाशतसहस्राणि यमकसमकं–युगपत् क्वणकणारावं कर्तुं प्रवृत्तान्यप्यभवन्, अत्रापिशब्दो भिन्नक्रमत्वात् घण्टाशतसहस्राण्यपि इत्येवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [२२७]

योजनीयः, अथ घण्टानादतो यत् प्रवृत्तं तदाह—'तए ण'मित्यादि, 'ततो' घण्टानां कणकणारावप्रवृत्तेरनन्तरं सौधर्मः कल्पः प्रासादानां विमानानां वा ये निष्कुटा—गम्भीरप्रदेशास्तेषु ये आपतिताः—सम्प्राप्ताः शब्दाः—शब्दवर्गणापुद्गलास्तेभ्यः समुत्थितानि यानि घण्टाप्रतिश्रुतां—घण्टासम्बन्धिप्रतिशब्दानां शतसहस्राणि तैः संकुलो जातश्चाप्यभूत्, किमुक्तं भवति?—घण्टायां महता प्रयत्नेन ताडितायां ये विनिर्गताः शब्दपुद्गलास्तत्प्रतिघातवशतः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च दिव्यानुभावतः समुच्छलितैः प्रतिशब्दैः सकलोऽपि सौधर्मः कल्पो बधिर उपजायत इति, एतेन द्वादशयोजनेभ्यः समागतः शब्दः श्रोत्रग्राह्यो भवति न परतः ततः कथमेकत्र ताडितायां घण्टायां सर्वत्र तच्छब्दश्रुतिरुपजायत इति यदुच्यते तदपाकृतमवसेयं, सर्वत्र दिव्यानुभावतस्तथारूपप्रतिरूपशब्दोच्छलने यथोक्तदोषासम्भवात्, एवं शब्दमये सौधर्मे कल्पे सञ्जाते पदातिपतिर्यदकरोत् तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततः—शब्दव्याप्त्यनन्तरं तेषां सौधर्मकल्पवासिनां बहूनां वैमानिकानां देवानां देवीनां च एकान्तेन रतौ—रमणे प्रसक्ता—आसक्ता अत एव नित्यप्रमत्ता विषयसुखेषु मूर्च्छिता—अध्युपपन्नास्ततः पदत्रयस्य पददयय २ मीलनेन कर्मधारयस्तेषां सुस्वरा या पंक्तिरथन्यायेन सुघोषा घण्टा तस्याः रसितं तस्माद् विपुलः—सकलसौधर्मदेवलोककुक्षिम्भरियों बोलः—कोलाहलस्तेन, अत्र तृतीयालोपः प्राकृतत्वात्, त्वरितं—शीघ्रं चपले—ससम्भ्रमे प्रतिबोधने कृते सति आगामिकालसम्भाव्यमाने घोषणे कुतूहलेन—किमिदानीमुद्घोषणं भविष्यतीत्यात्मकेन दत्तौ कर्णौ यैस्ते तथा, एकाग्रं—घोषणश्रवणैकविषयं चित्तं येषां ते तथा, एकाग्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्तत्वेऽपि कदाचिन्नोपयोगः स्याच्छाद्मस्थ्यवशादत आह–उपयुक्तमानसाः–शुश्रूषितवस्तुग्रहणपटुमनसस्ततो विशेषणसमासस्तेषां स पदात्यनीकाधिपतिर्देवस्तस्मिन् घण्टारवे नितरां शान्तः–अत्यन्तमन्दभूतः ततः प्रकर्षेण–सर्वात्मना शान्तः प्रशान्तः ततश्छिन्नप्ररूढ इत्यादाविव विशेषणसमासस्तस्मिन् सति, तत्र तत्र–महति देशे तस्मिन् २–देशैकदेशे महता महता शब्देन–तारतारस्वरेण उद्घोषयन् २ एवमवादीत्, किमवादीदित्याह—'हंत सुण'मित्यादि, हन्त ! इति हर्षे स च स्वस्वस्वामिनाऽऽदिष्टत्वात् जगद्गुरुजन्ममहकरणार्थकप्रस्थानसमारम्भाच्च, शृण्वन्तु भवन्तो बहवः सौधर्मकल्पवासिनो वैमानिका देवा देव्यश्च सौधर्म्मकल्पपतेरिदं वचनं हितं–जन्मान्तरकल्याणावहं सुखं–तद्भवसम्बन्धि तदर्थमाज्ञापयति, भो देवाः! शक्रः तदेव ज्ञेयं, यत्प्राक्सूत्रे शक्रेण हरिनैगमेषिपुर उद्घोषयितव्यमादिष्टं यावत्प्रादुर्भवत । अथ शक्रादेशानन्तरं यद्देवविधेयं तदाह—ततस्ते देवा देव्यश्च एनं अनन्तरोदितमर्थं श्रुत्वा हृष्टतुष्टयावद् हर्षवशविसर्पद्हृदयाः अपिः सम्भावनायामेककाः–केचन वन्दनं–अभिवादनं प्रशस्तकायवाङ्मनःप्रवृत्तिरूपं तत्प्रत्ययं तदस्माभिस्त्रिभुवनभट्टारकस्य कर्त्तव्यमित्येवंनिमित्तं एवं 'पूजनप्रत्ययं' पूजनं–गन्धमाल्यादिभिः समभ्यर्चनं एवं 'सत्कारप्रत्ययं' सत्कारः–स्तुत्यादिभिर्गुणोन्नतिकरणं सन्मानो–मानसप्रीतिविशेषस्तत्प्रत्ययं दर्शनं–अदृष्टपूर्वस्य जिनस्य विलोकनं तत्प्रत्ययं कुतूहलं–तत्र गतेनास्मत्प्रभुणा किं कर्त्तव्यमित्यात्मकं तत्प्रत्ययं, अप्येककाः शक्रस्य वचनमनुवर्त्तमानाः न हि प्रभुवचनमुपेक्षणीयमिति भृत्यधर्ममनुश्रयन्तः अप्येककाः अन्यमन्यं मित्रमनुवर्त्तमाना मित्रगमनानुप्रवृत्ता इत्यर्थः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११५]

दीप अनुक्रम [२२७]

अप्येकका जीतमेतद् यत् सम्यग्दृष्टिदेवैर्जिनजन्ममहे यतनीयं, 'एवमादी'त्यादिकमागमननिमित्तमितिकृत्वा–चित्तेऽवधार्य यावच्छब्दात् 'अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो 'इति ग्राह्यं, अन्तिकं प्रादुर्भवन्ति, अथ शक्रस्येतिकर्त्तव्यमाह—'तए ण'मित्यादि, ततः शक्रो देवेन्द्रो देवराजा तान् बहून् वैमानिकान् देवान् उपतिष्ठमानान् पश्यति दृष्ट्वा च हट्ठतुट्ठ इत्येकदेशेन सर्वोऽपि हर्षालापको ग्राह्यः, पालकनामविमानविकुर्वणाधिकारिणमाभियोगिकं देवं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा च एवमवादीत्, यदवादीत्तदाह—'खिप्पामेव'त्ति, इदं यानविमानवर्णकं प्राग्वत्, नवरं योजनशतसहस्रविस्तीर्णमित्यत्र प्रमाणांगुलनिष्पन्नं योजनलक्षं ज्ञेयं, ननु वैक्रियप्रयोगजनितत्वेनोत्सेधांगुलनिष्पन्नत्वमप्यस्य कुतो नेति चेन्न 'नगपुढविविमाणाई मिणसु पमाणंगुलेणं तु' इति वचनात् अस्य प्रमाणांगुलनिष्पन्नत्वं युक्तिमत्, न च 'नगपुढविविमाणाई'ति वचनं शाश्वतविमानापेक्षया न यानविमानापेक्षयेत्ति ज्ञेयं, अस्योत्सेधांगुलप्रमाणनिष्पन्नत्वे जम्बूद्वीपान्तः सुखप्रवेशनीयत्वेन नन्दीश्वरे विमानसंकोचनस्य वैयर्थ्यापत्तेः, तथा श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थाध्ययने 'चत्तारि लोगे समा पण्णत्ता, तंजहा–अपइट्ठाणे णरए १ जम्बुदीवे दीवे २ पालए जाणविमाणे ३ सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे ४' इत्यत्रापि पालकविमानस्य जम्बूद्वीपादिभिः प्रमाणतः समत्वं प्रमाणांगुलनिष्पन्नत्वेनैव सम्भवतीति दिक्, तथा पञ्चशतयोजनोच्चं शीघ्रं त्वरितजवनं, अतिशयेन वेगवदित्यर्थः, निर्वाहि–प्रस्तुतकार्यनिर्वहणशीलं पश्चात् पूर्वपदेन कर्मधा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयः, एवंविधं दिव्यं यानविमानं विकुर्वस्व विकुर्व्य च एतामाज्ञप्तिं प्रत्यर्पय, कृतकृत्यो निवेदय इत्यर्थः। तदनु यदनुतिष्ठति स्म पालकस्तदाह—

तए णं से पालयदेवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणित्ता तहेव करेइ इति, तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा वण्णओ, तेसि णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं २ तोरणा वण्णओ जाव पडिरूवा १, तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे, से जहा नामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव दीविअचम्मेइ वा अणेगसंकुकीलकसहस्सवितते आवडपच्चावडसेढिपसेढिसुत्थिअसोवत्थिअवद्धमाणपूसमाणवमच्छंडगमगरंडगजारमारफुल्लावलीपउमपत्तसागरतरंगवसंतलयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणाविहपञ्चवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए २, तेसि णं मणीणं वण्णे गन्धे फासे अ भाणिअव्वे जहा रायप्पसेणइज्जे, तस्स णं भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए पिच्छाघरमण्डवे अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे वण्णओ जाव पडिरूवे, तस्स उल्लोए पउमलयभत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए जाव पडिरूवे, तस्स णं मण्डवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागंसि महं एगा मणिपेढिआ अट्ठ जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी वण्णओ, तीए उवरिं महं एगे सीहासणे वण्णओ, तस्सुवरिं महं एगे विजयदूसे सव्वरयणामए वण्णओ, तस्स मज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे, एत्थ णं महं एगे कुम्भिक्के मुत्तादामे, से णं अन्नेहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुम्भिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते, ते णं दामा तव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११६]

दीप अनुक्रम [२२८]

णिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमण्डिआ णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभिआ समुदया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मन्दं एइज्जमाणा २ जाव निव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे आपूरेमाणा २ जाव अईव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंतित्ति, तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सक्कस्स चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं चउरासीइ भद्दासणसाहस्सीओ पुरत्थिमेणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं एवं दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भितरपरिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणेणं मज्झिमाए चउद्दसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए सोलसण्हं देवसाहस्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणंति, तए णं तस्स सीहासणस्स चउद्दिसिं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं एवमाई विभासिअव्वं सूरिआभगमेणं जाव पच्चप्पिणन्तित्ति (सूत्रं ११६)

'तए णं से पालए देवे सक्केण'मित्यादि, ततः स पालको देवः शक्रेण देवेन्द्रेण देवराज्ञा एवमुक्तः सन् हृष्टतुष्ट यावद् वैक्रियसमुद्घातेन समवहत्य तथैव करोति, पालकविमानं रचयतीत्यर्थः । अथ विमानस्वरूपवर्णनायाह—'तस्स ण'मित्यादि इति सूत्रद्वयी व्यक्ता, अथ तद्विभागं वर्णयन्नाह—'तस्स णं'इत्यादि, इदं प्राग्वद् ज्ञेयम्, नवरं मणीनां वर्णो गन्धः स्पर्शश्च भणितव्यो यथा राजप्रश्नीये द्वितीयोपाङ्गे, अत्रापि जगतीपद्मवरवेदिकावर्णने मणिवर्णादयो व्याख्याता ततोऽपि वा बोद्धव्याः, अत्र प्रेक्षागृहमण्डपवर्णनायाह—'तस्स ण'मित्यादि, यावच्छब्दग्राह्यं व्याख्या च यमकराजधानीगतसुधर्मासभाधिकारतो ज्ञेये, उपरिभागवर्णनायाह—'तस्स उल्लोए'इत्यादि, तस्योल्लोकः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११६]

दीप अनुक्रम [२२८]

उपरिभागः पद्मलताभक्तिचित्रः यावत्सर्वात्मना तपनीयमयः प्रथमयावच्छब्देन अशोकलताभक्तिचित्र इत्यादिपरिग्रहः द्वितीययावच्छब्दाद् अच्छे सण्हे इत्यादिविशेषणग्रहः, अत्र च राजप्रश्नीये सूर्याभयानविमानवर्णकेऽक्षपाटकसूत्रं दृश्यते परं बहुष्वेतत्सूत्रादर्शेषु अदृष्टत्वान्न लिखितं, अथात्र मणिपीठिकावर्णनायाह—'तस्स ण'मित्यादि, व्यक्तं, 'तीए उवरिं'इत्यादि, एतद्व्याख्या विजयद्वारस्थप्रकण्ठकप्रासादगतसिंहासनसूत्रवदवसेया । 'ते ण'मित्यादि, इदं सूत्रं प्राक् पद्मवरवेदिकाजालवर्णके व्याख्यातमिति ततो बोध्यं, अत्र प्रथमयावत्पदात् 'वेइज्जमाणा २ पलम्बमाणा २ पझंझमाणा २ ओरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमण'इति संग्रहः, द्वितीययावत्पदात् 'ससिरीए' इति ग्राह्यं, सम्प्रति अत्रास्थाननिवेशनप्रक्रियामाह—'तस्स ण'मित्यादि, 'तस्य' सिंहासनस्य पालकविमानमध्यभागवर्त्तिनोऽपरोत्तरायां—वायव्यामुत्तरस्यां उत्तरपूर्वायां—ऐशान्यां अत्रान्तरे शक्रस्य चतुरशीतेः सामानिकसहस्राणां चतुरशीतिभद्रासनसहस्राणि, उक्तदिक्त्रये चतुरशीतिभद्रासनसहस्राणीत्यर्थः, पूर्वस्यां दिश्यष्टानामग्रमहिषीणामष्ट भद्रासनानि, एवं दक्षिणपूर्वायां—अग्निकोणेऽभ्यन्तरपर्षदः सम्बन्धिनां द्वादशानां देवसहस्राणां द्वादश भद्रासनसहस्राणि दक्षिणस्यां मध्यमायाः पर्षदश्चतुर्दशानां देवसहस्राणां चतुर्दश भद्रासनसहस्राणि दक्षिणपश्चिमायां—नैर्ऋतकोणे बाह्यपर्षदः षोडशानां देवसहस्राणां षोडश भद्रासनसहस्राणि पश्चिमायां सप्तानामनीकाधिपतीनां सप्त भद्रासनानीति, 'तए ण'मित्यादि, 'ततः' प्रथमवलयस्थापनानन्तरं द्वितीये वलये तस्य सिंहासनस्य चतुर्दिशि चतसृणां चतुरशीतानां—चतुर्गुणीकृतचतुरशीतिसंख्याकानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११६]

दीप अनुक्रम [२२८]

आत्मरक्षकदेवसहस्राणां, षट्त्रिंशत्सहस्राधिकलक्षत्रयमितानामात्मरक्षकदेवानामित्यर्थः, तावन्ति भद्रासनानि विकुर्वितानीत्यर्थः, एवमादि विभाषितव्यं–इत्यादि वक्तव्यं सूर्याभगमेन यावत्प्रत्यर्पयन्ति, यावत्पदसंग्रहश्चायम्–'तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स इमे एआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहा णामए अइरुग्गयस्स हेमंतिअबालसूरिअस्स खाइलिंगालाण वा रत्तिं पज्जलिआणं जासुमणवणस्स वा केसुअवणस्स वा पलिजायवणस्स वा सव्वओ समन्ता संकुसुमिअस्स, भवे एआरूवे सिआ?, णो इणट्ठे समट्ठे, तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स इत्तो इट्ठतराए चेव ४ वण्णे पण्णत्ते, गन्धो फासो अ जहा मणीणं, तए णं से पालए देवे तं दिव्वं जाणविमाणं विउव्वित्ता जेणेव सक्के ३ तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सक्कं ३ करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता तमाणत्तिअ'मिति, अत्र व्याख्या–तस्य दिव्यस्य यानविमानस्यायमेतद्रूपो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः, स यथानामकोऽचिरोद्गतस्य–तत्कालमुदितस्य हैमन्तिकस्य–शिशिरकालसम्बन्धिनो बालसूर्यस्य खादिराङ्गाराणां वा'रत्ति'मिति सप्तम्यर्थे द्वितीया रात्रौ प्रज्वलितानां जपावनस्य वा किंशुकवनस्य वा पारिजाताः–कल्पद्रुमास्तेषां वनस्य वा सर्वतः समन्तात् सम्यक् कुसुमितस्य, अत्र शिष्यः पृच्छति–भवेदेतद्रूपः स्यात्–कथञ्चित्?, सूरिराह–नायमर्थः समर्थः, तस्य दिव्यस्य यानविमानस्य इत इष्टतरक एव कान्ततरक एवेत्यादि प्राग्वद्, गन्धः स्पर्शश्च यथा प्राङ्मणीनामुक्तस्तथेति, ननु अत्रैव पालकविमानवर्णके प्राग्मणीनां वर्णादय उक्ताः पुनर्विमानवर्णकादिकथनेन पुनरुक्तिरिति चेत्, मैवं, पूर्वं हि अवयवभूतानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११६]

दीप अनुक्रम [२२८]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४०१॥

मणीनां वर्णादयः प्रोक्ताः सम्प्रति अवयविनो विमानस्येति नोक्तदोषः, 'तओ णं से पालए देवे' इत्यादिकमाज्ञा-प्रत्यर्पणसूत्रं स्वतोऽभ्यूह्यम् । अथ शक्रकृत्यमाह—

तए णं से सक्के जाव हट्ठहिअए दिव्वं जिणेंदाभिगमणजुग्गं सव्वालंकारविभूसिअं उत्तरवेउव्विअं रूवं विउव्वइ २ त्ता अट्ठहिं अग्ग-महिसीहिं सपरिवाराहिं णट्टाणीएणं गन्धव्वाणीएण य सद्धिं तं विमाणं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुव्विल्लेणं तिसोवाणेणं दुरू-हइ २ त्ता जाव सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णेत्ति, एवं चेव सामाणिआवि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरुहित्ता पत्तेअं २ पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीअंति अवसेसा य देवा देवीओ अ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेणं दुरुहित्ता सहेव जाव णिसीअंति, तए णं तस्स सक्कस्स तंसि दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइअआलोअदरिसणिज्जा वाउद्धुअविजयवेजयन्ती अ समूसिआ गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणु-पुव्वीए संपत्थिआ, तयणन्तरं छत्तभिंगारं, तयणंतरं च णं वइरामयवट्टलट्ठसंठिअसुसिलिट्ठपरिघट्ठपट्ठसुपइट्ठिए विसिट्ठे अणेगवर-पञ्चवण्णकुडभीसहस्सपरिमण्डिआभिरामे वाउद्धुअविजयवेजयन्तीपडागाछत्ताइच्छत्तकलिए तुंगे गयणतलमणुलिहंतसिहरे जोअणस-हस्समूसिए महइमहालए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिएत्ति, तयणन्तरं च णं सरूवनेवत्थपरिअच्छिअसुसज्जा सव्वालं-कारविभूसिआ पञ्च अणिआ पञ्च अणिआहिवईणो जाव संपट्ठिआ, तयणन्तरं च णं बहवे आभिओगिआ देवा य देवीओ अ सएहिं सएहिं रूवेहिं जाव णिओगेहिं सक्कं देविंदं देवरायं पुरओ अ मग्गओ अ अहाठ, तयणन्तरं च णं बहवे सोहम्मकप्पवासी

५वक्षस्कारे जन्ममहे शक्रेन्द्रागमः सू. ११७

॥४०१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन-जन्मोत्सव अवसरे शक्र आदि इन्द्राणाम् आगमनं एवं तेषाम् कृत्याणाम् वर्णनं

देवा य देवीओ अ सव्विड्ढीए जाव दुरूढा समाणा मग्गओ अ जाव संपट्ठिआ, तए णं से सक्के तेणं पञ्चाणिअपरिक्खित्तेणं जाव महिंदज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं चउरासीए सामाणिअ जाव परिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झं-मज्झेणं तं दिव्वं देविड्ढिं जाव उवदंसेमाणे २ जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले निज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जोअणसयसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे २ ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीईवयमाणे २ तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं-मज्झेणं जेणेव णन्दीसरवरे दीवे जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एवं जा चेव सूरिआभस्स वत्तव्वया णवरं सक्काहिगारो वत्तव्वो इति जाव तं दिव्वं देविड्ढिं जाव दिव्वं जाणविमाणं पडिसाहरमाणे २ जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणनगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणं दिव्वेणं जाण-विमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स उत्तरपुत्थिमे दिसीभागे चतुरंगुल-मसंपत्तं धरणियले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवेइ २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गन्धव्वाणीएण य णट्टाणीएण य साद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ, तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइ सामा-णिअसाहस्सीओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति, अवसेसा देवा य देवीओ अ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंतित्ति । तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीए सामाणिअसाहस्सी-एहिं जाव सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुभिणिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए चेव पणामं करेइ २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ २ त्ता करयल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

जाव एवं वयासी–णमोत्थु ते रयणकुच्छिधारए एवं जहा दिसाकुमारीओ जाव धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थाऽसि, अहण्णं देवाणुप्पिए! सक्के णामं देविन्दे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामि, तं णं तुब्भाहिं ण भाइव्वंतिकट्टु ओसोवणिं दलयइ २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं विउव्वइ तित्थयरमाउआए पासे ठवइ २ त्ता पञ्च सक्के विउव्वइ विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेन्ति एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पकड्ढइत्ति, तए णं से सक्के देविन्दे देवराया अण्णेहिं बहूहिं भवणवइवाणमन्तरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाइएणं ताए उक्किट्ठाए जाव वीईवयमाणे जेणेव मन्दरे पव्वए जेणेव पंडगवणे जेणेव अभिसेअसिला जेणेव अभिसेअसीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णेत्ति (सूत्रं ११७)

'तए ण'मित्यादि, ततः स शक्र इत्यादि व्यक्तं, दिव्यं–प्रधानं जिनेन्द्रस्य भगवतोऽभिगमनाय–अभिमुखगमनाय योग्यं–उचितं यादृशेन वपुषा सुरसमुदायसर्वातिशायिश्रीर्भवति तादृशेनेत्यर्थः 'सर्वालङ्कारविभूषितं' सर्वैः–शिरःश्रवणाद्यलङ्कारैर्विभूषितं, उत्तरवैक्रियशरीरत्वात्, स्वाभाविकवैक्रियशरीरस्य तु आगमने निरलङ्कारतयैवोत्पादश्रवणात्, उत्तरं–भवधारणीयशरीरापेक्षया कार्योत्पत्तिकालापेक्षया चोत्तरकालभावि वैक्रियरूपं विकुर्वति, विकुर्व्य चाष्टाभिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिः प्रत्येकं २ षोडशदेवीसहस्रपरिवारपरिवृताभिर्नाट्यानीकेन गन्धर्वानीकेन च सार्द्धं तं विमानमनुप्रदक्षिणीकुर्वन् २ पूर्वदिक्स्थेन त्रिसोपानेनारोहति, आरुह्य च यावच्छब्दात् 'जेणेव सीहासणे तेणेव

॥४०२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११७]

दीप अनुक्रम [२२९]

उवागच्छइ २ त्ता' इति ग्राह्यं, सिंहासने पूर्वाभिमुखः सन्निषण्ण इति । अथास्थानं सामानिकादिभिः यथा पूर्य्यते तथाऽऽह—'एवं चेव'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं अवशेषाश्च—आभ्यन्तरपार्षद्यादयः । अथ प्रतिष्ठासोः शक्रस्य पुरः प्रस्थायिनां क्रममाह—'तए णं तस्स'इत्यादि, एतद्व्याख्या भरतचक्रिणोऽयोध्याप्रवेशाधिकारतो ज्ञेया, 'तए ण'-मित्यादि, तदनन्तरं छत्रं च भृङ्गारं च छत्रभृङ्गारं समाहारादेकवद्भावः, छत्रं च 'वेरुलिअभिसंतविमलदण्ड'मित्यादि-वर्णकयुक्तं भरतस्यायोध्याप्रवेशाधिकारतो ज्ञेयं, भृङ्गारश्च विशिष्टवर्णकचित्रोपेतः, पूर्वं च भृङ्गारस्य जलपूर्णत्वेन कथ-नात् अयं च जलरिक्तत्वेन विवक्षित इति न पौनरुक्त्यं, तदनन्तरं वज्रमयो—रत्नमयः तथा वृत्तं—वर्तुलं लष्टं—मनोज्ञं संस्थितं—संस्थानं आकारो यस्य स तथा, तथा सुश्लिष्टः—सुश्लेषापन्नावयवो मसृण इत्यर्थः परिघृष्ट इव परिघृष्टः खरशाणया पाषाणप्रतिमावत् मृष्ट इव मृष्टः सुकुमारशाणया पाषाणप्रतिमेव सुप्रतिष्ठितो न तु तिर्यक्पतितया वक्रस्तत एतेषां पदद्वयस्यमीलनेन कर्मधारयः, अत एव शेषध्वजेभ्यो विशिष्टः—अतिशायी, तथाऽनेकानि वराणि पञ्चवर्णानि कुडभीनां—लघुपताकानां सहस्राणि तैः परिमण्डितः—अलंकृतः स चासावभिरामश्चेति, वातोद्धूतेत्यादि-विशेषणद्वयं व्यक्तं, तथा गगनतलं—अम्बरतलमनुलिखत्—संस्पृशत् शिखरं—अग्रभागो यस्य स तथा, योजनसहस्र-मुत्सृतोऽत एवाह—'महइमहालए'इति अतिशयेन महान् महेन्द्रध्वजः पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थित इति, 'तए ण'-मित्यादि, तदनन्तरं स्वरूपं—स्वकर्मानुसारि नेपथ्यं—वेषः परिकच्छितः—परिगृहीतो यैस्तानि तथा, सुसज्जानि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्णसामग्रीकतया प्रगुणानि सर्वालङ्कारविभूषितानि पञ्चानीकानि पञ्चानीकाधिपतयश्च पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितानि, 'तयणन्तरं च ण'मित्यादि, तदनन्तरं बहवः आभियोगिका देवाश्च देव्यश्च स्वकैः स्वकैः रूपैः–यथास्वकर्मोपस्थितैरुत्तरवैक्रियस्वरूपैर्यावच्छब्दात्स्वकैः स्वकैः विभवैः–यथास्वकर्म्मोपस्थितैर्विभवैः–सम्पत्तिभिः स्वकैर्नियोगैः–उपकरणैः शक्रं देवेन्द्रं देवराजं पुरतश्च मार्गतश्च–पृष्ठतः पार्श्वतश्च उभयोः यथानुपूर्व्या–यथावृद्धक्रमेण सम्प्रस्थिताः, 'तयणन्तरं च ण'मित्यादि, तदनन्तरं बहवः सौधर्मकल्पवासिनो देवाश्च देव्यश्च सर्वर्द्ध्या यावत्करणादिन्द्रस्य हरिनिगमेषिणं पुरः स्वाज्ञप्तिविषयकः प्रागुक्त आलापको ग्राह्यः, तेन स्वानि २ यानविमानवाहनानि आरूढाः सन्तो मार्गतश्च यावच्छब्दात् पुरतः पार्श्वतश्च शक्रस्य सम्प्रस्थिताः । अथ यथा शक्रः सौधर्मकल्पान्निर्याति तथा चाह— 'तए ण'मित्यादि, ततः स शक्रस्तेन–प्रागुक्तस्वरूपेण पञ्चभिः संग्रामिकैरनीकैः परिक्षिप्तेन–सर्वतः परिवृतेन यावत् पूर्वोक्तः सर्वो महेन्द्रध्वजवर्णको ग्राह्यः, महेन्द्रध्वजेन पुरतः प्रकृष्यमाणेन–निर्गम्यमानेन चतुरशीत्या सामानिकसहस्रैर्यावत्करणात् 'चउहिं चउरासीहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं' इत्यादि ग्राह्यं, परिवृतः सर्वर्द्ध्या यावद्रवेण यावत्करणात् 'सव्वज्जुईए'इत्यादि प्रागुक्तं ग्राह्यं, सौधर्मस्य कल्पस्य मध्यंमध्येन तां दिव्यां देवर्द्धिं यावच्छब्दाद् 'दिवं देवजुइं दिवं देवाणुभावं' इति ग्रहः, सौधर्मकल्पवासिनं देवानामुपदर्शयन् २ यत्रैव सौधर्मकल्पस्योत्तराहो निर्याणमार्गो–निर्गमनसम्बन्धी पन्थास्तत्रैवोपागच्छति, यथा वरयिता नागराणां विवाहोत्सवस्फातिदर्शनार्थं राजपथे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११७]

दीप अनुक्रम [२२९]

याति नतु नष्टरथ्यादौ तथाऽयमपि, एतेन समग्रदेवलोकाधारभूतपृथिवीप्रतिष्ठितविमाननिरुद्धमार्गत्वेनेतस्ततः सञ्चरणाभावेन मध्यंमध्येनेति उत्तरिले णिज्जाणमग्गे इत्युक्तमिति ये आहुस्ते आगमसाम्मत्यं युक्तिसाङ्गत्यं च प्रष्टव्याः, उपागत्य च योजनशतसाहस्रिकैः–योजनलक्षप्रमाणैर्विग्रहैः–क्रमैरिव गन्तव्यक्षेत्रातिक्रमरूपैः, एतेन स्थावरस्वरूपस्य विमानस्य पदन्यासरूपाः क्रमाः कथं भवेयुरिति शङ्का निरस्ता, अवपतन् अवपतन् तयोत्कृष्टया यावत्करणात् 'तुरिआए' इत्यादिग्रहः, देवगत्या व्यतिव्रजन् २ तिर्यगसंख्येयानां द्वीपसमुद्राणां मध्यंमध्येन यत्रैव नन्दीश्वरवरद्वीपो यत्रैव तस्यैव पृथुत्वमध्यभागे दक्षिणपूर्वः–आग्नेयकोणवर्त्ती रतिकरपर्वतस्तत्रैवोपागच्छति, इदं च स्थानांगाद्याशयेनोक्तं, अन्यथा प्रवचनसारोद्धारादिषु पठ्यमानानां पूर्वाद्यञ्जनगिरिविदिग्व्यवस्थितवापीद्वयद्वयान्तराले बहिःकोणयोः प्रत्यासत्तौ प्रत्येकं द्वय२भावेन तिष्ठतामष्टानां रतिकरपर्वतानां मध्ये विनिगमनाविरहात् कतरो रतिकरपर्वतो दक्षिणपूर्वः स्यादिति, ननु सौधर्मादवतरतः शक्रस्य नन्दीश्वरद्वीप एवावतरणं युक्तिमत्, न पुनरसंख्येयद्वीपसमुद्रातिक्रमेण तत्रागमनमिति, उच्यते, निर्याणमार्गस्यासंख्याततमस्य द्वीपस्य वा समुद्रस्य वा उपरिस्थितत्वेन सम्भाव्यमानत्वात् तत्रावतरणं, ततश्च नन्दीश्वराभिगमनेऽसंख्यातद्वीपसमुद्रातिक्रमणं युक्तिमदेवेति, अत्र दृष्टान्ताय सूत्रं 'एवं जा चेव'त्ति एवमुक्तरीत्या यैव सूर्याभस्य वक्तव्यता यथा सूर्याभः सौधर्मकल्पादवतीर्णस्तथाऽयमपीत्यर्थः, नवरं अयं भेदः–शक्राधिकारो वक्तव्यः–सौधर्मेन्द्रनाम्ना सर्वं वाच्यम् 'जाव तं दिव्वं'इत्यादि, प्रायो व्यक्तं, नवरमत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११७]

दीप अनुक्रम [२२९]

प्रथमयावच्छब्दो दृष्टान्तविषयीकृतसूर्याभाधिकारस्यावधिसूचनार्थः, स चावधिर्विमानप्रतिसंहरणपर्यन्तो वाच्यः, द्वितीययावच्छब्दो 'दिव्वं देवजुइं दिव्वं दिव्वाणुभावं' इति पदद्वयग्राही, अस्य चायमर्थः–दिव्यां देवर्द्धिं–परिवारसम्पदं स्वविमानवर्ज्जसौधर्मकल्पवासिदेवविमानानां मेरौ प्रेषणात्, तथा दिव्यां देवद्युतिं शरीराभरणादिहासेन तथा दिव्यं देवानुभावं देवगतिह्रस्वताऽऽपादनेन, तथा दिव्यं यानविमानं पालकनामकं जम्बूद्वीपपरिमाणन्यूनविस्तरायामकरणेन प्रतिसंहरन् २–संक्षिपन् संक्षिपन्निति, तृतीययावच्छब्दो 'जेणेव जम्बुद्दीवे दीवे जेणेव भरहे वासे' इति ग्राहकः, ननु पूर्वत्रिसोपानप्रतिरूपकेणोत्तारः शक्रस्योक्तोऽपराभ्यां केषामुत्तार इत्याह–'तए णं सक्कस्स देविन्दस्स देवरण्णो' इत्यादि व्यक्तम् । अथ शक्रः किमकार्षीदित्याह—'तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीए'इत्यादि, कण्ठ्यं, यावत्पदसंग्राह्यं तु पूर्वसूत्रानुसारेण बोध्यं, यदवादीत्तदाह—'णमुत्थु ते'इत्यादि, नमोऽस्तु तुभ्यं रत्नकुक्षिधारिके ! एवंप्रकारं सूत्रं यथा दिक्कुमार्य आहुस्तथाऽवादीदित्यर्थः, यावच्छब्दादिदं ग्राह्यम्–जगप्पईवदाईए चक्खुणो अमुत्तस्स सव्वजगजीववच्छलस्स हिअकारगमग्गदेसिअवागिद्धिविभुप्पभुस्स जिणस्स णाणिस्स नायगस्स बुद्धस्स बोहगस्स सव्वलोगणाहस्स सव्वजगमङ्गलस्स णिम्ममस्स पवरकुलसमुप्पभवस्स जाईए खत्तियस्स जंसि लोगुत्तमस्स जणणी'ति, कियत्पर्यन्तमित्याह–धन्याऽसि पुण्याऽसि त्वं कृतार्थाऽसि, अहं देवानुप्रिये! शक्रो नाम देवेन्द्रो देवराजा भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमां करिष्यामि, तन युष्माभिर्न भेतव्यमितिकृत्वा अवस्वापिनीं ददाति–सुते मेरुं नीते सुतविरहार्त्ता मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११७]

दीप अनुक्रम [२२९]

दुःखभागभूदिति दिव्यनिद्रया निद्राणां करोतीत्यर्थः, दत्त्वा च तीर्थकरस्य मेरुं नेतव्यस्य भगवतः प्रतिरूपकं–जिनसदृशं रूपं विकुर्वन्ति, अस्मासु मेरुं गतेषु जन्ममहव्यापृतिव्यग्रेषु आसन्नदुष्टदेवतया कुतूहलादिनाऽपहृतनिद्रा सती मा इयं तथा भवत्विति भगवद्रूपान्निर्विशेषं रूपं विकुर्वतीत्यर्थः, विकुर्व्य च तीर्थकरमातुः पार्श्वे स्थापयति स्थापयित्वा च पञ्च शक्रान् विकुर्वति, आत्मना पञ्चरूपो भवतीत्यर्थः, विकुर्व्य च तेषां पञ्चानां मध्ये एकः शक्रो भगवन्तं तीर्थकरं परमशुचिना सरसगोशीर्षचन्दनलिप्तेन धूपवासितेनेति शेषः करतलयोः–ऊर्ध्वाधोव्यवस्थितयोः पुटं–सम्पुटं शुक्तिकासम्पुटमिवेत्यर्थः तेन गृह्णाति एकः शक्रः पृष्ठत आतपत्रं–छत्रं धरति द्वौ शक्रावुभयोः पार्श्वयोश्चामरोत्क्षेपं कुरुतः एकः शक्रः पुरतो वज्रपाणिः सन् प्रकर्षति–निर्गमयति, आत्मानमिति शेषः, अग्रतः प्रवर्त्तत इत्यर्थः, अत्र च सत्यपि सामानिकादिदेवपरिवारे यदिन्द्रस्य स्वयमेव पञ्चरूपविकुर्वणं तत् त्रिजगद्गुरोः परिपूर्णसेवालिप्सुत्वेनेति । अथ यथा शक्रो विवक्षितस्थानमाप्नोति तथा आह—'तए णं से सक्के'इत्यादि, ततः स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा अन्यैर्बहुभिर्भवनपतिवानमन्तरज्योतिष्कवैमानिकैर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं सम्परिवृतः सर्वर्द्ध्या यावत्करणात् 'सव्वज्जुईए' इत्यादि पदसङ्ग्रहः पूर्वोक्तो ज्ञेयः, तयोत्कृष्टया यावत्करणात् 'तुरिआए'इत्यादिग्रहः व्यतिव्रजन् २ यत्रैव मन्दरपर्वतो यत्रैव च पण्डकवनं यत्रैव चाभिषेकशिला यत्रैव चाभिषेकसिंहासनं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च सिंहासन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११७]

दीप अनुक्रम [२२९]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४०५॥

वरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्ण इति, पालकविमानं च गृहीतस्वामिकस्य स्वस्वामिनः पादचारित्वेन तमनुव्रजतां देवानामप्यनुपयोगित्वादभिषेकशिलायां यावदनुव्रजदभूदिति सम्भाव्यते । अथेशानेन्द्रावसरः—

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविन्दे देवराया सूलपाणी वसभवाहणे सुरिन्दे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीसविमाणवाससयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे एवं जहा सक्के इमं णाणत्तं—महाघोसा घण्टा लहुपरक्कमो पायत्ताणियाहिवई पुप्फओ विमाणकारी दक्खिणे निज्जाणमग्गे उत्तरपुरत्थिमिल्लो रइकरपव्वओ मन्दरे समोसरिओ जाव पज्जुवासइत्ति, एवं अवसिट्ठावि इंदा भाणिअव्वा जाव अच्चुओत्ति, इमं णाणत्तं—चउरासीइ असीइ बावत्तरि सत्तरी अ सट्ठी अ । पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा ॥ १ ॥ एए सामाणिआणं, बत्तीसट्ठावीसा बारसट्ठ चउरो सयसहस्सा । पण्णा चत्तालीसा छच्च सहस्सारे॥१॥ आणयपाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिण्णि । एए विमाणाणं, इमे जाणविमाणकारी देवा, तंजहा—पालय १ पुप्फे य २ सोमणसे ३ सिरिवच्छे अ ४ णंदिआवत्ते ५ । कामगमे ६ पीइगमे ७ मणोरमे ८ विमल ९ सव्वओभद्दे १० ॥ १ ॥ सोहम्मगाणं सणंकुमारगाणं बंभलोअगाणं महासुक्कयाणं पाणयगाणं इंदाणं सुघोसा घण्टा हरिणेगमेसी पायत्ताणीआहिवई उत्तरिल्ला णिज्जाणभूमी दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए, ईसाणगाणं माहिंदलंतगसहस्सारअच्चुअगाण य इंदाण महाघोसा घण्टा लहुपरक्कमो पायत्ताणीआहिवई दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे उत्तरपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए, परिसा णं जहा जीवाभिगमे आयरक्खा सामाणिअचउग्गुणा सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोअणसयसहस्सविच्छिण्णा उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा माहिंदज्झया सव्वेसिं जोअणसाहस्सिआ, सक्कवज्जा मन्दरे समोअरंति जाव पज्जुवासंतित्ति (सूत्रं ११८)

५वक्षस्कारे जन्ममहे ईशानेन्द्रागमः सू. ११८

॥४०५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२३०--२३५]

'तेणं कालेण'मित्यादि, तस्मिन् काले सम्भवज्जिनजन्मके तस्मिन् समये–दिक्कुमारीकृत्यानन्तरीये न तु शक्रागमनानन्तरीये सर्वेषामिन्द्राणां जिनकल्याणकेषु युगपदेव समागमनारम्भस्य जायमानत्वात्, यत्तु सूत्रे शक्रागमनानन्तरीयमीशानेन्द्रागमनमुक्तं तत्क्रमेणैव सूत्रबन्धस्य सम्भवात्, ईशानो देवेन्द्रो देवराजा शूलपाणिर्वृषभवाहनः सुरेन्द्र उत्तरार्द्धलोकाधिपतिः, मेरोरुत्तरतोऽस्यैवाधिपत्यात्, अष्टाविंशतिविमानावासशतसहस्राधिपतिः अरजांसि–निर्मलानि अम्बरवस्त्राणि–स्वच्छतयाऽऽकाशकल्पानि वसनानि धरति यः स तथा, एवं यथा शक्रः सौधर्मेन्द्रस्तथाऽयमपि, इदमत्र नानात्वं–विशेषः महाघोषा घण्टा लघुपराक्रमनामा पदात्यनीकाधिपतिः पुष्पकनामा विमानकारी दक्षिणा निर्याणभूमिः उत्तरपौरस्त्यो रतिकरपर्वतः मन्दरे समवसृतः–समागतः यावत्पदात् 'भगवन्तं तित्थयरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ २ त्ता वन्दइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे' इति, पर्युपास्ते । अथातिदेशेनावशिष्टानां सनत्कुमारादीन्द्राणां वक्तव्यमाह—'एवं अवसिट्ठावि' इत्यादि, एवं–सौधर्मेशानेन्द्रवरीत्या अवशिष्टा अपि इन्द्रा वैमानिकानां भणितव्याः यावदच्युतेन्द्रः– एकादशद्वादशकल्पाधिपतिरिति, अत्र यो विशेषस्तमाह–इदं नानात्वं–भेदः, चतुरशीतिः सहस्राणि शक्रस्य अशीतिः सहस्राणीशानेन्द्रस्य द्विसप्ततिः सहस्राणि सनत्कुमारेन्द्रस्य एवं सप्ततिर्माहेन्द्रस्य चः समुच्चये षष्टिर्ब्रह्मेन्द्रस्य चः प्राग्वत् पञ्चाशल्लान्तकेन्द्रस्य चत्वारिंशच्छुक्रेन्द्रस्य त्रिंशत्सहस्रारेन्द्रस्य विंशतिरानतप्राणतकल्पद्विकेन्द्रस्य दशारणाच्युतकल्पद्विकेन्द्रस्य,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२३०--२३५]

एते संख्याप्रकाराः सामानिकाना देवानां क्रमेण दशकल्पेन्द्रसम्बन्धिनामिति, तेन 'चउरासीए सामाणिअसाहस्सीण'-मित्येतद्विशेषणस्थाने प्रतीन्द्रालापकं असीइए सामाणिअसाहस्सीणमित्यादिअभिलापो ग्राह्यः, तथा सौधर्मेन्द्रकल्पे द्वात्रिंशल्लक्षाणि ईशाने अष्टाविंशतिर्लक्षाणि एवं सनत्कुमारे द्वादश माहेन्द्रे अष्ट ब्रह्मलोके चत्वारि तथा लान्तके पञ्चाशत्सहस्राणि एवं शुक्रे चत्वारिंशत्सहस्राणि चः समुच्चये सहस्रारे षट् सहस्राणि आनतप्राणतकल्पयोर्द्वयोः समुदितयोश्चत्वारि शतानि आरणाच्युतयोस्त्रीणि शतानि एते विमानानां संख्याप्रकाराः, यानविमानविकुर्वकाश्च देवा इमे वक्ष्यमाणाः शक्रादिक्रमेण, तद्यथा—पालकः १ पुष्पकः २ सौमनसः ३ श्रीवत्सः ४ चः समुच्चये नन्दावर्त्तः ५ कामगमः ६ प्रीतिगमः ७ मनोरमः ८ विमलः ९ सर्वतोभद्र १० इति, अथ दशसु कल्पेन्द्रेषु केनचित्प्रकारेण पञ्चानां २ साम्यमाह–सौधर्मकानां–सौधर्मदेवलोकोत्पन्नानां एवमग्रेऽपि ज्ञेयं, तथा सनत्कुमारकाणां ब्रह्मलोककानां महाशुक्रकानां प्राणतकानामिन्द्राणां, बहुवचनं सर्वकालवर्त्तीन्द्रापेक्षया, सुघोषा घण्टा हरिनेगमेषी पदात्यनीकाधिपतिः इति औत्तराहा निर्याणभूमिः दक्षिणपौरस्त्यो रतिकरपर्वतः, तथा ईशानकानां माहेन्द्रलान्तकसहस्राराच्युतकानां च इन्द्राणां महाघोषा घण्टा लघुपराक्रमः पदात्यनीकाधिपतिः दक्षिणो निर्याणमार्गः उत्तरपौरस्त्यो रतिकरपर्वतः, णमिति वाक्यालङ्कारे, पर्षदः–अभ्यन्तरमध्यबाह्यरूपाः यस्य यावद्देवदेवीप्रमाणा भवन्ति तस्य तावत्प्रमाणा यथा जीवाभिगमे तथा ज्ञेयाः; ताश्चैवं शक्रस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि १२ सहस्राणि देवानां मध्यमायां १४ सहस्राणि बाह्यायां १६ सहस्राणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११८] + गाथा: दीप अनुक्रम [२३०--२३५]

ईशानेन्द्रस्याद्यायां १० सहस्राणि द्वितीयायां १२ सहस्राणि तृतीयायां १४ सहस्राणि, सनत्कुमारेन्द्रस्याद्यायां ८ सहस्राणि द्वितीयस्यां १० सहस्राणि तृतीयायां १२ सहस्राणि एवं माहेन्द्रस्य क्रमेण ६ सहस्राणि ८ सहस्राणि १० सहस्राणि ब्रह्मेन्द्रस्य ४–६–८ सहस्राणि लान्तकेन्द्रस्य २–४–६ सहस्राणि शुक्रेन्द्रस्य १–२–४ सहस्राणि सहस्रारेन्द्रस्य ५०० शतानि १० शतानि २० शतानि आनतप्राणतेन्द्रस्य २ शते सार्द्धे ५ शतानि १० शतानि आरणाच्युतेन्द्रस्य १ शतं २ शते सार्द्धे ५०० शतानि, इमाश्च तत्तदिन्द्रवर्णके 'तिण्हं परिसाण'मित्याद्यालापके यथासङ्ख्यं भाव्याः, शक्रेशानयोर्देवीपर्षत्त्रयं जीवाभिगमादिषूक्तमपि श्रीमलयगिरिपादैः स्वावश्यकवृत्तौ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमध्यगतोऽयमितिलिख्यमानजिनजन्माभिषेकमहग्रन्थे नोक्तमिति मया तदनुयायित्वेन नालेखि, आत्मरक्षाः–अङ्गरक्षका देवाः सर्वेषामिन्द्राणां स्वस्वसामानिकेभ्यश्चतुर्गुणाः, एते चेत्थं वर्णके अभिलाप्याः 'चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं चउण्हं असीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं चउण्हं बावत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं आहेवच्चं' इत्यादि, तथा यानविमानानि सर्वेषां योजनशतसहस्रविस्तीर्णानि उच्चत्वेन स्वविमानप्रमाणानि–इन्द्रस्य स्वस्वविमानं सौधर्मावतंसकादि तस्येव प्रमाणं पञ्चशतयोजनादिकं येषां तानि तथा, अस्यायमर्थः–आद्यकल्पद्विकविमानानामुच्चत्वं पञ्चयोजनशतानि द्वितीये द्विके षट् योजनशतानि तथा तृतीये द्विके सप्त तथा चतुर्थे द्विकेऽष्टौ ततोऽग्रेतने कल्पचतुष्के विमानानामुच्चत्वं नव योजनश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तानि, तथा सर्वेषा महेन्द्रध्वजाः योजनसाहस्रिकाः–सहस्रयोजनविस्तीर्णा शक्रवर्ज्जा मन्दरे समवसरन्ति यावत्पर्युपासते यावत्पदसंग्रहः प्राग्वत् । अथ भवनवासिनः––

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिन्दे असुरराया चमरचञ्चाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणिअसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसेहिं चउहिं लोगपालेहिं पञ्चहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं चउहिं चउसट्ठीहिं आयरक्खसाहस्सीहिं अण्णेहि अ जहा सक्के णवरं इमं णाणत्तं–दुमो पायत्ताणीआहिवई ओघस्सरा घण्टा विमाणं पण्णासं जोअणसहस्साइं महिन्दज्झओ पञ्चजोअणसयाइं विमाणकारी आभिओगिओ देवो अवसिट्ठं तं चेव जाव मन्दरे समोसरइ पज्जुवासईति । तेणं कालेणं तेणं समएणं बली असुरिन्दे असुरराया एवमेव णवरं सट्ठी सामाणीअसाहस्सीओ चउगुणा आयरक्खा महादुमो पायत्ताणीआहिवई महाओहस्सरा घण्टा सेसं तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे इति । तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव णाणत्तं छ सामाणिअसाहस्सीओ छ अग्गमहिओ चउग्गुणा आयरक्खा मेघस्सरा घण्टा भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई विमाणं पणवीसं जोअणसहस्साइं महिंदज्झओ अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं एवमसुरिन्दवज्जिआणं भवणवासिइंदाणं, णवरं असुराणं ओघस्सरा घण्टा णागाणं मेघस्सरा सुवण्णाणं हंसस्सरा विज्जूणं कोंचस्सरा अग्गीणं मंजुस्सरा दिसाणं मंजुघोसा उदहीणं सुस्सरा दीवाणं मधुरस्सरा वाऊणं णंदिस्सरा थणिआणं णंदिघोसा, चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं । सामाणिआ उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥ १ ॥ दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीआहिवई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११९] + गाथाः

दीप अनुक्रम [२३६--२३८]

भद्दसेणो उत्तरिल्लाणं दक्खोत्ति । वाणमन्तरजोइसिआ णेअव्वा, एवं चेव, णवरं चत्तारि सामाणिअसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सोलस आयरक्खसहस्सा विमाणा सहस्सं महिन्दज्झया पणवीसं जोअणसयं घण्टा दाहिणाणं मंजुस्सरा उत्तराणं मंजुघोसा पायत्ताणीआहिवई विमाणकारी अ आभिओगा देवा जोइसिआणं सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसाओ घण्टाओ मन्दरे समोसरणं जाव पज्जुवासंतित्ति (सूत्रं ११९)

'तेणं कालेणं तेणं समएण'मित्यादि प्राग्वत्, चमरोऽसुरेन्द्रोऽसुरराजा चमरचञ्चायां राजधान्यां सभायां सुधर्मायां चमरे सिंहासने चतुःषष्ट्या सामानिकसहस्रैः त्रयस्त्रिंशता त्रायस्त्रिंशैः चतुर्भिः लोकपालैः पञ्चभिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिः तिसृभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः चतसृभिः चतुःषष्टिभिरात्मरक्षकसहस्रैः अन्यैश्चेत्यालापकांशेन सम्पूर्ण आलापकस्त्वयं बोध्यः–'चमरचञ्चारायहाणीवत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि अ देवीहि अ'त्ति, यथा शक्रस्तथाऽयमप्यवगम्यः, नवरमिदं नानात्वं–भेदः, द्रुमः पदात्यनीकाधिपतिः ओघस्वरा घण्टा यानविमानं पञ्चाशद् योजनसहस्राणि विस्तारायामं महेन्द्रध्वजः पञ्चयोजनशतान्युच्चः विमानकृदाभियोगिको देवो न पुनर्वैमानिकेन्द्राणां पालकादिरिव नियतनामकः अवशिष्टं तदेव–शक्राधिकारोक्तं वाच्यं नवरं दक्षिणपश्चिमो रतिकरपर्वतः, कियद्दूरमित्याह—यावन्मन्दरे समवसरति पर्युपास्त इति । अथ बलीन्द्रः–'तेणं कालेण'मित्यादि, तस्मिन् काले तस्मिन् समये बलिरसुरेन्द्रोऽसुरराजा एवमेवेति—चमर इव नवरं षष्टिः सामानिकसहस्राणि चतुर्गुणा आत्मरक्षाः, सामानि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२३६--२३८]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥४०८॥

कसंख्यातश्चतुर्गुणसंख्याङ्काः आत्मरक्षका इत्यर्थः, महाद्रुमः पदात्यनीकाधिपतिः महौघस्वरा घण्टा 'व्याख्यातोऽधिकं प्रतिपद्यत' इति चमरचञ्चास्थाने बलिचञ्चा दाक्षिणात्यो निर्याणमार्गः उत्तरपश्चिमो रतिकरपर्वत इति, शेषं–यानविमानविस्तारादिकं तदेव–चमरचञ्चाधिकारोक्तमेव, पर्षदो यथा जीवाभिगमे, इदं च सूत्रं देहलीप्रदीपन्यायेन सम्बन्धनीयं, यथा देहलीस्थो दीपोऽन्तःस्थदेहलीस्थबाह्यस्थवस्तुप्रकाशनोपयोगी तथेदमप्युक्ते चमराधिकारे उच्यमाने बलीन्द्राधिकारे वक्ष्यमाणेष्वष्टसु भवनपतिषूपयोगी भवति, त्रिंष्वप्यधिकारेषु पर्षदो वाच्या इत्यर्थः, तथाहि––चमरस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि २४ सहस्राणि देवानां मध्यमायां २८ सहस्राणि बाह्यायां च ३२ सहस्राणि, तथा बलीन्द्रस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि २० सहस्राणि मध्यमायां २४ सहस्राणि बाह्यायां २८ सहस्राणि, तथा धरणेन्द्रस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि ६० सहस्राणि मध्यमायां ७० सहस्राणि बाह्यायां ८० सहस्राणि, भूतानन्दस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि ५० सहस्राणि मध्यमायां ६० सहस्राणि बाह्यायां ७० सहस्राणि, अवशिष्टानां भवनवासिषोडशेन्द्राणां मध्ये ये वेणुदेवादयो दक्षिणश्रेणिपतयस्तेषां पर्षत्त्रयं धरणेन्द्रस्येव उत्तरश्रेण्यधिपानां वेणुदालिप्रमुखाणां भूतानन्दस्येव ज्ञेयम् । अथ धरणः-'तेणं कालेण'मित्यादि, तस्मिन् काले तस्मिन् समये धरणस्तथैव–चमरवत् नवरमिदं नानात्वं–भेदः षट् सामानिकसहस्राणां षडग्रमहिष्यः चतुर्गुणा आत्मरक्षकाः मेघस्वरा घण्टा भद्रसेनः पदात्यनीकाधिपतिः विमानं पञ्चविंशतियोजनसहस्राणि महेन्द्रध्वजोऽर्द्धतृतीयानि योजनशतानि, अथावशिष्टभवनवासीन्द्रवक्तव्यतामस्यातिदेशेनाह––'एवम-

५वक्षस्कारे जन्ममहे चमराद्यागमः सू. ११९

॥४०८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११९] + गाथाः

दीप अनुक्रम [२३६--२३८]

सुरिन्द'इत्यादि, एवं–धरणेन्द्रन्यायेनासुरेन्द्रौ–चमरबलीन्द्रौ ताभ्यां वर्जितानां भवनवासीन्द्राणां भूतानन्दादीनां वक्तव्यं बोध्यं, नवरं असुराणां–असुरकुमाराणां ओघस्वरा घण्टा नागानां–नागकुमाराणां मेघस्वरा घण्टा सुपर्णानां–गरुडकुमाराणां हंसस्वरा विद्युत्कुमाराणां क्रौञ्चस्वरा अग्निकुमाराणां मंजुस्वरा दिक्कुमाराणां मंजुघोषा उदधिकुमाराणां सुस्वरा द्वीपकुमाराणां मधुरस्वरा वायुकुमाराणां नन्दिस्वरा स्तनितकुमाराणां नन्दिघोषा, एषामेवोक्तानुक्तसामानिकसंग्रहार्थं गाथामाह–चतुष्षष्टिश्चमरेन्द्रस्य षष्टिर्बलीन्द्रस्य खलुर्निश्चये षट् च सहस्राणि असुरवर्जानां धरणेन्द्रादीनामष्टादशभवनवासीन्द्राणां सामानिकाः चः समुच्चये तथा पुनरर्थे भिन्नक्रमे तेनैते सामानिकाः चतुर्गुणाः पुनरात्मरक्षका भवन्ति, दाक्षिणात्यानां चमरेन्द्रवर्जितानां भवनपतीन्द्राणां भद्रसेनः पदात्यनीकाधिपतिः औत्तराहाणां बलिवर्जितानां दक्षो नाम्ना पदातिपतिः, यच्चात्र घण्टादिकं पूर्वं स्वस्वसूत्रे उक्तमप्युक्तं तत्समुदायवाक्ये सर्वसङ्ग्रहार्थमिति। अथ व्यन्तरेन्द्रज्योतिष्केन्द्राः–'वाणमंतर' इत्यादि, व्यन्तरेन्द्रा ज्योतिष्केन्द्राश्च नेतव्याः–शिष्यबुद्धिं प्रापणीयाः एवमेव, यथा भवनवासिनस्तथैवेत्यर्थः, नवरं चत्वारि सामानिकानां सहस्राणि चतस्रोऽग्रमहिष्यः षोडश आत्मरक्षकसहस्रा विमानानि योजनसहस्रमायामविष्कम्भाभ्यां महेन्द्रध्वजः पञ्चविंशत्यधिकयोजनशतं घण्टाश्च दाक्षिणात्यानां मञ्जुस्वरा औत्तराहाणां मञ्जुघोषाः, पदात्यनीकाधिपतयो विमानकारिणश्च आभियोगिका देवाः, कोऽर्थः?–स्वाम्यादिष्टा हि आभियोगिका देवा घण्टावादनादिकर्मणि विमानविकुर्वणे च प्रवर्त्तन्ते न पुनर्हरिनिगमैषिवत्पालकवच्च निर्दिष्टनामका इति, 'व्याख्या विशेषप्रति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११९] + गाथाः

दीप अनुक्रम [२३६--२३८]

पादिनी'तिसूत्रेऽनुक्तमपीदं बोध्यं–सर्वेषामभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां ८ सहस्राणि मध्यमायां १० सहस्राणि बाह्यायां १२ सहस्राणीति, एतेषामुल्लेखस्त्वयम्–'तेणं कालेणं तेणं समएणं काले णामं पिसाइंदे पिसायराया चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणीएहिं सत्तहिं अणीआहिवइहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं' 'तं चेव, एवं सवेवी'ति, व्यन्तरा इव ज्योतिष्का अपि ज्ञेयाः, तेन सामानिकादिसङ्ख्यासु न विशेषः, घण्टासु चायं विशेषः–चन्द्राणां सुस्वरा सूर्याणां सुस्वरनिर्घोषा, सर्वेषां च मंदरे समवरणं वाच्यं यावत्पर्युपासते, यावच्छब्दग्राह्यं तु प्राग्दर्शितं ततो ज्ञेयं, एतदुल्लेखस्त्वयं–'तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदा जोइसिंदा जोइसरायाणो पत्तेअं पत्तेअं चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणिआहिवइहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, एवं जहा वाणमंतरा एवं सूराविं' नन्वत्रोल्लेखे चन्द्राः सूर्या इत्यत्र बहुवचनं किमर्थम् ?, प्रस्तुतकर्मणि एकस्यैव सूर्यस्य चन्द्रस्य चाधिकृतत्वात् अन्यथेन्द्राणां चतुःषष्टिसङ्ख्याकत्वव्याघातात् ?, उच्यते, जिनकल्याणकादिषु दश कल्पेन्द्रा विंशतिर्भवनवासीन्द्राः द्वात्रिंशद्व्यन्तरेन्द्राः एते व्यक्तितः चन्द्रसूर्यौ तु जात्यपेक्षया तेन चन्द्राः सूर्या असङ्ख्याता अपि समायान्ति, के नाम न कामयन्ते भुवनभट्टारकाणां दर्शनं स्वदर्शनं पुपूषवः?, यदुक्तं शान्तिचरित्रे श्रीमुनिदेवसूरिकृते श्रीशान्तिदेवजन्ममहवर्णने–"ज्योतिष्कनायकौ पुष्पदन्तौ सङ्ख्यातिगाविति । हेमाद्रिमाद्रियन्ते स्म, चतुःषष्टिः सुरेश्वराः ॥ १ ॥" अथामीषां प्रस्तुतकर्मणीतिवक्तव्यतामाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं से अच्चुए देविन्दे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! महत्थं महग्घं महारिहं विउलं तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेह, तए णं ते अभिओगा देवा हट्ठतुट्ठ जाव पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं जाव समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णिअकलसाणं एवं रुप्पमयाणं मणिमयाणं सुवण्णरुप्पमयाणं सुवण्णमणिमयाणं रुप्पमणिमयाणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं अट्ठसहस्सं चन्दणकलसाणं एवं भिंगाराणं आयंसाणं थालाणं पाईणं सुप्पईट्ठगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं वायकरगाणं पुप्फचंगेरीणं, एवं जहा सूरिआभस्स सव्वचंगेरीओ सव्वपडलगाइं विसेसिअतराइं भाणिअव्वाइं, सीहासणछत्तचामरतेल्लसमुग्ग जाव सरिसवसमुग्गा तालिअंटा जाव अट्ठसहस्सं कडुच्छुगाणं विउव्वंति विउव्वित्ता साहाविए विउव्विए अ कलसे जाव कडुच्छुए अ गिण्हित्ता जेणेव खीरोदए समुद्दे तेणेव आगम्म खीरोदगं गिण्हन्ति २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति, एवं पुक्खरोदाओ जाव भरहेरवयाणं मागहाइतित्थाणं उदगं मट्टिअं च गिण्हन्ति २ त्ता एवं गंगाईणं महाणईणं जाव चुल्लहिमवन्ताओ सव्वतुअरे सव्वपुप्फे सव्वगन्धे सव्वमल्ले जाव सव्वोसहीओ सिद्धत्थए य गिण्हन्ति २ त्ता पउमद्दहाओ दहोअगं उप्पलादीणि अ, एवं सव्वकुलपव्वएसु वट्टवेअड्ढेसु सव्वमहद्दहेसु सव्ववासेसु सव्वचक्कवट्टिविजएसु वक्खारपव्वएसु अंतरणईसु विभासिज्जा जाव उत्तरकुरुसु जाव सुदंसणभद्दसालवणे सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए अ गिण्हन्ति, एवं णन्दणवणाओ सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए अ सरसं च गोसीसचन्दणं दिव्वं च सुमणदामं गेण्हन्ति, एवं सोमणसपंडगवणाओ अ सव्वतुअरे जाव सुमणसदामं दद्दरमलय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१२०]

दीप अनुक्रम [२३९]

सुगन्धे य गिण्हन्ति २ त्ता एगओ मिलंति २ त्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता महत्थं जाव तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेंतित्ति (सूत्रं १२०)

'तए ण'मित्यादि, ततः सोऽच्युतो यः प्रागभिहितो देवेन्द्रो देवराजा महान् देवाधिपो महेन्द्रः चतुःषष्टावपि इन्द्रेषु लब्धप्रतिष्ठोऽत एवास्य प्रथमोऽभिषेक इति, आभियोग्यान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा च एवमवादीत्, यदवादीत्तदाह–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! महार्थं महार्हं विपुलं तीर्थकराभिषेकमुपस्थापयत, अत्र महार्थादिपदानि प्राग्भरतराज्याधिकारे वर्णितानि, वाक्ययोजना तु सुलभा, अथ यथा ते चक्रुस्तथाऽऽह–'तए ण'मित्यादि, ततस्ते आभियोगिका देवा हृष्टतुष्टयावत् प्रतिश्रुत्य उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागमपक्रामन्ति अपक्रम्य च वैक्रियसमुद्घातेन यावत्पदात् 'समोहणंति'त्ति ग्राह्यं समवहत्य चाष्टसहस्रं–अष्टोत्तरं सहस्रं सौवर्णिककलशानां विकुर्वन्तीति सम्बन्धः, एवं अष्टसहस्रं रूप्यमयानां मणिमयानां सुवर्णरूप्यमयानां सुवर्णमणिमयानां रूप्यमणिमयानां सुवर्णरूप्यमणिमयानां अष्टसहस्रं भौमेयकानां मृन्मयानामित्यर्थः अष्टसहस्रं वन्दनकलशानां–मङ्गल्यघटानां एवं भृङ्गाराणां आदर्शानां स्थालीनां पात्रीणां सुप्रतिष्ठकानां चित्राणां रत्नकरण्डकानां वातकरकाणां–बहिश्चित्रितानां मध्ये जलशून्यानां करकाणां पुष्पचङ्गेरीणामष्टसहस्रं, एवमुक्तन्यायेन यथा सूर्याभस्य राजप्रश्नीये इन्द्राभिषेकसमये सर्वचङ्गेर्यस्तथाऽत्र वाच्याः 'अट्ठसहस्सं आभरणचङ्गेरीणं लोमहत्थचङ्गेरीण'मिति, तथा सर्वपटलकानि वाच्यानि, तथाहि–अष्टसहस्रं पुष्पपटलकानां, इमानि वस्तूनि सूर्याभा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिषेकोपयोगवस्तुभिः सङ्ख्ययैव तुल्यानि नतु गुणेनेत्याह–विशेषिततराणि–अतिविशिष्टानि भणितव्यानि–वाच्यानि, प्रथमकल्पीयदेवविकुर्वणातोऽच्युतकल्पदेवविकुर्वणाया अधिकतरत्वात्, तथा सिंहासनच्छत्रचामरतिलसमुद्गकयावत्सर्षपसमुद्गकः, अत्र यावत्पदात् कोष्ठसमुद्गकादयो वाच्याः, एषां च व्याख्या प्राग्वत्, तालवृन्तानि यावत्करणात् व्यजनानीति ग्रहः, तत्र व्यजनानीति सामान्यतो वातोपकरणानि तालवृंतानि तद्विशेषरूपाणि, एषामष्टसहस्रमष्टसहस्रमिति, अष्टसहस्रं धूपकडुच्छुकानामिति। अथ विकुर्वणायाः सार्थकत्वमाह–'विउव्वित्ता' इत्यादि, विकुर्वित्वा च स्वाभाविकान्–देवलोके देवलोकवत् स्वयंसिद्धान् शाश्वतान् वैक्रियांश्च–अनन्तरोक्तान् सौवर्णादिकान् यावच्छब्दात् भृङ्गारादयो व्यजनान्ता ग्राह्याः, धूपकडुच्छुकांश्च सूत्रे साक्षादुपात्तान्, गृहीत्वा च यत्रैव क्षीरोदः समुद्रः तत्रैवागत्य क्षीरोदकं–क्षीररूपमुदकं गृह्णन्ति, ननु मेरुतोऽभिषेकाङ्गभूतवस्तुग्रहणाय चलन्तस्ते देवास्तद्ग्रहणोपयोगि वस्तुजातं कलशभृङ्गरादिकं गृह्णन्तु परं तदनुपयोगि यावच्छब्दोदरप्रविष्टं सिंहासनचामरादिकं तैलसमुद्गकादिकं च कथं गृह्णन्तीति चेदुच्यते, विकुर्वणासूत्रस्यातिदेशेन ग्रहणसूत्रस्यातिदिष्टत्वादेतत्सूत्रपाठस्यान्तर्गतत्वेऽपि ये ग्रहणोचितास्ते एव गृहीता इति बोध्यं, योग्यतावशादेवार्थप्रतिपत्तेः, यच्च धूपकडुच्छुकानां तत्र ग्रहणं तत्कलशभृङ्गारादिदेवहस्तधूपनार्थमिति, अन्यथा सूत्रे साक्षादुपदर्शितस्य धूपकडुच्छुकानां ग्रहणस्य नैरर्थक्यापत्तेः, अथ प्रस्तुतसूत्रं–गृहीत्वा च यानि तत्र क्षीरोदे उत्पलानि पद्मानि यावत्सहस्रपत्राणि तानि गृह्णन्ति यावत्पदात् कुमुदादिग्रहः, एवमनया रीत्या पुष्क-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

रोदात्–तृतीयसमुद्रात् उदकादिकं गृह्णन्ति, यत्तु क्षीरोदाद्विनिवृत्तैर्वारुणीवरमन्तरा मुक्त्वा पुष्करोदे जलं गृहीतं तद्वारुणीवरवारिणोऽग्राह्यत्वादिति सम्भाव्यते, यावच्छब्दात् समयखित्ते इति ग्राह्यं, तेन समयक्षेत्रे—मनुष्यक्षेत्रे भरतैरावतयोः प्रस्तावात् पुष्करवरद्वीपार्द्धसत्कयोः मागधादीनां तीर्थानामुदकं मृत्तिकां च गृह्णन्ति, 'एव'मिति समयक्षेत्रस्थपुष्करवरद्वीपार्द्धसत्कानां गङ्गादीनां महानदीनां आदिशब्दात् सर्वमहानदीग्रहः यावत्पदात् उदकमुभयतटमृत्तिकां गृह्णन्ति, क्षुद्रहिमवतः सर्वान् तुवरान्–कषायद्रव्याणि आमलकादीनि सर्वाणि जातिभेदेन पुष्पाणि सर्वान् गन्धान्–वासादीन् सर्वाणि माल्यानि–ग्रथितादिभेदभिन्नानि सर्वा महौषधीः–राजहंसीप्रमुखाः सिद्धार्थकांश्च–सर्षपान् गृह्णन्ति २ त्वा च पद्मद्रहाद् द्रहोदकमुत्पलादीनि च गृह्णन्ति, एवं क्षुद्रहिमवन्न्यायेन सर्वक्षेत्रव्यवस्थाकारित्वेन कुलकल्पाः पर्वताः मध्यपदलोपे कुलपर्वता हिमाचलादयस्तेषु वृत्तवैताढ्येषु सर्वमहाद्रहेषु–पद्मद्रहादिषु सर्ववर्षेषु–भरतादिषु सर्वचक्रवर्त्तिविजयेषु–कच्छादिषु वक्षस्कारपर्वतेषु–गजदन्ताकृतिषु माल्यवदादिषु सरलाकृतिषु च चित्रकूटादिषु तथा अन्तरनदीषु–ग्राहावत्यादिषु विभाषेत–वदेत्, पर्वतेषु तु तुवरादीनां द्रहेषु उत्पलादीनां कर्मक्षेत्रेषु मागधादितीर्थोदकमृदां नदीषूदकोभयतटमृदां ग्रहणं वक्तव्यमित्यर्थः, यावत्पदात् देवकुरुपरिग्रहस्तेन कुरुद्वये चित्रविचित्रगिरियमकगिरिकाञ्चनगिरिह्रददशकेषु यथासम्भवं वस्तुजातं गृह्णन्ति, यावत्पदात् पुष्करवरद्वीपार्द्धस्य पूर्वापरार्द्धयोर्भरतादिस्थानेषु वस्तुग्रहो वाच्यः, ततो जम्बूद्वीपेऽपि तद्ग्रहस्तथैव वाच्यः, कियत्पर्यन्तमित्याह–सुदर्शने पूर्वार्धमेरौ भद्रशालवने नन्दनवने सौमनसवने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२०]

दीप अनुक्रम [२३९]

पण्डकवने च सर्वतुबरान् गृह्णन्ति तथा तस्यैवापरार्धे अनेनैव क्रमेण वस्तुजातं गृह्णन्ति, ततो धातकीखण्डजम्बूद्वीपगतो मेरुस्तस्य भद्रशालवने सर्वतुबरान् यावत् सिद्धार्थकांश्च गृह्णन्ति, एवमस्यैव नन्दनवनात् सर्वतुबरान् यावत्सिद्धार्थकांश्च सरसं च गोशीर्षचन्दनं दिव्यं च सुमनोदाम–ग्रथितपुष्पाणि गृह्णन्ति, एवं सौमनसवनात् सूत्रपाठे पञ्चमीलोपः प्राकृतत्वात् पण्डकवनाच्च सर्वतुबरान् यावत् सुमनोदामदर्दरमलयसुगन्धिकान् गन्धान्, दर्दरमलयौ चन्दनोत्पत्तिस्थानिभूतौ पर्वतौ तेन तदुद्भवं चन्दनमपि 'तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेश' इति न्यायेन दर्दरमलयशब्दाभ्यामभिधीयते, ततो दर्दरमलयनामके चन्दने तयोः सुगन्धः–परमगन्धो यत्र तान् दर्दरमलयसुगन्धिकान् गन्धान्–वासान् गृह्णन्ति, गृहीत्वा च इतस्ततो विप्रकीर्णा आभियोग्यदेवा एकत्र मिलन्ति मिलित्वा च यत्रैव स्वामी तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य च तं महार्थं यावच्छब्दात् महार्घं महार्हं विपुलमिति पदत्रयी तीर्थकराभिषेकं तीर्थकराभिषेकयोग्यं क्षीरोदकाद्युपस्करमुपस्थापयन्ति–उपनयन्ति, अच्युतेन्द्रस्य समीपस्थितं कुर्वन्तीत्यर्थः । अथाच्युतेन्द्रो यदकरोत्तदाह–

तए णं से अच्चुए देविन्दे दसहिं सामाणिअसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणिआहिवईहिं चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे तेहिं साभाविएहिं विउव्विएहि अवरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं चन्दणकयचच्चाएहिं आविद्धकण्ठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं करयलसुकुमारपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवण्णिआणं कलसाणं जाव अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाणं जाव सव्वोदएहिं सव्वमट्टिआहिं सव्वतुअरेहिं जाव

Jain Education Inter For Private & Personal Use Only jainelibrary.org

सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सविड्ढीए जाव रवेणं महया २ तित्थयराभिसेएणं अभिसिंचंति, तए णं सामिस्स महया २ अभिसेअंसि वट्टमाणंसि इंदाईआ देवा छत्तचामरधूवकडुच्छुअपुप्फगन्धजावहत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव वज्जसूलपाणी पुरओ चिट्ठंति पंजलिउडा इति, एवं विजयाणुसारेण जाव अप्पेगइआ देवा आसिअसंमज्जिओवलित्तसित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहिअं करेन्ति जाव गन्धवट्टिभूअंति, अप्पेग० हिरण्णवासं वासिंति एवं सुवण्णरयणवइरआभरणपत्तपुप्फफलबीअमल्लगन्धवण्ण जाव चुण्णवासं वासंति, अप्पेगइआ हिरण्णविहिं भाइंति एवं जाव चुण्णविधिं भाइंति, अप्पेगइआ चउव्विहं वज्जं वाएन्ति तंजहा–ततं १ वितत २ घणं ३ झुसिरं ४, अप्पेगइआ चउव्विहं गेअं गायन्ति, तंजहा–उक्खित्तं १ पायत्तं २ मन्दायईयं ३ रोइआवसाणं ४, अप्पेगइआ चउव्विहं णट्टं णच्चन्ति, तं०–अंचिअं १ दुअं २ आरभडं ३ भसोलं ४, अप्पेगइआ चउव्विहं अभिणयं अभिणेंति, तं०–दिट्ठंतिअं पाडिस्सुइअं सामण्णोवणिवाइअं लोगमज्झावसाणिअं, अप्पेग० बत्तीसइविहं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेन्ति, अप्पेगइआ उप्पयनिवयं निवयउप्पयं संकुचिअपसारिअं जाव भन्तसंभन्तणामं दिव्वं नट्टविहिं उवदंसन्तीति, अप्पेगइआ तंडवेंति अप्पेगइआ लासेन्ति अप्पेगइआ पीणेन्ति, एवं बुक्कारेन्ति अप्फोडेन्ति वग्गन्ति सीहणायं णदन्ति अप्पे० सव्वाइं करेन्ति अप्पे० हयहेसिअं एवं हत्थिगुलुगुलाइअं रहघणघणाइअं अप्पे० तिण्णिवि, अप्पे० उच्छोलन्ति अप्पे० पच्छोलन्ति अप्पे० तिवइं छिंदन्ति पायदद्दरयं करेन्ति भूमिचवेडे दलयन्ति अप्पे० महया सद्देणं रावेंति एवं संजोगा विभासिअव्वा, अप्पे० हक्कारेन्ति, एवं पुक्कारेन्ति वक्कारेन्ति ओवयंति उप्पयंति परिवयंति जलन्ति तवंति पयवंति गज्जंति विज्जुआयंति वासिंति अप्पेगइआ देवुक्कलिअं करेंति एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवकहकहगं करेंति अप्पे० दुहुदुहुगं करेंति अप्पे० विकिअभूयाइं रूवाइं विउव्वित्ता पणच्चंति एवमाइ विभासेज्जा जहा विजयस्स जाव सव्वओ समन्ता आहावेंति परिधावेंतित्ति । (सूत्रं १२१)

'तए णं से अच्चुए' इत्यादि, ततः उपस्थितायामभिषेकसामग्र्यां सोऽच्युतो देवेन्द्रो दशभिः सामानिकसहस्रैः त्रयस्त्रिंशता त्रायस्त्रिंशकैः चतुर्भिर्लोकपालैः तिसृभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः चत्वारिंशता आत्मरक्षकदेवसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतस्तैस्तद्गतदेवजनप्रसिद्धैः स्वाभाविकैर्वैक्रियैश्च वरकमलप्रतिष्ठानैरित्यादि सर्वं प्राग्वत्, सुकुमालकरतलपरिगृहीतैरनेकसहस्रसङ्ख्यैः कलशैरिति गम्यते, तानेव विभागतो दर्शयति–अष्टसहस्रेण सौवर्णिकानां कलशानां यावत्पदादष्टसहस्रै रौप्याणामष्टसहस्रेण मणिमयानामष्टसहस्रेण सुवर्णरूप्यमयानामष्टसहस्रेण सुवर्णमणिमयानामष्टसहस्रेण रूप्यमणिमयानामष्टसहस्रेण सुवर्णरूप्यमणिमयानामिति अष्टसहस्रेण भौमेयानां सर्वसङ्ख्यया अष्टभिः सहस्रैः चतुःषष्ट्यधिकैर्यावच्छब्दात् भृङ्गारादिपरिग्रहः सर्वोदकैः सर्वमृत्तिकाभिः सर्वतुवरैर्यावच्छब्दात् पुष्पादिग्रहः, सर्वौषधिसिद्धार्थकैः सर्वर्द्ध्या यावद्रवेण यावच्छब्दात् 'सव्वजुईए इत्यारभ्य दुंदुहिनिग्घोसनाइअ' इत्यन्तं ग्राह्यं, महता २ तीर्थकराभिषेकेण, अत्र करणे तृतीया, कोऽर्थः ?–येनाभिषेकेण तीर्थकरा अभिषिच्यन्ते तेनेत्यर्थः, अत्राभिषेकशब्देनाभिषेकोपयोगि क्षीरोदादिजलं ज्ञेयम्, अभिषिञ्चति–अभिषेकं करोतीत्यर्थः । सम्प्रत्यभिषेककारिणं इन्द्रादपरे इन्द्रादयो यच्चक्रुस्तदाह—'तए णं'मित्यादि, ततः स्वामिनोऽतिशयेन महत्यभिषेके वर्त्तमाने इन्द्रादिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाः छत्रचामरकलशधूपकडुच्छुकपुष्पगन्धयावत्पदात् माल्यचूर्णादिपरिग्रहः, हस्तगताः हृष्टतुष्टयावत्पदादानन्दालापको ग्राह्यः, वज्रशूलपाणयः उपलक्षणादन्यशस्त्रपाणयोऽपि भाव्याः पुरतस्तिष्ठन्ति, अयमर्थः–केचन छत्रधारिणः केचन चामरोत्क्षेपकाः केचन कलशधारिण इत्यादि, सेवाधर्मसत्यापनार्थं न तु वैरिनिग्रहार्थं तत्र वैरिणामभावात्, केचन वज्रपाणयः, केचन शूलपाणय इति, केचन छत्राद्यव्यग्रपाणयः प्राञ्जलिकृतास्तिष्ठन्ति, अत्रातिदेशमाह–'एवं विजया' इत्यादि, एवमुक्तप्रकारमभिषेकसूत्रं विजयदेवाभिषेकसूत्रानुसारेण ज्ञेयं, यावत्पदात् 'अप्पेगइआ पंडगवणं णच्चोअगं णाइमट्टिअं पविरलपफुसियं रयरेणुविणासणं दिव्वं सुरहिगंधोदकवासं वासंति, अप्पेगइआ निहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति' इति ग्राह्यम्, अत्र व्याख्या प्राग्वत्, वाक्ययोजना त्वेवं–अपिर्बाढार्थे, एककाः–केचन देवाः पण्डकवने नात्युदकं नातिमृत्तिकं यथा स्यात्तथा प्रविरलप्रस्पृष्टं रजोरेणुविनाशनं दिव्यं सुरभिगन्धोदकवर्षं वर्षन्ति, अप्येककाः पण्डकवनं निहतरजः नष्टरजः भ्रष्टरजः प्रशान्तरजः उपशान्तरजः कुर्वन्ति, अथ सूत्रं–अप्येककाः देवाः पण्डकवनं आसिक्तसम्मार्जितोपलिप्तं तथा सिक्तानि जलेन अत एव शुचीनि सम्मृष्टानि कचवरापनयेन रथ्यान्तराणि-आपणवीथय इवापणवीथयो रथ्याविशेषा यस्मिन् तत्तथा कुर्वन्ति, अयमर्थः–तत्र स्थानस्थानानीतचन्दनादिवस्तूनि मार्गान्तरेषु तथा राशीकृतानि सन्ति यथा हट्टश्रेणिप्रतिरूपं दधति, यावत्पदात् 'पंडगवणं मंचाइमंचकलिअं करेंति, अप्पेगइआ णाणाविहरागऊसिअज्झयपडागमंडिअं करेंति, अप्पेगइआ गोसीसचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलं करेंति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पेगइआ उवचिअवंदणकलसं अप्पेगइआ चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं करेंति, अप्पेगइआ आसत्तोसत्त-विपुलवट्टवग्घारिअमल्लदामकलावं करेंति, अप्पेगइआ पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुंजोवयारकलिअं करेंति, अप्पेगइआ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगंधियं' इति ग्राह्यं, पुनः प्रकारान्तरेण देवकृत्यमाह–'अप्पेगइआ हिरण्ण'इत्यादि, अप्येककाः हिरण्यस्य–रूप्यस्य वर्षं–वृष्टिं वर्षन्ति कुर्वन्तीत्यर्थः, एवं सर्वत्र योजना कार्या, नवरं सुवर्णं प्रतीतं, रत्नानि–कर्केतनादीनि वज्राणि–हीरकाः आभरणानि–हारादीनि पत्राणि–दमनकादीनि पुष्पाणि फलानि च प्रतीतानि बीजानि सिद्धार्थादीनि माल्यानि–ग्रथितपुष्पाणि गन्धाः–वासाः वर्णो–हिङ्गुलादिः यावच्छब्दाद्वस्त्रमिति चूर्णानि–सुगन्धद्रव्यक्षोदाः, तथा अप्येककाः हिरण्यविधिं–हिरण्यरूपं मङ्गलप्रकारं भाजयन्ति शेषदेवेभ्यो ददतीत्यर्थः, एवं यावत्पदात् सुवर्णविधिं रत्नविधिं इत्यादिपदानि ग्राह्याणि चूर्णविधिं भाजयन्ति। अथ सङ्गीतविधिरूपमुत्सवमाह–'अप्पेगइआ चउविहं वज्जं' इत्यादि, अप्येककाश्चतुर्विधं वाद्यं वादयन्ति, तद्यथा—ततं–वीणादिकं विततं–पटहादिकं, श्रीहेमचन्द्रसूरिपादास्तु विततस्थाने आनद्धमाहुः, घनं–तालप्रभृतिकं शुषिरं–वंशादिकं, अप्येककाः चतुर्विधं गेयं गायन्ति, तद्यथा–उत्क्षिप्तं–प्रथमतः समारभ्यमाणं पादात्तं–पादवृद्धं वृत्तादिचतुर्भागरूपपादबद्धमिति भावः मंदायमिति–मध्यभागे मूर्च्छनादिगुणोपेततया मन्दं मन्दं घोलनात्मकं, 'रोचितावसान'मिति रोचितं–यथोचितलक्षणोपेततया भावितं सत्यापितमितियावत् अवसानं यस्य तत्तथा, 'रोइअग'मिति पाठे रोचितकमित्यर्थः, स एव,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्येककाः चतुर्विधं नाट्यं नृत्यन्ति, तद्यथा–अञ्चितं द्रुतं आरभटं भसोलमिति, अप्येककाश्चतुर्विधमभिनयमभिनयन्ति, तद्यथा—दार्ष्टान्तिकं प्रातिश्रुतिकं सामान्यतो विनिपातिकं लोकमध्यावसानिकमिति, एते नाट्यविधयोऽभिनयविधयश्च भरतादिसङ्गीतशास्त्रज्ञेभ्योऽवसेयाः, अप्येकका द्वात्रिंशद्विधं अष्टमाङ्गलिक्यादिकं दिव्यं नाट्यविधिमुपदर्शयन्ति, स च येन क्रमेण भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः पुरतः सूर्याभदेवेन भावितो–राजप्रश्नीयोपाङ्गे दर्शितस्तेन क्रमेणोपदर्श्यते, तत्र प्रारिप्सितमहानाट्यरूपमङ्गल्यवस्तुनिर्विघ्नसिद्ध्यर्थमादौ मङ्गल्यनाट्यं, तथाहि–स्वस्तिकश्रीवत्सनन्द्यावर्त्तवर्द्धमानकभद्रासनकलशमत्स्यदर्पणरूपाष्टमाङ्गलिक्यभक्तिचित्रं, अत्राष्टपदानां व्याख्या प्राग्वत्, नवरं तेषां भक्त्या–विच्छित्त्या चित्रं–आलेखनं तत्तदाकाराविर्भावना यत्र तत्तथा तदुपदर्शयन्तीत्यर्थः, अयमर्थः–यथा हि चित्रकर्मणि सर्वे जगद्वर्त्तिनो भावाश्चित्रयित्वा दर्श्यन्ते तथा तेऽभिनयविषयीकृत्य नाट्येऽपि,अभिनयः–चतुर्भिराङ्गिकवाचिकसात्त्विकाहार्यभेदैः समुदितैरसमुदितैर्वाऽभिनेतव्यवस्तुभावप्रकटनं, प्रस्तुते चाङ्गिकेन नाट्यकर्तृणां तत्तन्मङ्गलाकारतयाऽवस्थानं हस्तादिना तत्तदाकारदर्शनं वा वाचिकेन प्रबन्धादौ तत्तन्मङ्गलशब्दोच्चारणं सभासदां मनसि रक्तिपूर्वकं तत्तन्मङ्गलस्वरूपाविर्भावनं मङ्गलनाट्यमिति १, अथ द्वितीयं नाट्यं, आवर्त्तप्रत्यावर्त्तश्रेणिप्रश्रेणिस्वस्तिकपुष्यमाणवर्द्धमानकमत्स्याण्डकमकराण्डकजारमारपुष्पावलिपद्मपत्रसागरतरङ्गवासन्तीलतापद्मलताभक्तिचित्रं, तत्र सृष्टिक्रमेण भ्रमद्भ्रमरिकादानैर्नर्त्तनमावर्त्तस्तद्विपरीतक्रमेण भ्रमरिकादानैर्नर्त्तनं प्रत्यावर्त्तः श्रेण्या–पङ्क्त्या स्वस्तिकाः श्रेणिस्वस्तिकाः, ते चैकपङ्क्तिगता अपि स्युरिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२१]

दीप अनुक्रम [२४०]

अनुवृत्ताः श्रेणिस्वस्तिकाः प्रश्रेणिस्वस्तिकाः, अत्र प्रशब्दोऽनुवृत्तार्थे यथा प्रशिष्यः प्रपुत्र इत्यादौ, अयमर्थः–मुख्यस्यैकस्य स्वस्तिकस्य प्रतिशाखं गता अन्ये स्वस्तिका इत्यर्थः, एतेन प्रथमनाट्यगतस्वस्तिकनाट्याद् भेदो दर्शितः, तदभिनयेन नर्त्तनं, तथा पुष्यमाणः-पुष्टीभवन् तदभिनयेन नृत्यं, यथा हि पुष्टो गच्छन् जल्पन् श्वसिति बहु बहु प्रस्विद्यति दारुहस्तप्रायौ स्वहस्तावतिमेदस्विनौ चालयन् २ सभासदामुपहासपात्रं भवति तथाऽभिनयो यत्र नाट्ये तत्पुष्यमाणनाट्यं, एतदेवोत्तरसूत्रकारो 'अप्पेगइआ पीणेंती'ति सूत्रेण स्वयमेव वक्ष्यति, वर्द्धमानकः–स्कन्धाधिरूढः पुरुषस्तदभिनयगर्भितं नाट्यं वर्द्धमानकनाट्यं, एतेन प्रथमनाट्यगतवर्द्धमाननाट्याद्भेदो दर्शितः, मत्स्यानामण्डकं मत्स्याण्डकं मत्स्या हि अण्डाज्जायन्ते तदाकारकरणेन यन्नर्त्तनं तन्मत्स्याण्डकनाट्यं, एवं मकराण्डकमपि, न हि यथाकामविकुर्विणां देवानां किञ्चिदसाध्यं नाट्येन चानभिनेतव्यं येन तदभिनयो न सम्भवतीति, मत्स्यकाण्डपाठे तु मत्स्यकाण्डं–मत्स्यवृन्दं, तद्धि सजातीयैः सह मिलितमेव जलाशये चलति, सङ्गचारित्वात्, तथा यत्र नटोऽन्यनटैः सह सङ्गतो रङ्गभूमौ प्रविशति ततो वा निर्याति तन्मत्स्यकाण्डनाट्यम्, एवं मकरकाण्डपाठे मकरवृन्दं वाच्यं, तद्धि यथा विकृतरूपत्वेनातीव द्रष्टृणां त्रासकृद् भवति तथा यन्नाट्यं तदाकारदर्शनेन भयानकं स्यात् तद्भयानकरसप्रधानं मकरकाण्डं नाम नाटकं, तथा जारनाटकं जारः-उपपतिः स च यथा स्त्रीभिः अतिरहस्येव रक्ष्यते तद्वद्यत्र मूलवस्तुतिरोधानात्तत्तदिन्द्रजालाविर्भावनेन सभासदा मनस्यन्यदेवावतार्यते तज्जारनामकं नाट्यं, तथा मारनाटकं मारः–कामस्तदुद्दीपकं नाटकं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मारनाटकं, शृङ्गाररसप्रधानमित्यर्थः, तथा पुष्पावलिनाट्यं यत्र कुसुमापूर्णसच्छिद्रवंशशलाकादिदर्शनेनाभिनयस्तत्पुष्पावलिनाटकं, तथा पद्मपत्रनाट्यं यत्र पद्मपत्रेषु नृत्यन्नटस्तथाविधकरणप्रयत्नविशेषेण वायुरिव लघूभवन् न पद्मपत्रं क्रमयति नापि त्रोटयति न वक्रीकरोति तत्पद्मपत्रोपलक्षितं नाट्यं पद्मपत्रनाटकं, तथा सागरतरङ्गाभिनयं नाम नाट्यं यत्र वर्णनीयवस्तुनो वचनचातुर्यवर्णनाद्यैः सागरतरङ्गा अभिनीयन्ते अथवा यत्र तकतक झें झें किटता किटता कुकु इत्यादयस्तालोद्घट्टनार्थकवर्णा बहवोऽस्खलद्गत्या प्रोच्यन्ते तत्सागरतरङ्गनामनाटकं, एवं वसन्तादिऋतुवर्णने वासन्तीलतापद्मलतावर्णनाभिनयं नाटकं, नन्वेवं सत्यभिनेतव्यवस्तूनामानन्त्येन नाट्यानामप्यानन्त्यप्रसङ्गस्तेन द्वात्रिंशत्सङ्ख्याकत्वविरोधः, उच्यते, एषा च सूत्रोक्ता सङ्ख्या, उपलक्षणाच्चान्येऽपि तत्तदभिनयकरणपूर्वकं नाट्यभेदा ज्ञेयाः, एवं सर्वनाट्येष्वपि ज्ञेयं २, अथ तृतीयं–ईहामृगऋषभतुरगनरमकरविहगव्यालकिन्नररुरुसरभचमरकुञ्जरवनलतापद्मलताभक्तिचित्रं, तत्र ईहामृगा–वृकाः ऋषभादयः प्रतीताः नवरं रुरवश्चमराश्च मृगविशेषाः वनो–वृक्षविशेषस्तस्य लताः ३, अथ चतुर्थं–एकतोवक्रद्विधातोवक्रएकतश्चक्रवालद्विधातश्चक्रवालचक्रार्द्धचक्रवालाभिनयात्मकः, एकतोवक्रं नाम नटानां एकस्यां दिशि धनुराकारश्रेण्या नर्त्तनं, अनेन श्रेणिनाट्यान्नेदो दर्शितः, एवं द्विधातोवक्रं द्वयोः परस्पराभिमुखदिशोः धनुराकारश्रेण्या नर्त्तनं, तथा एकतश्चक्रवालं–एकस्यां दिशि नटानां मण्डलाकारेण नर्त्तनं, एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विधातश्चक्रवालं–द्वयोः परस्पराभिमुखदिशोर्ज्ञेयं, तथा 'चक्रार्द्धचक्रवालं' चक्रस्य–रथाङ्गस्यार्द्धं तद्रूपं यच्चक्रवालं–मण्डलं तदाकारेण नर्त्तनं अर्द्धमण्डलाकारेणेत्यर्थः, तदभि-

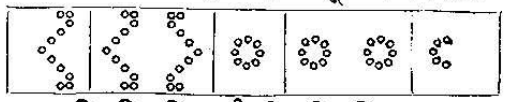

नयं नाम नाटकं, एकतोवक्रादीनां क्रमेण स्थापना यथा–

इदं च नटानां नर्त्तने संस्थानविशेषप्रधानं नाम नाटकं ४, अथ पञ्चमं–चन्द्रावलिप्रविभक्तिसूर्यावलिप्रविभक्तिवलयतारा-हंसैकमुक्ताकनकरत्नावलिप्रविभक्त्यभिनयात्मकमावलिप्रविभक्तिनामकं, तत्र चन्द्राणामावलिः–श्रेणिस्तस्याः प्रविभक्तिः-विच्छित्ती रचनाविशेषस्तदभिनयात्मकं, एवं सूर्यावलिप्रविभक्त्यभिनयात्मकं, तथा वलयादिरत्नान्तेषु पदेषु आवलि-शब्दो योज्यस्तेन वलयावलिप्रविभक्त्यादि, अयमर्थः–पङ्क्तिस्थितानां रजतस्थालहस्तानां भ्रमरीपरायणानां नटानां नाट्यं, एवं वलयहस्तानां वलयनाट्यं, एवं वर्त्तुलकहस्तगतानां तारावलिनाट्यं, अनयैव युक्त्या तत्सदृशवस्तुदर्शनेन अचिन्त्य-त्वाद्वा वैक्रियशक्तेस्तद्वस्तुदर्शनेन तत्तदभिनयकरणं तत्तन्नामकं नाट्यं ज्ञेयं, एतच्चावलिकाबद्धमित्यावलिकाप्रविभक्ति-नाम नाट्यं ५, अथ षष्ठं चन्द्रसूर्योद्गमनप्रविभक्तिकृतमुद्गमनप्रविभक्ति चन्द्रसूर्ययोरुद्गमनं–उदयनं तत्प्रविभक्ती–रचना तदभिनयगर्भं यथा उदये सूर्यचन्द्रयोर्मण्डलमरुणं प्राच्यां चारुणः प्रकाशस्तथा यत्राभिनीयते तदुद्गमनप्रवि-भक्ति ६, अथ सप्तमं–चन्द्रसूर्यागमनप्रविभक्ति चन्द्रस्य सविमानस्यागमनं–आकाशादवतरणं तस्य प्रविभक्तिर्यत्र ना-ट्येऽभिनयेन दर्शनं, एवं सूर्यागमनप्रविभक्ति ७, अथाष्टमं–चन्द्रसूर्यावरणप्रविभक्तियुक्तमावरणप्रविभक्ति, यथा हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

चन्द्रो घनपटलादिना आव्रियते तथाऽभिनयदर्शनं चन्द्रावरणप्रविभक्ति, एवं सूर्यावरणप्रविभक्त्यपि ८, अथ नवमं-चन्द्रसूर्यास्तमयनप्रविभक्तियुक्तमस्तमथनप्रविभक्ति यत्र सर्वतः सन्ध्यारागप्रसरणतमःप्रसरणकुमुदसङ्कोचादिना चन्द्रा-स्तमयनमभिनीयते तच्चन्द्रास्तमयनप्रविभक्ति, एवं सूर्यास्तमयनप्रविभक्त्यपि, नवरं कमलसङ्कोचोऽत्र वक्तव्यः ९, अथ दशमं-चन्द्रसूर्यनागयक्षभूतराक्षसगन्धर्वमहोरगमण्डलप्रविभक्तियुक्तं मण्डलप्रविभक्ति, तथा बहूनां चन्द्राणां मण्ड-लाकारेण–चक्रवालरूपेण निदर्शनं चन्द्रमण्डलप्रविभक्ति, एवं बहूनां सूर्यनागयक्षभूतराक्षसगन्धर्वमहोरगाणां मण्डलाकारे-णाभिनयनं वाच्यं, अनेन चन्द्रमण्डलसूर्यमण्डलयोश्चन्द्रावलिसूर्यावलिनाट्यतो भेदो दर्शितस्तयोरावलिकाप्रविष्टत्वात् १०, अथैकादशं–ऋषभसिंहललितहयगजविलसितमत्तहयगजविलसिताभिनयरूपं द्रुतविलम्बितं नाम नाट्यं, तत्र ऋषभसिंहौ प्रतीतौ तयोर्ललितं–सलीलगतिः तथा हयगजयोर्विलसितं–मन्थरगतिः, एतेन विलम्बितगतिरुक्ता उत्तरत्र मत्तपदविशे-षणेन द्रुतगतेर्वक्ष्यमाणत्वात्, तथा मत्तहयगजयोर्विलसितं–द्रुतगतिः तदभिनयरूपं गतिप्रधानं द्रुतविलम्बितं नाम नाट्यं ११, अथ द्वादशं–शकटोद्धिसागरनागरप्रविभक्ति, शकटोद्धिः–प्रतीता तस्याः प्रविभक्तिः–तदाकारतया हस्तयोर्वि-धानं, एतत्तु नाट्ये प्रलम्बितभुजयोर्योजने प्रणामाद्यभिनये भवतीति, तथा सागरस्य–समुद्रस्य सर्वतः कल्लोलप्रसरणव-डवानलज्वालादर्शनतिमिङ्गिलादिमत्स्यविवर्त्तनगम्भीरगर्जिताद्यभिनयनं सागरप्रविभक्ति, तथा नागराणां–नगरवासि-लोकानां सविवेकनेपथ्यकरणं क्रीडासञ्चरणं वचनचातुरीदर्शनमित्याद्यभिनयो नागरप्रविभक्ति तन्नामकं नाट्यं १२,

Jain Education International For Private & Personal Use Only jainelibrary.org

अथ त्रयोदशं–नन्दाचम्पाप्रविभक्तिनाम नाट्यं, नन्दा–नन्दाभिधानाः शाश्वत्यः पुष्करिण्यस्तासु देवानां जलक्रीडाजल-जकुसुमावचयनमन्तरणमाप्लवनमित्याद्यभिनयनं नन्दाप्रविभक्ति तथा चम्पानाम महाराजधानी उपलक्षणं चैतत् तेन कोशलाविशालादिराजधानीपरिग्रहः तासां च परिखासौधप्रासादचतुष्पदाद्यभिनयनं चम्पाप्रविभक्ति १३, अथ चतुर्दशं-मत्स्याण्डकमकराण्डकजारमारप्रविभक्तिनाम नाट्यं, एतच्तु पूर्वं व्याख्यातमेव, अत्रैषां चतुर्णामभिनयनं पृथगुक्तं तत्र तु व्यामिश्रितमिति भेदः १४, अथ पञ्चदशं–कखगघङ इति कवर्गप्रविभक्तिकं तत्र ककाराकारेणाभिनयदर्शनं ककार-प्रविभक्ति, कोऽर्थः?–तथा नाम ते नटा नृत्यन्ति यथा ककाराकारोऽभिव्यज्यते एवं खकारगकारघकारङकारप्रविभक्तयो वाच्याः, एतच्च कवर्गप्रविभक्तिकं नाट्यं, यद्यपि लिपीनां वैचित्र्येण ककाराद्याकारवैचित्र्यात् प्रस्तुतनाट्यस्याप्यनैयत्य-प्रसङ्गस्तथापि कवर्गीयजातीयत्वेन विशेषणान्नात्र दोषः, एवं चकारप्रविभक्तिजातीयमित्यादि बोध्यं, अथवा ककारश-ब्दोद्घट्टनेन चचपुटचाचपुटादौ कंकांकिंकीं इत्यादिवाचिकाभिनयस्य प्रवृत्त्या नाट्यं ककारप्रविभक्ति, एवं कादिङ-न्तानां शब्दानामादातृत्वेन ककारखकारगकारघकारङकारप्रविभक्तिकं नाट्यं, एवं चवर्गप्रविभक्त्यादिष्वपि वाच्यं १५, अथ षोडशं–चछजझञप्रविभक्तिकं १६, अथ सप्तदशं–टठडढणप्रविभक्तिकं १७, अथाष्टादशं–तथदधनप्रविभक्तिकं १८, अथैकोनविंशतितमं–पफबभमप्रविभक्तिकं १९ अथ विंशतितमं–अशोकाम्रजम्बूकोशम्बपल्लवप्रविभक्तिकं अशोकादयो–वृक्षविशेषास्तेषां पल्लवा–नवकिसलयानि ततस्ते यथा मन्दमारुतेरिता नृत्यन्ति तदभिनयात्मकं पल्लवप्रविभक्तिकं नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाट्यं २०, अथैकविंशतितमं–पद्मनागाशोकचम्पकचूतवनवासन्तीकुन्दातिमुक्तकश्यामलताप्रविभक्तिकं लताप्रविभक्तिकं नाम नाट्यं, इह येषां वनस्पतिकायिकानां स्कन्धप्रदेशविवक्षितोर्ध्वगतैकशाखाव्यतिरेकेणान्यत् शाखान्तरं परिस्थूरं न निर्गच्छति ते लता विज्ञेयास्ते च पद्मादय इति पद्मलतादिपदानामर्थः प्राग्वत्, एता यथा मारुतेरिता नृत्यन्ति तदभिनयात्मकं लताप्रविभक्तिकनाम नाट्यं २१, अथ द्वाविंशतितमं–द्रुतनाम नाट्यं, तत्र द्रुतमिति–शीघ्रं गीतवाद्यशब्दयोर्यमकसमकप्रपातेन पादतलशब्दस्यापि समकालमेव निपातो यत्र तत् द्रुतं नाट्यं २२, अथ त्रयोविंशतितमं–विलम्बितं नाम नाट्यं, यत्र विलम्बिते–गीतशब्दे स्वरघोलनाप्रकारेण यतिभेदेन विश्रान्ते तथैव वाद्यशब्देऽपि यतितालरूपेण वाद्यमाने तदनुयायिना पादसञ्चारेण नर्त्तनं तद्विलम्बितं नाम नाट्यं २३, अथ चतुर्विंशतितमं–द्रुतविलम्बितं नाम नाट्यं यथोक्तप्रकारद्वयेन नर्त्तनं २४, अथ पञ्चविंशतितमं–अञ्चितं नाट्यं, अञ्चितः–पुष्पाद्यलङ्कारैः पूजितस्तदीयं तदभिनयपूर्वकं नाट्यमप्यञ्चितमुच्यते, अनेन कौशिकीवृत्तिप्रधानाहार्य्याभिनयपूर्वकं नाट्यं सूचितं २५, अथ षड्विंशतितमं रिभितं नाम नाट्यं–तच्च मृदुपदसञ्चाररूपमिति वृद्धाः, अथवा 'रेभृङ्ग शब्दे' इत्यस्य धातोः क्तप्रत्यये रेभितं–कलस्वरेण गीतोद्गातृत्वं, अनेन वाचिकाभिनययुक्तं भारतीवृत्तिप्रधानं नाट्यमभाणि २६, अथ सप्तविंशतितमं अञ्चितरिभितं नाम नाट्यं–यत्रानन्तरोक्तमभिनयद्वयमवतरति तत् २७, अथाष्टाविंशतितममारभटं नाम नाट्यं, आरभटाः–सोत्साहाः सुभटास्तेषामिदमारभटं, अयमर्थः–महाभटानां स्कन्धास्फालनहृदयोल्वणनादिका या उद्धतवृत्तिस्तदभिनय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिति, अनेनारभटीवृत्तिप्रधानमाङ्गिकाभिनयपूर्वकं नाट्यमुक्तं ३८, अथैकोनत्रिंशं भसोलं नाम नाट्यं, 'भस भर्त्सन-दीप्त्यो'रित्यस्य ह्वादिगणस्थस्य धातोर्बभस्ति–दीप्यते इति अचि प्रत्यये भसः–शृङ्गारः पङ्क्तिरथन्यायेन शृङ्गाररस इत्यर्थः तं अवतीति भसोस्तं रतिभावाभिनयनेन लाति–गृह्णातीति भसोलो–नटस्ततो धर्मधर्मिणोरभेदोपचारात् भसोलं नाम नाट्यं, एतेन शृङ्गाररससात्त्विकभावः सूचितः, इदं च सर्वं व्याख्यानमुपलक्षणपरं ज्ञेयं, तेनात्र सर्वे सात्त्विका भावा अभिनयविषयीकार्याः, एतेन सात्त्वतीवृत्तिप्रधानं सात्त्विकाभिनयगर्भितं भसोलं नाम नाट्यं २९, अथ त्रिंशत्त-ममारभटभसोलं नाम नाट्यं, इदं चानन्तरोक्ताभिनयद्वयप्रधानं ज्ञेयं ३०, अथैकत्रिंशत्तमं उत्पातनिपातप्रवृत्तं सङ्कु-चितप्रसारितं रेचकरेचितं भ्रान्तसंभ्रान्तं नाम नाट्यं, उत्पातो–हस्तपादादीनामभिनयगत्योर्ध्वक्षेपणं तेषामेवाधःक्षेपणं निपातस्ताभ्यां यत्प्रवृत्तं प्रवृत्तिमज्जातमित्यर्थः एवं हस्तपादयोरङ्गाहारार्थं सङ्कोचनेन सङ्कुचितं प्रसारणेन च प्रसारितं, तथा रेचकैः–भ्रमरिकाभिः रेचितं–निष्पन्नं, भ्रान्तो–भ्रमप्राप्तः स इव यत्राद्भुतचरित्रदर्शनेन पर्षज्जनः सम्भ्रान्तः— साश्चर्यो भवति तत् भ्रान्तसम्भ्रान्तं तदुपचारान्नाट्यमपि भ्रान्तसम्भ्रान्तं ३१, अथ द्वात्रिंशत्तमं चरमचरमनामनिब-द्धनामकं, तच्च सूर्याभदेवेन भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः पुरतो भगवतश्चरमपूर्वमनुष्यभवचरमदेवलोकभवचरमच्यवन-चरमगर्भसंहरणचरमभरतक्षेत्रावसर्पिणीतीर्थकरजन्माभिषेकचरमबालभावचरमयौवनचरमकामभोगचरमनिष्क्रमणचर-मतपश्चरणचरमज्ञानोत्पादचरमतीर्थप्रवर्त्तनचरमपरिनिर्वाणाभिनयात्मकं भावितं, इह तु यस्य तीर्थकृतो जन्ममहं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुर्वन्ति तच्चरिताभिनयात्मकमुपदर्शयन्ति, यद्यप्यत्राञ्चितरिभितारभटभसोलेषु चतुर्षु मूलभेदेषु गृहीतेषु साभिनयनाट्यमात्रसङ्ग्रहः स्यात् तथापि क्वचिदेकैकेनाभिनयेन क्वचिदभिनयसमुदायेन क्वचिच्चाभिनयविशेषेणान्तरकरणात् सर्वप्रसिद्धद्वात्रिंशन्नाटकसङ्ख्याव्यवहारसंरक्षणार्थं द्वात्रिंशद्भेदा दर्शिताः। अथाभिनयशून्यमपि नाटकं भवतीति तत् दर्शयितुमाह–'अप्पेगइआ उप्पय'इत्यादि, अप्येकका उत्पातः–आकाशे उल्लुलनं निपातः–तस्मादवपतनं उत्पातपूर्वो निपातो यस्मिन् तदुत्पातनिपातं, एवं निपातोत्पातं, सञ्कुचितप्रसारितं ग्राग्वत्, यावत्पदात् 'रिआरिअ'मिति ग्राह्यं, तत्र रिअंगमनं रङ्गभूमेर्निष्क्रमणं आरिअं–पुनस्तत्रागमनं, भ्रान्तसम्भ्रान्तं तु अनन्तरोक्तैकत्रिंशत्तमनाटके व्याख्यातमिति ततो ग्राह्यं, इदं च पूर्वोक्तचतुर्विधद्वात्रिंशद्विधनाट्येभ्यो विलक्षणं सर्वाभिनयशून्यं गात्रविक्षेपमात्रं विवाहाभ्युदयादावुपयोगि सामान्यतो नर्त्तनं भरतादिसङ्गीतेषु नृत्तमित्युक्तं। अथोक्तमेव नाट्यं प्रकारद्वयेन सङ्ग्रहीतुमाह–'अप्पेगइआ तंडवेंति अप्पेगइआ लासेंति'त्ति, अप्येककास्ताण्डवं नाम नाटकं कुर्वन्ति, तच्चोद्भटैः करणैरङ्गहारैरभिनयैश्च निर्वर्त्त्यं, अत एवारभटीवृत्तिप्रधानं नाट्यं, अथ यथा बालस्वामिपादानां देवाः कुतूहलमुपदर्शयन्ति तथाह–'अप्पेगइआ पीणेंति' इत्यादि, अप्येकका देवाः पीनयन्ति–स्वं स्थूलीकुर्वन्ति, 'एव'मित्यप्येकका बूत्कारयन्ति–बूत्कारं कुर्वन्ति आस्फोटयन्ति–उपविशन्तः पुताभ्यां भूम्यादिकमाघ्नन्ति वल्गन्ति–मल्लवद्बाहुभ्यां परस्परं संप्रलगन्ति सिंहनादं नदन्ति–कुर्वन्ति अप्येककाः सर्वाणि–पीनत्वादीनि क्रमेण कुर्वन्ति, अप्येकका हयहेषितं–हेषारवं कुर्वन्ति, 'एव'मित्यप्येककाः हस्तिगु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लुगुलायितं–गजवद् गाँजं विदधाति रथघनघनायितं–रथवत् चीत्कुर्वन्ति, गुलुगुलुघनघन इत्यनुकरणशब्दौ, अप्येककाः हयहेषितादीनि त्रीण्यपि कुर्वन्ति, अप्येककाः उच्छोलंति–अग्रतोमुखा चपेटां ददति, अप्येककाः पच्छोलंति–पृष्ठतोमुखां चपेटां ददति, अप्येककाः त्रिपदीं मल्ल इव रङ्गभूमौ त्रिपदीं छिन्दन्ति, पाददर्दरकं–पादेन भूम्यास्फोटनरूपं कुर्वन्ति, भूमिचपेटां ददति–करेण भूमिमाघ्नन्ति, अप्येककाः महता २ शब्देन रावयन्ति–शब्दं कुर्वन्ति, एवमुक्तप्रकारेण संयोगा अपि–द्वित्रिपदमेलका अपि विभाषितव्याः–भणितव्याः, कोऽर्थः ?–केचित् उच्छोलनादिद्विकमपि कुर्वन्ति, तथा केचित् त्रिकं चतुष्कं पञ्चकं षट्कं च कुर्वन्ति, अप्येककाः हक्कारयन्ति–हक्कां ददति एवं पूत्कुर्वन्ति थक्कारयन्ति–थक्कथक्कमित्येवं शब्दं कुर्वन्ति अवपतन्ति-नीचैः पतन्ति उत्पतन्ति–ऊर्ध्वीभवन्ति तथा परिपतन्ति–तिर्यग्निपतन्ति ज्वलन्ति–ज्वालारूपा भवन्ति भास्वराग्नितां प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः, तपन्ति–मन्दाङ्गाररूपतां प्रतिपद्यन्ते, प्रतपन्ति–दीप्ताङ्गारतां प्रतिपद्यन्ते गर्जन्ति–गर्जारवं कुर्वन्ति विद्युतं कुर्वन्ति वर्षन्ति च, अत्रापि संयोगा भणितव्याः, 'अप्पे० देवानां वातस्येवोत्कलिका–भ्रमविशेषस्तां कुर्वन्ति, एवं देवानां कहकहकं–प्रमोदभरजनितकोलाहलं कुर्वन्ति अप्पे० दुहुदुहुगं कुर्वन्ति अनुकरणमेतत्, अप्पे० अधरलम्बनमुखव्यादाननेत्रस्फाटनादिना विकृतानि–भयानकानि भूतादिरूपाणि विकुर्वित्वा प्रनृत्यन्ति, एवमादि विभाषेत यथा विजयदेवस्य, कियत्पर्यन्तमित्याह–यावत् सर्वतः समन्तात् आधावंति–ईषद्धावंति परिधावन्ति–प्रकर्षेण धावन्ति, यावत्करणात् अप्पेगइआ चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइआ वंदणकलसहत्थगया अप्पेगइ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

आ भिंगारहत्थगया एवं एएणं अभिलावेणं आयंसथालपाईवायकरगरयणकरंडगपुप्फचंगेरीजाव लोमहत्थचंगेरीपुप्फ-पडलगजावलोमहत्थपडलगसीहासणछत्तचामरतिलुसमुग्गय जाव अंजणसमुग्गयहत्थगया अप्पेगइया देवा धूवकडुच्छु-अहत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव हियया' इति ग्राह्यं, अत्र व्याख्या—अप्येककाः चेलोत्क्षेपं—ध्वजोच्छ्रायं कुर्वन्ति, अप्ये-ककाः वन्दनकलशहस्तगता—मङ्गल्यघटपाणयः अप्येककाः भृङ्गारहस्तगताः, एवमनन्तरोक्तस्वरूपेण एतेनानन्तरव-र्त्तित्वात् प्रत्यक्षेणाभिलापेन सूत्रपाठेन अप्येककाः आदर्शहस्तगताः स्थालहस्तगताः यावद्धूपकडुच्छुकहस्तगताः आधावंति परिधावंतीत्यन्वयः शेषं निगदसिद्धं प्रागुक्ताभिषेकाधिकारगतेन्द्रसूत्रसमानगमत्वात् । अथाभिषेकनिगमन-पूर्वकमाशीर्वादसूत्रमाह—

तए णं से अच्चुइंदे सपरिवारे सामिं तेणं महया महया अभिसेएणं अभिसिंचइ २ त्ता करयलपरिग्गहिअं जाव मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता ताहिं इट्ठाहिं जाव जयजयसद्दं पउंजति पउंजित्ता जाव पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गन्धका-साईए गायाइं लूहेइ २ त्ता एवं जाव कप्परुक्खगंपिव अलंकियविभूसिअं करेइ २ त्ता जाव णट्टविहिं उवदंसेइ २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातण्डुलेहिं भगवओ सामिस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलगे आलिहइ, तंजहा—"दप्पण १ भद्दासणं २ वद्धमाण ३ वरकलस ४ मच्छ ५ सिरिवच्छा ६ । सोत्थिअ ७ णन्दावत्ता ८ लिहिआ अट्ठट्ठमंगलगा ॥ १ ॥" लिहित्ऊण करेइ उवयारं, किंते ?, पाडलमल्लिअचंपगसोगपुन्नागचूअमंजरिणवमालिअवउलतिलयकणवीरकुंदकुज्जगकोरंटपत्तदमणगवरसुरभिगन्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२४१--२४३]

गन्धिअस्स कयग्गहगहिअकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्कस्स दसद्धवण्णस्स कुसुमणिअरस्स तत्थ चित्तं जण्णुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिकरं करेत्ता चन्दप्पभरयणवइरवेरुलिअविमलदण्डं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलिअमयं कडुच्छुअं पग्गहित्तु पयएणं धूवं दाऊण जिणवरिंदस्स सत्तट्ठ पयाइं ओसरित्ता दसंगुलिअं अंजलिं करिअ मत्थयंमि पयओ अट्ठसयविसुद्धगन्थजुत्तेहिं महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं संथुणइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता जाव करयलपरिग्गहिअं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–णमोऽत्थु ते सिद्धबुद्धणीरयसमणसामाहिअसमत्तसमजोगिसल्लगत्तणणिब्भयणीरागदोसणिम्ममणिस्संगणीसल्लमाणमूरणगुणरयणसीलसागरमणंतमप्पमेय भविअधम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी णमोऽत्थु ते अरहओत्तिकट्टु एवं वन्दइ णमंसइ २ त्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ, एवं जहा अच्चुअस्स तहा जाव ईसाणस्स भाणिअव्वं, एवं भवणवइवाणमन्तर जोइसिआ य सूरपज्जवसाणा सएणं परिवारेणं पत्तेअं २ अभिसिंचंति, तए णं से ईसाणे देविन्दे देवराया पञ्च ईसाणे विउव्वइ २ त्ता एगे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे एगे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुवे ईसाणा उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेन्ति एगे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ, तए णं से सक्के देविन्दे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एसोवि तह चेव अभिसेआणत्तिं देइ तेऽवि तह चेव उवणेन्ति, तए णं से सक्के देविन्दे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसिं चत्तारि धवलवसभे विउव्वेइ सेए संखदलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरयणिगरप्पगासे पासाईए दरसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे, तए णं तेसिं चउण्हं धवलवसभाणं अट्ठहिं सिंगोहिंतो अट्ठ तोअधाराओ णिग्गच्छन्ति, तए णं ताओ अट्ठ तोअधाराओ उद्धं वेहासं उप्पयन्ति २ त्ता एगओ मिलायन्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२४१--२४३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४२०॥

२ त्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि निवयंति । तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीईए सामाणिअसाहस्सीहिं एअस्सवि तहेव अभिसेओ भाणिअव्वो जाव णमोऽत्थु ते अरहओत्ति कट्टु वन्दइ णमंसइ जाव पज्जुवासइ (सूत्रं १२२)

'तए ण'मित्यादि, ततः सोऽच्युतेन्द्रः सपरिवारः स्वामिनं तेन अनन्तरोक्तस्वरूपेण महता २–अतिशयेन महताऽभिषेकेणाभिषिञ्चति, निगमनसूत्रत्वान्न पौनरुक्त्यं, अभिषिच्य च करतलपरिगृहीतं यावत्पदसङ्ग्राह्यं प्राग्वत्, मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन च–प्रागुक्तस्वरूपेण वर्द्धयति–आशिषं प्रयुङ्क्ते वर्धयित्वा च ताभिर्विशिष्टगुणोपेताभिरिष्टाभिः–श्रोतृणां वल्लभाभिर्यावत्करणात् 'कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्गूहिं' इति ग्राह्यं, अत्र व्याख्या च प्राग्वत्, वाग्भिर्जय२शब्दं प्रयुङ्क्ते, सम्भ्रमे द्विर्वचनं जयशब्दस्य, अत्र जयेन विजयेन वर्द्धयित्वा पुनर्जय२शब्दप्रयोगो मंगलवचने पुनरुक्तिर्न दोषायेत्यभिहितः, अथाभिषेकोत्तरकालीनं कर्त्तव्यमाह—'पउंजित्ता' इत्यादि, प्रयुज्य च यावच्छब्दात् 'तप्पढमयाए' इति ग्राह्यं, अत्र व्याख्यातेष्वभिषेकोत्तरकालीनकर्त्तव्येषु प्रथमतया–आद्यत्वेन पक्ष्मलसुकुमारया सुरभ्या गन्धकाषायिक्या–गन्धकषायद्रव्यपरिकर्मितया लघुशाटिकयेति गम्यं, गात्राणि रूक्षयति, एवमुक्तप्रकारेण यावत्कल्पवृक्षमिवालङ्कृतं वस्त्रालङ्कारेण विभूषितं आभरणालङ्कारेण करोति, यावत्करणात् 'लूहित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ २ त्ता नासानीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगधवलं कणगखचिअंतकम्मं देवदूसजुअलं निअंसावेइ २ त्ता' इति ग्राह्यं, अत्र व्याख्या प्राग्वत्, नवरं देवदूष्ययुगलं परि-

५वक्षस्कारे जन्ममहे अच्युताशीर्वादः शेषेन्द्राभिषेकश्च सू. १२२

॥४२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धानोत्तरीयरूपं निवासयति–परिधापयतीति कृत्वा च यावत्करणात् 'सुमिणदामं पिणद्धावेइ' इति ग्राह्यं, नाट्यविधिमुपदर्शयति उपदर्श्य च अच्छैः श्लक्ष्णैः रजतमयैः अच्छरसतंडुलैः भगवतः स्वामिनः पुरतोऽष्ट अष्टमङ्गलकानि आलिखति, तद्यथा—दप्पणेति पद्यं सुगमं, मङ्गलालेखनोत्तरकृत्यमाह—'लिहिऊण'त्ति, अनन्तरोक्तान्यष्टमङ्गलानि लिखित्वा करोत्युपचारमित्याद्यारभ्य कडुच्छुकग्रहणपर्यन्तं सूत्रं चक्ररत्नपूजाधिकारलिखितव्याख्यातो व्याख्येयं, ततः प्रयतः सन् यथा बालभट्टारकस्य धूपधूमाकुले अक्षिणी न भवतस्तथा प्रयत्नवान् धूपं दत्त्वा जिनवरेन्द्राय, सूत्रे षष्ठी आर्षत्वात्, अङ्गपूजार्थं प्रत्यासेदुषा मया निरुद्धो भगवद्दर्शनमार्गोऽतोऽहं मा परेषा दर्शनामृतपानविघ्नकारी स्यामिति सप्ताष्टानि पदान्यपसृत्य दशाङ्गुलिकं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा प्रयतो–यथास्थानमुदात्तादिस्वरोच्चारेषु प्रयत्नवानष्टशतैः–अष्टोत्तरशतप्रमाणैर्विशुद्धेन ग्रन्थेन–पाठेन युक्तैर्महावृत्तैः–महाकाव्यैर्यद्वा महाचरित्रैरपुनरुक्तैः अर्थयुक्तैः–चमत्कारिव्यङ्ग्ययुक्तैः संस्तौति संस्तुत्य च वामं जानुं अञ्चति–उत्पाटयति, अञ्चित्वा च यावत्पदात् 'दाहिणं जाणुं धरणिअलंसि निवाडेइ' इति ग्राह्यम्, अत्र व्याख्या प्राग्वत्, करतलपरिगृहीतं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवं–वक्ष्यमाणमवादीत्, यदवादीत्तदाह–'णमोऽत्थु ते सिद्धबुद्ध' इत्यादि, नमोऽस्तु ते–तुभ्यं हे सिद्ध एवं बुद्ध इत्यादिपदानि सम्बन्धनीयानि, तत्र हे बुद्ध !–ज्ञाततत्त्व ! हे नीरजाः !–कर्मरजोरहित ! हे श्रमण !–तपस्विन् ! हे समाहित–अनाकुलचित्त ! हे समाप्त ! कृतकृत्यत्वात् अथवा सम्यक् प्रकारेणाप्त ! अविसंवादिवचनत्वात् हे समयोगिन् ! कुशलमनोवाक्काययोगित्वात् शल्यकर्त्तन निर्भय नीरागद्वेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२२] + गाथा

दीप अनुक्रम [२४१--२४३]

निर्म्मम निस्सङ्ग–निर्लेप निःशल्य मानमूरण–मानमर्दन गुणेषु रत्नं–उत्कृष्टं यच्छीलं–ब्रह्मचर्यं तस्य सागर अनन्त अनन्त-ज्ञानात्मकत्वात् मकारोऽलाक्षणिकः एवमग्रेऽपि अप्रमेय–प्राकृतज्ञानापरिच्छेद्य अशरीरजीवस्वरूपस्य छद्मस्थैः परिच्छे-त्तुमशक्यत्वादिति अथवाऽप्रमेय भगवद्गुणानामनन्तत्वेन सङ्ख्यातुमशक्यत्वात् भव्य–मुक्तिगमनयोग्य अत्यासन्नभव-सिद्धित्वात् धर्मेण–धर्मरूपेण वरेण–प्रधानेन भावचक्रत्वात् चतुरन्तेन–चतुर्गत्यन्तकारिणा चक्रेण वर्त्तत इत्येवंशीलस्तस्य सम्बोधनं हे धर्मवरचतुरन्तचक्रवर्त्तिन्! नमोऽस्तु तुभ्यं अर्हते–जगत्पूज्याय इति कृत्वा–इति संस्तुत्य वन्दते नमस्यतीत्यादि सूत्रं प्राग्वत्, यच्चात्र विशेषणवर्णकस्यादौ नमोऽस्तु ते इत्युक्त्वा पुनरपि नमोऽस्तु ते इत्युक्तं तन्न पुनरुक्तये प्रत्युत लाघवाय यतो जगत्त्रयप्रतिस्रोतश्चारिणो जगत्त्रयपतेस्तत्तदसाधारणैकैकविशेषणविभावनात् समुद्भूतप्रणामपरिणामेन हरिणा प्रतिविशेषणं नमोऽस्तु ते इति न प्रयुक्तमिति, इमानि च सर्वाणि विशेषणानि भव्यपदवर्जानि भाविनि भूतवदुपचारादन्यथाऽभिषेकसमये जिनानामेतादृशविशेषणानामसम्भवादिति। अथावशिष्टानामिन्द्राणां वक्तव्यं लाघवादाह—'एवं जहा' इत्यादि, एवमुक्तविधिना यथाऽच्युतेन्द्रस्याभिषेककृत्यं तथा प्राणतेन्द्रस्य यावदीशानेन्द्रस्यापि भणितव्यं, शक्राभिषेकस्य सर्वतश्चरमत्वात्, एवं भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्काश्चन्द्राः सूर्यपर्यवसानाः स्वकेन स्वकेन परिवारेण सह प्रत्येकं २ अभिषिञ्चन्ति। अथावशिष्टशक्रस्याभिषेकावसरः–'तए ण'मित्यादि, ततः–त्रिषष्टीन्द्राभिषेकानन्तरमीशानो देवेन्द्रो देवराजा पञ्चेशानान् विकुर्वति–एकः ईशानः पञ्चधा भवति, एतदेव विभजति–तत्र एक ईशानो भगवन्तं तीर्थकरं कर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तलसम्पुटेन गृह्णाति गृहीत्वा च सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः एक ईशानः पृष्ठतः आतपत्रं धरति द्वावीशानावुभयोः पार्श्वयोः चामरोत्क्षेपं कुरुतः एक ईशानः पुरतः शूलपाणिस्तिष्ठति–ऊर्ध्वस्थो भवति। सम्प्रत्यव्यग्रपाणिः शक्रो यदकरोत्तदाह–'तए ण'मित्यादि, ततः–ईशानेन्द्रेण भगवतः करसम्पुटे ग्रहणानन्तरं स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा आभियोग्यान् देवान् शब्दयति, शब्दयित्वा च एषोऽपि तथैव–अच्युतेन्द्रवदभिषेकविषयकामाज्ञप्तिं ददाति तेऽप्याभियोग्यास्तथैव–अच्युतेन्द्राभियोग्यदेवा इवाभिषेकवस्तूपनयन्ति, अथ शक्रः किं चकारेत्याह—'तए ण'मित्यादि, ततः–अभिषेकसामग्र्युपनयनानन्तरं स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा भगवतस्तीर्थकरस्य चतुर्दिक्षि चतुरो धवलवृषभान् विकुर्वन्ति श्वेतान् श्वेतत्वमेव द्रढयति–शङ्खस्य दलं–चूर्णं विमलनिर्मलः–अत्यन्तनिर्मलो यो दधिघनो–दधिपिण्डो बद्धं दधीत्यर्थः गोक्षीरफेनः प्रतीतः रजतनिकरोऽपि एतेषामिव प्रकाशो येषां ते तथा तान्, 'पासाईए'त्यादि प्राग्वत्, तदनन्तरं किमित्याह–'तए ण'मिति, ततस्तेषां चतुर्धवलवृषभानामष्टभ्यः शृङ्गेभ्योऽष्टौ तोयधारा निर्गच्छन्ति, ततस्ता अष्टौ तोयधारा ऊर्ध्वं विहायसि उत्पतन्ति–ऊर्ध्वं चलन्ति, उत्पत्य च एकतो मिलन्ति मिलित्वा च भगवतस्तीर्थकरस्य मूर्ध्नि निपतन्ति। अथ शक्रः किं कृतवानित्याह–'तए ण' मित्यादि, ततः स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा चतुरशीत्या सामानिकसहस्रैस्त्रयस्त्रिंशता त्रायस्त्रिंशकैर्यावत् सम्परिवृतस्तैः स्वाभाविकवैकुर्विककलशैर्महता तीर्थकराभिषेकेणाभिषिञ्चति इत्यादिसूत्रोक्तोऽभिषेकविधिः शक्रस्याच्युतेन्द्रवदस्तीति लाघवमाह–एतस्यापि तथैवाभिषेको भणितव्यः, कियदन्त इत्याह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यावन्नमोऽस्तु तेऽर्हते इति कृत्वा वन्दते नमस्यति २ त्वा यावत्पर्युपास्ते इति। अथ कृतकृत्यः शक्रो भगवतो जन्मपुरप्रापणायोपक्रमते—

तए णं से सक्के देविंदे देवराया पंच सक्के विउव्वइ २ त्ता एगे सक्के भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पगड्ढइ, तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणिअसाहस्सीहिं जाव अण्णेहि अ भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेव जम्मणभवणे जेणेव तित्थयरमाया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भगवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेइ २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ २ त्ता ओसोवणिं पडिसाहरइ २ त्ता एगं महं खोमजुअलं कुंडलजुअलं च भगवओ तित्थयरस्स उस्सीसगमूले ठवेइ २ त्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्जलंबूसगं सुवण्णपयरगमंडिअं णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोहिअसमुदयं भगवओ तित्थयरस्स उल्लोअंसि निक्खिवइ तण्णं भगवं तित्थयरे अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणे २ सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ, तए णं से सक्के देविंदे देवराया वेसमणं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वदासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ बत्तीसं सुवण्णकोडीओ बत्तीसं णंदाइं बत्तीसं भद्दाइं सुभगे सुभगरूवजुव्वणलावण्णे अ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहराहि २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि, तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं जाव विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता जंभए देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वदासि—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरह साहरित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव खिप्पामेव बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव च भगवओ तित्थगरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति २ त्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव जाव पच्चप्पिणंति, तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया जाव पच्चप्पिणइ। तए णं से सक्के देविंदे देवराया ३ अभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडगजावमहापहपहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वदह–हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिया देवा य देवीओ अ जे णं देवाणुप्पिआ! तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए वा असुभं मणं पधारेइ तस्स णं अज्जगमंजरिआ इव सयधा मुद्धाणं फुट्टउत्तिकट्टु घोसणं घोसेह २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह त्ति, तए णं ते आभिओगा देवा जाव एवं देवोत्ति आणाए पडिसुणंति २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतिआओ पडिणिक्खमंति २ खिप्पामेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मणणगरंसि सिंघाडग जाव एवं वयासी–हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ जाव जे णं देवाणुप्पिआ! तित्थयरस्स जाव फुट्टिहीतित्तिकट्टु घोसणगं घोसंति २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति, तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिआ देवा भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेंति २ त्ता जेणेव णंदीसरदीवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति २ जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया (सूत्रं १२३)

'तए ण' मित्यादि प्राग्वत्। अथ जन्मनगरप्रापणाय सूत्रं–'तए ण'मित्यादि, ततः स शक्रः पञ्चरूपविकुर्वणानन्तरं चतुरशीत्या सामानिकसहस्रैर्यावत् सम्परिवृतः सर्वर्द्ध्या यावन्नादितरवेन तयोत्कृष्टया दिव्यया देवगत्या व्यतिव्रजन् २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥४२३॥

यत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मनगरं यत्रैव च जन्मभवनं यत्रैव च तीर्थकरमाता तत्रैवोपागच्छतीति उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं मातुः पार्श्वे स्थापयति स्थापयित्वा च तीर्थकरप्रतिबिम्बं प्रतिसाहरति प्रतिसंहृत्य चावस्वापिनीं प्रतिसंहरति प्रतिसंहृत्य चैकं महत् क्षोमयोः–दुकूलयोर्युगलं कुण्डलयुगलं (च) भगवतस्तीर्थकरस्योच्छीर्षकमूले स्थापयति, स्थापयित्वा च एकं महान्तं श्रीदाम्नां–शोभावद्विचित्ररत्नमालानां गण्डं-गोलं वृत्ताकारत्वात् काण्डं वा–समूहः श्रीदामगण्डं श्रीदामकाण्डं वा भगवतस्तीर्थकरस्योल्लोचे निक्षिपति-अवलम्बयतीति क्रियायोगः, 'तपनीये'त्यादि पदत्रयं प्राग्वत्, नानामणिरत्नानां ये विविधहारार्द्धहारास्तैरुपशोभितः समुदायः–परिकरो येषां ते तथा, अयमर्थः–श्रीमल्लो रत्नमालास्तथा ग्रथयित्वा गोलाकारेण कृता यथा चन्द्रगोपके मध्यझुम्बनकतां प्रापिताः हारार्द्धहाराश्च परिकरझुम्बनकताम्। उक्तस्वरूपझुम्बनकविधाने प्रयोजनमाह–'तएण'मिति प्राग्वत्, भगवांस्तीर्थकरोऽनिमिषया–निर्निमिषया दृष्ट्या अत्यादरेण प्रेक्षमाणः २ सुखंसुखेनाभिरममाणो–रतिं कुर्वंस्तिष्ठति। अथ वैश्रमणद्वारा शक्रस्य कृत्यमाह–'तएण' मित्यादि, ततः स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा वैश्रमणं उत्तरदिक्पालं देवं शब्दयति, शब्दयित्वा चैवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! द्वात्रिंशतं हिरण्यकोटीः द्वात्रिंशतं सुवर्णकोटीः द्वात्रिंशतं नन्दानि–वृत्तलोहासनानि द्वात्रिंशतं भद्राणि–भद्रासनानि सुभगानि–शोभनानि सुभगयौवनलावण्यानि रूपाणि–रूपकाणि यत्र तानि तथा, सूत्रे पदव्यत्यय आर्षत्वात्, चः समुच्चये, भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मभवने संहर आनयेत्यर्थः संहृत्य च एनामाज्ञप्तिं प्रत्यर्पय, ततः स वैश्रमणो

५वक्षस्कारे जिनजन्ममहे कृताभिषेकजिनानयनं सू. १२३

॥४२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवः शक्रेण यावत्पदात् 'देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए एवं देवो तहत्ति आणाए' इति ग्राह्यं, विनयेन वचनं प्रतिशृणोति प्रतिश्रुत्य च जृम्भकान् देवान् तिर्यग्लोके वैताढ्यद्वितीयश्रेणिवासित्वेन तिर्यग्लोकगत-निधानादिवेदिनः शब्दयति २ त्वा चैवमवादीत्, शेषमनुवादसूत्रत्वात् सुबोधम्, अथासासु स्वस्थानं प्राप्तेषु निःसौन्दर्याः सौन्दर्याधिके भगवति मा दुष्टा दुष्टदृष्टिं निक्षिपन्त्विति तदुपायार्थमाह—'तए ण'मित्यादि, ततो—वैश्रमणेनाज्ञाप्रत्यर्पणानन्तरं स शक्रः ३ अभियोगान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मनगरे शृङ्गाटकयावन्महापथपथेषु महता २ शब्देन उद्घोषयन्तः २ एवं वदत—हन्त ! इति प्राग्वत् शृण्वन्तु भवन्तो बहवो भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका देवाश्च देव्यश्च योऽनिर्दिष्टनामा देवानांप्रिया ! इति सम्बोधनं भवतां मध्ये तीर्थकरस्य मातुर्वोपर्य्यशुभं मनः प्रधारयति—दुष्टं सङ्कल्पयति तस्य 'आर्यकमञ्जरिकेव' आर्यको—वनस्पतिविशेषो यो लोके आजओ इति प्रसिद्धस्तस्य मञ्जरिका इव मूर्द्धा शतधा स्फुटत्विति कृत्वा—इत्युक्त्वा घोषणं घोषयत, घोषयित्वा चैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत इति, अथ ते यच्चक्रुस्तदाह—'तए ण'मित्यादि व्यक्तं अनुवादसूत्रत्वात्, अथ निगमनसूत्रमाह—'तए ण'मिति, ततस्ते बहवो भवनपत्यादयो देवा भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमानं कुर्वन्ति, कृत्वा च सिद्धसमीहितकार्याः मङ्गलार्थं यत्रैव नन्दीश्वरवरद्वीपस्तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्याष्टाह्निकामहामहिमाः—अष्टदिननिर्वर्त्तनीयोत्सवविशेषान् कुर्वन्ति, बहुवचनं चात्र सौधर्मेन्द्रादिभिः प्रत्येकं क्रियमाण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वात्, अत्र यस्येन्द्रस्य यस्मिन् अञ्जनगिरौ येषु च दधिमुखगिरिषु तल्लोकपालानां अष्टाह्निकाधिकारः स प्राक् ऋषभदेवनिर्वाणाधिकारे उक्त इति नात्र लिख्यते ॥

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐदंयुगीननराधिपतिचक्रवर्त्तिसमानश्रीअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजगज्जन्तुजाताभयप्रदानशत्रुञ्जयादिकरमोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमानयुगप्रधानोपमानसाम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजयसूरीश्वरपदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्रमेयरत्नमञ्जूषानाम्न्यां तीर्थकृज्जन्माभिषेकाधिकारवर्णनो नाम पञ्चमो वक्षस्कारः ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पञ्चम-वक्षस्कारः परिसमाप्तः

प्रत सूत्रांक [१२४]

दीप अनुक्रम [२४५]

अथ षष्ठो वक्षस्कारः ॥ ६ ॥

पृष्टं जम्बूद्वीपान्तर्वर्त्ति स्वरूपं, सम्प्रति तस्यैव चरमप्रदेशस्वरूपप्रश्नायाह—

जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स पदेसा लवणसमुद्दं पुट्ठा?, हंता पुट्ठा, ते णं भंते! किं जंबुद्दीवे दीवे लवणसमुद्दे?, गोअमा! जंबुद्दीवे णं दीवे णो खलु लवणसमुद्दे, एवं लवणसमुद्दस्सवि पएसा जंबुद्दीवे पुट्ठा भाणिअव्वा इति। जंबुद्दीवे णं भंते! जीवा उद्दाइत्ता २ लवणसमुद्दे पच्चायंति?, अत्थेगइआ पच्चायंति अत्थेगइआ नो पच्चायंति, एवं लवणस्सवि जंबुद्दीवे दीवे णेअव्वमिति (सूत्रं१२४)

'जंबुद्दीवस्स ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपस्य णमिति पूर्ववत् द्वीपस्य प्रदेशा लवणसमुद्रशब्दसहचाराच्चरमप्रदेशा इति व्याख्येयं अन्यथा जम्बूद्वीपमध्यवर्त्तिप्रदेशानां लवणसमुद्रस्य संस्पर्शसम्भावनाया अभावात् लवणसमुद्रं स्पृष्टाः—स्पृष्टवन्तः, कर्त्तरि क्तप्रत्ययः, अत्र काकुपाठात् प्रश्नसूत्रावगतिः, भगवानाह—हन्ता! इति प्रत्यवधारणे। अथ सम्प्रदायादिना द्वीपानन्तरीयाः समुद्राः समुद्रानन्तरीया द्वीपाः तेन ये यदनन्तरीयास्ते तत्संस्पर्शिन इति सुज्ञानेऽप्यस्मिन् प्रष्टव्येऽर्थे यत् प्रश्नविधानं तदुत्तरसूत्रे प्रश्नबीजाधानायेति तदाह—ते जम्बूद्वीपचरमप्रदेशा भदन्त! किं जम्बूद्वीपो द्वीपः उत इति गम्यस्तेन लवणसमुद्रो वा इत्यर्थः, पृच्छतोऽयमाशयः—यद्येन स्पृष्टं तत्किञ्चित्तदव्यपदेशं लभते किञ्चित्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ षष्ठ-वक्षस्कार: आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२४]

दीप अनुक्रम [२४५]

पुनर्न तथा, यथा तर्जन्या संस्पृष्टा ज्येष्ठाङ्गुलिर्ज्येष्ठैवेति, तेन जम्बूद्वीपचरमप्रदेशाः लवणसमुद्रं स्पृष्टाः कथं व्यपदेश्याः?, अत्रोत्तरं—गौतम ! निपातस्यावधारणार्थत्वात् ते चरमप्रदेशाः जम्बूद्वीप एव द्वीपः जम्बूद्वीपसीमावर्त्तित्वात् न खलु ते लवणसमुद्रो, जम्बूद्वीपसीमानमतिक्रम्य लवणसमुद्रसीमानमप्राप्तत्वात् किन्तु स्वसीमागता एव लवणसमुद्रं स्पृष्टास्तेन तटस्थतया संस्पर्शभवनात् तर्जन्या संस्कृष्टा ज्येष्ठाङ्गुलिरिव स्वव्यपदेशं लभते, एवमुक्तरीत्या लवणसमुद्रस्यापि चरमप्रदेशा जम्बूद्वीपं स्पृष्टा न जम्बूद्वीपः किन्तु लवणसमुद्रो लवणसमुद्रसीमावर्त्तित्वादित्यादि भणितव्यम्। अनन्तरसूत्रे जम्बूद्वीपलवणोदयोः परस्परमव्यपदेश्यता उक्ता, सम्प्रति तयोरेव जीवानां परस्परमुत्पत्त्याधारता पृच्छयते इत्याह–'जंबुद्दीवे' इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे जीवा अवद्राय २–मृत्वा २ लवणसमुद्रे प्रत्यायान्ति–आगच्छन्ति, अत्रापि काकुपाठात् प्रश्नावगतिः, भगवानाह–गौतम ! अस्तीति निपातोऽत्र बहुर्थः, सन्त्येकका जीवा येऽवद्राय २ लवणसमुद्रे प्रत्यायान्ति सन्त्येकका ये न प्रत्यायान्ति, जीवानां तथा तथा स्वकर्मवशतया गतिवैचित्र्यसम्भवात्, एवं लवणसमद्रसूत्रमपि भावनीयम् ॥ सम्प्रति प्रागुक्तानां जम्बूद्वीपमध्यवर्त्तिपदार्थानां सङ्ग्रहगाथामाह–

खंडा १ जोअण २ वासा ३ पव्वय ४ कूडा ५ य तित्थ ६ सेढीओ ७। विजय ८ द्दह ९ सलिलाओ १० पिंडए होइ संगहणी ॥ १ ॥"

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहप्पमाणमेत्तेहिं खंडेहिं केवइअं खंडगणिएणं पं०, ? गो० ! णउअं खंडसयं खंडगणिएणं पण्णत्ते । जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं जोअणगणिएणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! सत्तेव य कोडिसया णउआ छप्पण्ण सयसहस्साइं। चउणवइं च सह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्सा सयं दिवड्ढं च गणिअपयं ॥ १ ॥ जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कति वासा पण्णत्ता ?, गोअमा ! सत्त वासा, तंजहा—भरहे एरवए हेमवए हिरण्णवए हरिवासे रम्मगवासे महाविदेहे, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ वासहरा पण्णत्ता केवइआ मंदरा पव्वया पण्णत्ता केवइआ चित्तकूडा केवइआ विचित्तकूडा केवइआ जमगपव्वया केवइआ कंचणपव्वया केवइआ वक्खारा केवइआ दीहवेअड्ढा केवइआ वट्टवेअड्ढा पण्णत्ता ?, गोअमा ! जंबुद्दीवे छ वासहरपव्वया एगे मंदरे पव्वए एगे चित्तकूडे एगे विचित्तकूडे दो जमगपव्वया दो कंचणगपव्वयसया वीसं वक्खारपव्वया चोत्तीसं दीहवेअड्ढा चत्तारि वट्टवेअड्ढा, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे दुण्णि अउणत्तरा पव्वयसया भवंतीतिमक्खायंति । जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ वासहरकूडा केवइआ वक्खारकूडा केवइआ वेअड्ढकूडा केवइआ मंदरकूडा पं० ?, गो० ! छप्पण्णं वासहरकूडा छण्णउइं वक्खारकूडा तिण्णि छलुत्तरा वेअड्ढकूडसया नव मंदरकूडा पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे चत्तारि सत्तट्ठा कूडसया भवन्तीतिमक्खायं । जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे कति तित्था पं० ?, गो० ! तओ तित्था पं०, तं०—मागहे वरदामे पभासे, जंबुद्दीवे २ एरवए वासे कति तित्था पं० ?, गो० ! तओ तित्था पं० तं०—मागहे वरदामे पभासे, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दी० महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजए कति तित्था पं० ?, गो० तओ तित्था पं०, तं०—मागहे वरदामे पभासे, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे २ एगे बिउत्तरे तित्थसए भवतीतिमक्खायंति । जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ विज्जाहरसेढीओ केवइआ आभिओगसेढीओ पं० ?, गो० ! जंबुद्दीवे दीवे अट्ठसट्ठी विज्जाहरसेढीओ अट्ठसट्ठी आभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे छत्तीसे सेढिसए भवतीतिमक्खायं, जंबुद्दीवे दीवे केवइआ चक्कवट्टिविजया केवइआओ रायहाणीओ केवइआओ तिमिसगुहाओ केवइआओ खंडप्पवा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२५] + गाथा: दीप अनुक्रम [२४६--२४९]

यगुहाओ केवइआ कयमालया देवा केवइया णट्टमालया देवा केवइआ उसभकूडा पं० ?, गो० ! जंबुद्दीवे दीवे चोत्तीसं चक्कवट्टिविजया चोत्तीसं रायहाणीओ चोत्तीसं तिमिसगुहाओ चोत्तीसं खंडप्पवायगुहाओ चोत्तीसं कयमालया देवा चोत्तीसं णट्टमालया देवा चोत्तीसं उसभकूडा पवया पं०, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ महद्दहा पं० ?, गो० ! सोलस महद्दहा पण्णत्ता, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयाओ महाणईओ वासहरपवहाओ केवइआओ महाणईओ कुंडप्पवहाओ पण्णत्ता ?, गोयमा ! जंबुद्दीवे २ चोद्दस महाणईओ वासहरपव्वहाओ छावत्तरिं महाणईओ कुंडप्पवहाओ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे णउतिं महाणईओ भवंतीतिमक्खायं । जंबुद्दीवे २ भरहेरवएसु वासेसु कइ महाणइओ पं० ?, गोअमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं०—गंगा सिंधू रत्ता रत्तवई, तत्थ णं एगमेगा महाणई चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे भरहएरवएसु वासेसु छप्पण्णं सलिलासहस्सा भवंतीतिमक्खायंति, जंबुद्दीवे णं भंते ! हेमवयहेरण्णवएसु वासेसु कति महाणईओ पण्णत्ताओ ?, गो० ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा—रोहिता रोहिअंसा सुवण्णकूला रुप्पकूला, तत्थ णं एगमेगा महाणई अट्ठावीसाए अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे २ हेमवयहेरण्णवएसु वासेसु बारसुत्तरे सलिलासयसहस्से भवंतीतिमक्खायं इति । जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे हरिवासरम्मगवासेसु कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा—हरी हरिकंता नरकंता णारिकंता, तत्थ णं एगमेगा महाणई छप्पण्णाए २ सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे २ हरिवासरम्मगवासेसु दो चउवीसा सलिलासयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे महा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदेहे वासे कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! दो महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा—सीआ य सीओआ य, तत्थ णं एगमेगा महाणई पंचहिं २ सलिलासयसहस्सेहिं बत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दस सलिलासयसहस्सा चउसट्ठिं च सलिलासहस्सा भवन्तीतिमक्खायं । जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं केवइया सलिलासयसहस्सा पुरत्थिमपच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?, गो० ! एगे छण्णउए सलिलासयसहस्से पुरत्थिमपच्चत्थिमाभिमुहे लवणसमुद्दं समप्पेंतित्ति, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं केवइया सलिलासयसहस्सा पुरत्थिमपच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?, गो० ! एगे छण्णउए सलिलासयसहस्से पुरत्थिमपच्चत्थिमाभिमुहे जाव समप्पेइ, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ सलिलासयसहस्सा पुरत्थाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?, गो० ! सत्त सलिलासयसहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा जाव समप्पेंति, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ सलिलासयसहस्सा पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?, गोअमा ! सत्त सलिलासयसहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा जाव समप्पेंति, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलासयसहस्सा छप्पण्णं च सहस्सा भवंतीतिमक्खायं इति (सूत्रं १२५)

'खंडा जोअण' इत्यादिसङ्ग्रहवाक्यस्य सङ्क्षिप्तत्वेन दुर्बोधत्वात् सूत्रकृदेव प्रश्नोत्तररीत्या विवृणोति, तत्र सूत्रम्—'जंबुदीवे' इत्यादि, जम्बूद्वीपो भदन्त! द्वीपो भरतप्रमाणं—षट्कलाधिकषड्विंशतियोजनाधिकपञ्चशतयोजनानि तदेव मात्रापरिमाणं येषां तानि तथा एवंविधैः खण्डैः—शकलैः इत्येवंरूपेण खण्डगणितेन—खण्डसङ्ख्यया कियान् प्रज्ञप्तः?, भगवा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाह–गौतम ! नवत्यधिकं खण्डशतं खण्डगणितेन प्रज्ञप्तः, कोऽर्थः ?–भरतप्रमाणैः खण्डैर्नवत्यधिकशतसङ्ख्यैर्मिलितैर्जम्बूद्वीपः सम्पूर्णलक्षप्रमाणो भवति, तत्र दक्षिणोत्तरतः खण्डमीलना प्राक् भरताधिकारवृत्तौ चिन्तितेति न पुनरुच्यते, पूर्वपश्चिमतस्तु यद्यपि खण्डगणितविचारणासूत्रे न कृता वनमुखादिभिरेव लक्षपूर्तेरभिधानात् तथापि खण्डगणितविचारे क्रियमाणे भरतप्रमाणानि तावन्त्येव खण्डानि भवन्ति, अथ 'योजने'तिद्वारसूत्रम्–'जंबुद्दीवे ण' मित्यादि, जम्बूद्वीपो भदन्त ! द्वीपः कियान् योजनगणितेन–समचतुरस्रयोजनप्रमाणखण्डसर्वसङ्ख्यया प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह–गौतम ! सप्त कोटिशतानि एवोऽवधारणे च उत्तरत्र सङ्ख्यासमुच्चयार्थः नवतानि–नवतिकोट्यधिकानीति व्याख्येयं प्रस्तावात्, अन्यथा कोटिशततो द्वितीयस्थाने सत्सु लक्षादिस्थानेषु नवदशकरूपा नवतिर्न युज्यते गणितशास्त्रविरोधात्, तथा षट्पञ्चाशच्छतसहस्राणि लक्षाणीत्यर्थः चतुर्नवतिश्च सहस्राणि शतं च व्यर्द्धं–सार्द्धं पञ्चाशदधिकं योजनानामित्येतावत्प्रमाणं जम्बूद्वीपस्य गणितपदं क्षेत्रमित्यर्थः, सूत्रे च योजनसङ्ख्यायाः प्रक्रान्तत्वात् योजनावधिरेव सङ्ख्या निर्दिष्टा अन्यत्र तु भगवतीवृत्त्यादौ साधिकत्वं विवक्षितं, तच्चेदम्—"गाउअमेगं पण्णरस धणुस्सया तह य धणूणि पण्णरस। सट्ठिं च अंगुलाइं जंबुद्दीवस्स गणिअपयं ॥ १ ॥" इति, इयं च व्यक्तैव १ गा० १५१५ ध. ६० अं०, करणं चात्र–'विक्खंभपायगुणिओ अ परिरओ तस्स गणिअपयं' इति वचनात् जम्बूद्वीपपरिधिस्त्रिलक्षषोडशसहस्रद्विशतसप्तविंशतियोजनादिको जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य लक्षरूपस्य पादेन–चतुर्थांशेन पञ्चविंशतिसहस्ररूपेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणितो जम्बूद्वीपगणितपदमिति, तथाहि–जम्बूद्वीपपरिधिस्तिस्रो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके योजनानां तथा गव्यूतत्रयं अष्टाविंशत्यधिकं शतं धनुषां त्रयोदशाङ्गुलानि एकं चार्द्धाङ्गुलं, यवादयस्तु श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रणीतक्षेत्रविचारसूत्रवृत्त्यादौ न विवक्षिता अतो न तद्विवक्षा क्रियते, तत्र योजनराशौ पञ्चविंशतिसहस्रैर्गुणिते सप्तकोटिशतानि नवतिकोटयः षट्पञ्चाशल्लक्षाः पञ्चसप्ततिः सहस्राणि भवन्ति, तथा क्रोशत्रये पञ्चविंशतिसहस्रगुणिते जातं पञ्चसप्ततिसहस्राणि गव्यूतानां, एषां च योजनानयनार्थं चतुर्भिर्भागे हृते लब्धान्यष्टादश सहस्राणि सप्त शतानि, पञ्चाशदधिकानि योजनानां, अस्मिंश्च सहस्रादिके पूर्वराशौ प्रक्षिप्ते जातानि ९३ सहस्राणि ७ शतानि ५० अधिकानि कोट्यादिका सङ्ख्या तु सर्वत्र तथैव, तथा धनुषामष्टाविंशं शतं पञ्चविंशतिसहस्रैर्गुण्यते जाता द्वात्रिंशल्लक्षा धनुषां ३२००००० अष्टाभिश्च धनुःसहस्रैर्योजनं भवति ततो योजनानयनार्थमष्टाभिः सहस्रैर्भागे लब्धानि चत्वारि योजनशतानि अस्मिंश्च पूर्वराशौ प्रक्षिप्ते जातानि ९४ सहस्राणि शतं पञ्चाशदधिकं, अङ्गुलान्यपि त्रयोदश पञ्चविंशतिसहस्रैर्गुण्यन्ते जातानि त्रीणि लक्षाणि पञ्चविंशतिसहस्राधिकानि अर्द्धाङ्गुलमपि पञ्चविंशतिसहस्रैरभ्यस्यते जातान्यर्द्धाङ्गुलानां पञ्चविंशतिसहस्राणि तेषामर्द्धे लब्धान्यङ्गुलानां द्वादश सहस्राणि पञ्चशताधिकानि तेषु पूर्वोक्ताङ्गुलराशौ प्रक्षिप्तेषु जातोऽङ्गुलराशिस्त्रीणि लक्षाणि सप्तत्रिंशत्सहस्राणि पञ्चशताधिकानि एषां धनुरानयनाय षण्णवत्या भागे हृते लब्धानि धनुषां पञ्चत्रिंशच्छतानि पञ्चदशाधिकानि शेषं षष्टिरङ्गुलानि, अस्य धनूराशेर्गव्यूतानय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाय सहस्रद्वयेन भागे हृते लब्धमेकं गव्यूतं शेषं धनुषां पञ्चदश शतानि पञ्चदशाधिकानि, सर्वाग्रेण जातमिदं–योजनानां सप्त कोटिशतानि नवतिकोट्यधिकानि षट्पञ्चाशल्लक्षाश्चतुर्णवतिसहस्राणि शतमेकं पञ्चाशदधिकं तथा गव्यूतमेकं धनुषां पञ्चदशशतानि पञ्चदशाधिकानि अङ्गुलानां षष्टिरिति । गतं योजनद्वारं, अथ वर्षाणि–'जंबुद्दीवे ण'मित्यादि व्यक्तं । अथ पर्वतद्वारं–'जंबुद्दीवे ण' मित्यादि प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे सङ्ख्यामीलनाय किञ्चिदुच्यते–षट् वर्षधराः क्षुल्लहिमवदादयः एको मन्दरो–मेरुः एकश्चित्रकूटः एकश्च विचित्रकूटः, एतौ च यमलजातकाविव द्वौ गिरी देवकुरुवर्त्तिनौ, द्वौ यमकपर्वतौ तथैवोत्तरकुरुवर्त्तिनौ, द्वे काञ्चनकपर्वतशते देवकुरूत्तरकुरुवर्त्तिह्रददशकोभयकूलयोः प्रत्येकं दश२काञ्चनकसद्भावात्, तथा विंशतिर्वक्षस्कारपर्वताः, तत्र गजदन्ताकारा गन्धमादनादयश्चत्वारः तथा चतुःप्रकारमहाविदेहे प्रत्येकं चतुष्क२सद्भावात् षोडश चित्रकूटादयः सरलाः द्वयेऽपि मिलिता यथोक्तसङ्ख्याकाः, तथा चतुस्त्रिंशद्दीर्घवैताढ्या द्वात्रिंशद्विजयेषु भरतैरावतयोश्च प्रत्येकमेकैकभावात्, चत्वारो वृत्तवैताढ्याः हैमवतादिषु चतुर्षु वर्षेषु एकैकभावात्, 'एवामेव सपुव्वावरेणं'ति प्राग्वत्, जंबूद्वीपे द्वीपे एकोनसप्तत्यधिके द्वे पर्वतशते भवतः इत्याख्यातं मयाऽन्यैश्च तीर्थकृद्भिः । अथ कूटानि, तत्र सूत्रं–'जंबुद्दीवे ण' मित्यादि, जम्बूद्वीपे द्वीपे कियन्ति वर्षधरकूटानि इत्यादिप्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे षट्पञ्चाशद्वर्षधरकूटानि, तथाहि–क्षुद्रहिमवत्शिखरिणोः प्रत्येकमेकादश २२ महाहिमवद्रुक्मिणोः प्रत्येकमष्टौ १६ निषधनीलवतोः प्रत्येकं नव १८ सर्वसङ्ख्या ५६, वक्षस्कारकूटानि षण्णवतिः, तद्यथा–सर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२५] + गाथा: दीप अनुक्रम [२४६--२४९]

लवक्षस्कारेषु षोडशसु १६ प्रत्येकं चतुष्टयभावात् ६४ गजदन्ताकृतिवक्षस्कारेषु गन्धमादनसौमनसयोः सप्त १४ माल्यवद्विद्युत्प्रभयोः नव १८ इति उभयमीलने यथोक्तसङ्ख्या, त्रीणि षडुत्तराणि वैताढ्यकूटशतानि, तत्र भरतैरावतयोर्विजयानां च वैताढ्येषु चतुस्त्रिंशति प्रत्येकं नवसम्भवादुक्तसङ्ख्यानयनं, वृत्तवैताढ्येषु च कूटाभावः अत एव वैताढ्यसूत्रे न दीर्घपदोपादानं विशेषणस्य व्यवच्छेदकत्वात् अत्र च व्यवच्छेद्यस्याभावादिति, मेरौ नव, तानि च नन्दनवनगतानि ग्राह्याणि न भद्रशालवनगतानि दिग्गजहस्तिकूटानि, तेषां भूमिप्रतिष्ठितत्वेन स्वतन्त्रकूटत्वादिति, सङ्ग्रहणिगाथायां 'पवयकूडा ये'त्यत्र चोऽनुक्तसमुच्चये तेन चतुस्त्रिंशद् ऋषभकूटानि तथा अष्टौ जम्बूवनगतानि तावन्त्येव शाल्मलीवनगतानि भद्रशालवनगतानि च सर्वसङ्ख्ययाऽष्टपञ्चाशत्सङ्ख्याकानि ग्राह्याणि, ननु तर्हि एतद्गाथाविवरणसूत्रे 'चत्तारि सत्तसट्ठा कूडसया' इत्येवंरूपे सङ्ख्याविरोधः, उच्यते, एषां गिर्यनाधारकत्वेन स्वतन्त्रगिरित्वान्न कूटेषु गणना, अयमेवाशय ऋषभकूटसङ्ख्यासूत्रपृथक्करणेन सूत्रकृता स्वयमेव दर्शयिष्यते, यच्च प्राक् ऋषभकूटाधिकारे 'कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते' इति सूत्रं, तच्छिलोच्चयमात्रतापरं व्याख्येयमिति सर्वं सम्यक्, अथ तीर्थानि–'जंबुद्दीवे' इत्यादि,प्रश्नसूत्रे तीर्थानि चक्रिणां स्वस्वक्षेत्रसीमासुरसाधनार्थं महाजलावतारणस्थानानि, उत्तरसूत्रे भरते त्रीणि तीर्थानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–मागधं पूर्वस्यां गङ्गासङ्गमे समुद्रस्य वरदाम दक्षिणस्यां प्रभासं पश्चिमायां सिंधुसंगमे समुद्रस्य एवमैरावतसूत्रमपि भावनीयं, नवरं नद्यौ चात्र रक्तारक्तवत्यौ तयोः समुद्रसङ्गमे मागधप्रभासे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२५] + गाथा: दीप अनुक्रम [२४६--२४९]

वरदामाख्यं च तत्रत्यापेक्षया तथैव, विजयसूत्रे चायं विशेषः—विजयसत्कगङ्गादि४महानदीनां यथार्हं शीताशीतोदयोः सङ्गमे मागधप्रभासाख्यानि भावनीयानि वरदामाख्यानि तेषां मध्यगतानि भाव्यानि, एवमेव पूर्वापरमीलनेन एकं त्र्युत्तरं तीर्थशतं भवतीत्याख्यातमिति । अथ श्रेणयः—'जंबुद्दीवे' इत्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे गौतम ! जंबूद्वीपे द्वीपे अष्टषष्टिविद्याधरश्रेणयः—विद्याधरावासभूता वैताढ्यानां पूर्वापरोदध्यादिपरिच्छिन्ना आयतमेखला भवन्ति, चतुस्त्रिंशत्यपि वैताढ्येषु दक्षिणत उत्तरतश्च एकैकश्रेणिभावात्, तथैवाष्टषष्टिराभियोग्यश्रेणयः, एवमेव पूर्वापरमीलनेन जम्बूद्वीपे द्वीपे षट्त्रिंशं—षट्त्रिंशदधिकं श्रेणिशतं भवतीत्याख्यातं । अथ विजयाः—'जंबुद्दीवे'त्ति प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुस्त्रिंशच्चक्रवर्त्तिविजयाः तत्र द्वात्रिंशन्महाविदेहविजया द्वे च भरतैरावते उभयोरपि चक्रवर्तिविजेतव्यक्षेत्रखण्डरूपस्य चक्रवर्त्तिविजयशब्दवाच्यस्य सत्त्वात्, एवं चतुस्त्रिंशद्राजधान्यश्चतुस्त्रिंशत्तमिस्रागुहाः प्रतिवैताढ्यमेकैकसम्भवात् एवं चतुस्त्रिंशत् खण्डप्रपातगुहाः चतुस्त्रिंशत्कृतमालका देवाः चतुस्त्रिंशन्नक्तमालका देवाश्चतुस्त्रिंशत् ऋषभकूटनामकाः पर्वताः प्रज्ञप्ताः, प्रतिक्षेत्रं सम्भवतश्चक्रवर्त्तिनो दिग्विजयसूचकनामन्यासार्थमेकैकसङ्ज्ञावात्, यच्चात्र विजयद्वारे प्रक्रान्ते राजधान्यादिप्रश्नोत्तरसूत्रे तद् विजयान्तर्गतत्वेनेति । अथ ह्रदाः—'जंबुद्दीवे २' इत्यादि प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे षोडश महाह्रदाः षड् वर्षधराणां शीताशीतादयोश्च प्रत्येकं पञ्च पञ्च । अथ सलिलाः—'जंबुद्दीवे' इत्यादि, जम्बूद्वीपे द्वीपे कियत्यो महानद्यो वर्षधरेभ्यः—'तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेश' इति वर्षधरह्रदेभ्यः प्रवहन्ति—निर्गच्छन्तीति वर्षध-

॥४२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रप्रवहाः, अन्यथा कुण्डप्रभवाणामपि वर्षधरनितम्बस्थकुण्डप्रभवत्वेन वर्षधरप्रभवा इति वाच्यं स्यात्, कियत्यः कुण्डप्रभवा–वर्षधरनितम्बवर्त्तिकुण्डनिर्गताः प्रज्ञप्ताः?, गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुर्दश महानद्यो वर्षधरह्रदप्रभवा भरतगङ्गादयः प्रतिक्षेत्रं द्विद्विभावात्, कुण्डप्रभवाः षट्सप्ततिर्महानद्यः, तत्र शीताया उदीच्येष्वष्टसु विजयेषु शीतोदाया याम्येष्वष्टसु विजयेषु च एकैकभावेन षोडश गङ्गाः षोडश सिन्धवश्च तथा शीताया याम्येष्वष्टसु विजयेषु शीतोदाया उदीच्येष्वष्टसु विजयेषु चैकैकभावेन षोडश रक्ता रक्तावत्यश्च, एवं चतुःषष्टिः द्वादश च प्रागुक्ता अन्तर्नद्यः सर्वमीलने षट्सप्ततिरिति कुण्डप्रभवानां तु शीताशीतोदापरिवारभूतत्वेनासम्भवदपि महानदीत्वं स्वस्वविजयगतचतुर्दशसहस्रनदीपरिवारसम्पदुपेतत्वेन भाव्यं, एवमेव सपूर्वापरेण चतुर्दशषट्सप्ततिरूपसङ्ख्यामीलनेन जम्बूद्वीपे नवतिर्महानद्यो भवन्तीत्याख्यातमिति। अथैतासां चतुर्दशमहानदीना नदीपरिवारसङ्ख्यां समुद्रप्रवेशदिशं चाह–'जंबुद्दीवे' इत्यादि व्यक्तं, नवरं यद् भरतैरावतयोर्युगपद्ग्रहणं तत्समानक्षेत्रत्वात्, भरते गङ्गा पूर्वलवणसमुद्रं सिन्धुः पश्चिमलवणसमुद्रं प्रविशति, ऐरावते च रक्ता पूर्वसमुद्रं रक्तावत्यपरसमुद्रं च, तथा 'जंबुद्दीवे'त्ति निगदसिद्धं, नवरं हैमवतहैरण्यवतयोः समानयुग्मिक्षेत्रत्वेन सहोक्तिः, हैमवते रोहिता पूर्वं लवणं रोहितांशा पश्चिमं हिरण्यवते सुवर्णकूला पूर्वं लवणं रूप्यकूला पश्चिमं एवमेव पूर्वापरमीलनेन जम्बूद्वीपे हैमवतहैरण्यवतयोः क्षेत्रयोर्द्वादशसहस्रोत्तरं नदीशतसहस्रं भवत्येवमाख्यातं, अत्र शतसहस्रशब्दसाहचर्यादग्रसङ्ख्यायां द्वादशोत्तराणीत्यत्र सहस्राणि प्रतीयन्ते, अन्यथा (द्वादशाधिकत्वे अर्ध–)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२५] + गाथा: दीप अनुक्रम [२४६--२४९]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४३०॥

षट्पञ्चाशत्सहस्राणां चतुर्गुणने सङ्ख्याशास्त्रबाधः स्यात्, दृश्यते च शब्दसाहचर्यादर्थप्रतिपत्तिर्यथा रामलक्ष्मणावित्यत्र रामशब्देन दाशरथिर्लक्ष्मणशब्दसाहचर्यात् प्रतीयते न तु रेणुकासुत इति, तथा 'जंबुद्दीवे' इत्यादि, सुबोधं, द्वयोर्वर्षयोः सहोक्तौ हेतुः प्राग्वदेव, हरीति—हरिसलिला पूर्वार्णवगा हरिवर्षे हरिकान्ता चापरार्णवगा रम्यके नरकान्ता पूर्वार्णवगा नारीकान्ता चापरार्णवगा सर्वसङ्ख्यया जम्बूद्वीपे द्वीपे हरिवर्षरम्यकवर्षयोर्द्वे चतुर्विंशतिसहस्राधिके सलिलाशतसहस्रे भवत इति, षट्पञ्चाशत्सहस्राणां चतुर्गुणने एतावत एव लाभात्, अत्रापि सहस्रपरतया व्याख्यानं प्राग्वत्, तथा'जंबुद्दीवे' इत्यादि व्यक्तं, नवरं शीता शीतोदा चेत्यत्र चकारौ द्वयोस्तुल्यकक्षताद्योतनार्थौ तेन समपरिवारत्वादिकं ग्राह्यं, समुद्रप्रवेशः शीतायाः पूर्वस्यां शीतोदायास्त्वपरस्यामिति, 'व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति'रित्यत्र द्वादशान्तरनद्योऽधिका ग्राह्याः, महाविदेहनदीत्वाविशेषात्, शेषाः कुण्डप्रभवनद्यश्च शीताशीतोदापरिवारनदीष्वन्तर्गता इति न सूत्रकृता सूत्रे पृथग् विवृताः। अथ मेरुतो दक्षिणस्यां कियत्यो नद्य इत्याह—'जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वय' इत्यादि व्यक्तं, नवरं उत्तरसूत्रे एकं षण्णवतिसहस्राधिकं सलिलाशतसहस्रं, तथाहि—भरते गङ्गायाः सिन्धोश्च चतुर्दश २ सहस्राणि हैमवते रोहिताया रोहितांशायाश्चाष्टाविंशतिरष्टाविंशतिः सहस्राणि हरिवर्षे हरिसलिलाया हरिकान्तायाश्च षट्पञ्चाशत् २ सहस्राणि सर्वमीलने यथोक्तसङ्ख्या। अथ मेरुत उत्तरवर्त्तिनीनां सङ्ख्यां प्रश्नयितुमाह—'जंबुद्दीवे' इत्यादि व्यक्तं, नवरं उत्तरसूत्रे सर्वसङ्ख्या दक्षिणसूत्रवद् भावनीया, वर्षाणां नदीनां च नामसु विशेषः स्वयं बोध्यः, ननु मेरुतो दक्षिणोत्तरनदीसङ्ख्यामीलने सपरिवारे उत्तरदक्षिणप्र-

६वक्षस्कारे खण्डयोजनादिपिण्डः सू. १२५

॥४३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२५] + गाथा: दीप अनुक्रम [२४६--२४९]

वहे शीताशीतोदे कथं न मीलिते ?, उच्यते, प्रश्नसूत्रं हि मेरुतो दक्षिणोत्तरदिग्भागवर्त्तिपूर्वापरसमुद्रप्रवेशरूपविशिष्टार्थविषयकं तेन न मेरुतः शुद्धपूर्वापरसमुद्रप्रवेशिन्योरनयोर्निर्वचनसूत्रेऽन्तर्भावः, यथाप्रश्नं निर्वचनदानस्य शिष्टव्यवहारात् । अथ पूर्वाभिमुखाः कियत्यो लवणोदं प्रविशन्तीत्याह–'जंबुद्दीवे दीवे' इत्यादि, जम्बूद्वीपे द्वीपे कियत्यो नद्यः पूर्वाभिमुखं लवणोदं प्रविशन्ति—कियत्यः पूर्वसमुद्रप्रवेशिन्य इत्यर्थः, इदं च प्रश्नसूत्रं केवलं नदीनां पूर्वदिग्गामित्वरूपप्रष्टव्यविषयकं तेन पूर्वस्मात् प्रश्नसूत्राद्भिद्यते, उत्तरसूत्रे सप्त नदीलक्षाणि अष्टाविंशतिश्च सहस्राणि यावत् समुपसर्प्पन्ति, तद्यथा–पूर्वसूत्रे मेरुतो दक्षिणदिग्वर्त्तिनीनामेकं षण्णवतिसहस्राधिकं लक्षमुक्तं, तदर्द्धं पूर्वाब्धिगामीत्यागतान्यष्टानवतिः सहस्राणि एवमुदीच्यनदीनामप्यष्टानवतिः सहस्राणि शीतापरिकरनद्यश्च ५ लक्षाणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि च सर्वपिण्डे यथोक्तं मानं । अथ पश्चिमाब्धिगामिनीनां सङ्ख्याप्रश्नार्थमाह—'जंबुद्दीवे दीवे' इत्यादि, इदं चानन्तरसूत्रवद्वाच्यं, सङ्ख्यायोजनायाः परस्परं निर्विशेषत्वात्, सम्प्रति सर्वसरित्सङ्कलनामाह–'एवामेव सपुव्वावरेण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं जम्बूद्वीपे द्वीपे पूर्वाब्धिगामिनीनामपराब्धिगामिनीनां च नदीनां संयोजने चतुर्दश लक्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्राणि भवन्ति इत्याख्यातं, ननु इयं सर्वसरित्सङ्ख्या केवलपरिकरनदीनां महानदीसहितानां वा तासां?, उच्यते, महानदीसहितानामिति सम्भाव्यते, सम्भावनाबीजं तु कच्छविजयगतसिन्धुनदीवर्णनाधिकारे प्रवेशे च 'सर्वसङ्ख्या आत्मना सह चतुर्दशभिर्नदीसहस्रैः समन्विता भवती"ति श्रीमलयगिरिकृतबृहत्क्षेत्रविचारवृत्त्यादिवचन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिति, श्रीरत्नशैखरसूरयस्तु स्वक्षेत्रसमासे "अडसयरि महणईओ बारस अंतरणईउ सेसाओ । परिअरणईओ चउदस लक्खा छप्पण्णसहसा य ॥ १ ॥" त्ति महानदीनां पृथग्गणनं चक्रुरिति तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्यं, नन्वत्र प्रत्येकमष्टाविंशतिसहस्रनदीपरिवारा द्वादशान्तरनद्यः सर्वनदीसङ्कलनायां कथं न गणिताः ?, उच्यते, इयं सर्वसरित्सङ्ख्या चतुर्दशलक्षादिलक्षणा श्रीरत्नशेखरसूरिभिः स्वोपज्ञक्षेत्रसमासवृत्तौ तथा प्रतिमहानदिपरिवारमीलने स्वस्वक्षेत्रविचारसूत्रे श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणादिसूत्रकारैः श्रीमलयगिर्य्यादिभिर्वृत्तिकारैश्चान्तरनदीपरिवारासङ्गहेणैवोक्ता, श्रीहरिभद्रसूरिभिस्तु 'खण्डा जोअणे'त्यादिगाथायाः सङ्गहण्यां चतुरशीतिप्रमाणा कुरुनदीरनन्तर्भाव्य तत्स्थाने इमा एव द्वादश नदीः चतुर्दशभिः २ नदीसहस्रैः सह निक्षिप्य यथोक्तसङ्ख्या पूरिता, तद्यथा—"चउदससहस्सगुणिआ अडतीस णईउ विजयमज्झिल्ला । सीआणईइ णिवडंति सीओआएवि एमेव ॥ १ ॥" कैश्चित्तु य एव विजयगतयोर्गङ्गासिन्ध्वोः रक्तारक्तवत्योर्वा अष्टाविंशतिसहस्रनदीलक्षणः परिवारः स एवासन्नतयोपचारेणान्तरनदीनां परिवारतयोक्त इत्यतोऽवसीयते यदन्तरनदीपरिवारमाश्रित्य मतवैचित्र्यदर्शनादिना केनापि हेतुना प्रस्तुतसूत्रकारेणापि सर्वनदीसङ्कलनायां ता न गणिता इति, अत्रापि तत्त्वं बहुश्रुतगम्यमेव, यदि चान्तरनदीपरिवारनदीसङ्कलनापि क्रियते तदा जम्बूद्वीपे द्विनवतिसहस्राधिकाः सप्तदश लक्षा नदीनां भवन्ति, यदुक्तम्—"सुत्ते चउदसलक्खा छप्पण्णसहस्स जंबुदीवम्मि । हुंति उ सत्तर लक्खा बाणवइसहस्स सलिलाओ ॥ १ ॥" इति, एतेषां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्युक्तार्थानां पिण्डके—मीलके विषयभूते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२५] + गाथा: दीप अनुक्रम [२४६--२४९]

इयं सङ्ग्रहणी गाथा भवतीति । अथ जम्बूद्वीपव्यासस्य लक्षप्रमाणताप्रतीत्यर्थं दक्षिणोत्तराभ्यां क्षेत्रयोजनसर्वाग्रमीलनं जिज्ञासूनामुपकाराय दर्श्यते, यथा–

१ भरतक्षेत्रप्रमाणं ५२६ योजन कला ६	७ महाविदेहक्षेत्रप्रमाणं ३३६८४ योजन कला ४
२ क्षुल्लहिमाचलपर्वतप्र० १०५२ योजन कला १२	८ नीलवत्पर्वतप्रमाणं १६८४२ योजन कला २
३ हैमवतक्षेत्रप्र० २१०५ योजन कला ५	९ रम्यक्क्षेत्रप्रमाणं ८४२१ योजन कला १
४ वृद्धहिमाचलपर्वतप्र० ४२१० योजन कला १०	१० रुक्मिपर्वतप्रमाणं ४२१० योजन कला १०
५ हरिवर्षक्षेत्रप्रमाणं ८४२१ योजन कला १	११ हैरण्यवतक्षेत्रप्रमाणं २१०५ योजन कला ५
६ निषधपर्वतप्रमाणं १६८४२ योजन कला २	१२ शिखरिपर्वतप्रमाणं १०५२ योजन कला १२
	१३ ऐरवतक्षेत्रप्रमाणं ५२६ योजन कला ६

९९९९६ योजन कला ७६ दक्षिणोत्तरतः सर्वमीलने १००००० लक्षयोजनसर्वाग्रं, अत्र दक्षिणजगतीमूलविष्कम्भो भरतप्रमाणे उत्तरजगतीसत्कश्च ऐरावतेऽन्तर्भावनीय इति । पूर्वतः पश्चिमतश्चैवं सर्वाग्रमीलनं—

औत्तराहं शीतावनमुखं २९२२ योजन ,विजयषोडशकं ३५४०६ योजन अन्तरनदीषट्कं ७५० योजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२५] + गाथा: दीप अनुक्रम [२४६--२४९]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४३२॥

वक्षस्काराष्टकं ४००० योजन मेरुभद्रशालवनं ५४००० योजन औत्तराहं शीता (तोदा) मुखवनं २९२२ योजन १००००० अत्र सर्वाग्रं लक्षयोजनप्रमाणं, अत्रापि जगतीसत्कमूलविष्कम्भः स्वस्वदिग्गतमुखवनेऽन्तर्भावनीय इति ।

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐंदीयुगीननराधिपतिचक्रवर्त्तिसमानश्रीअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजन्तुजाताभयदानशत्रुञ्जयादिकरमोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमानयुगप्रधानोपमानसम्प्रतिविजयमानश्रीमत्तपोगच्छाधिराजश्रीहीरविजयसूरीश्वरपदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्रमेयरत्नमञ्जूषानाम्न्यां जम्बूद्वीपगतपदार्थसङ्ग्रहवर्णनो नाम षष्ठो वक्षस्कारः ॥ ६ ॥

६वक्षस्कारे खण्डयोजनादिपिण्ड-सू. १२५

॥४३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र षष्ठ-वक्षस्कार: परिसमाप्त:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२५०--२५१]

अथ सप्तमवक्षस्कारः ॥ ७ ॥

जम्बूद्वीपे च ज्योतिष्काश्चरन्तीति तदधिकारः सम्प्रतिपाद्यते, तत्र प्रस्तावनार्थमिदं चन्द्रादिसङ्ख्याप्रश्नसूत्रम्–

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कइ चंदा पभासिंसु पभासंति पभासिस्संति कइ सूरिआ तवइंसु तवेंति तविस्संति केवइया णक्खत्ता जोगं जोइंसु जोअंति जोइस्संति केवइआ महग्गहा चारं चरिंसु चरंति चरिस्संति केवइआओ तारागणकोडाकोडीओ सोभिंसु सोभंति सोभिस्संति ?, गोअमा ! दो चंदा पभासिंसु ३ दो सूरिआ तवइंसु ३ छप्पण्णं णक्खत्ता जोगं जोइंसु ३ छावत्तरं महग्गहसयं चारं चरिंसु ३ 'एगं च सयसहस्सं तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं। णव य सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीणं ॥१॥ ति (सूत्रं १२६)

'जंबुद्दीवे ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपे भगवन्! द्वीपे कति चन्द्राः प्रभासितवन्तः–प्रकाशनीयं वस्तु उद्द्योतितवन्तः प्रभासयन्ति–उद्द्योतयन्ति प्रभासयिष्यन्ति–उद्द्योतयिष्यन्ति, उद्द्योतनामकर्मोदयाच्चन्द्रमण्डलानां, अनुष्णप्रकाशो हि जने उद्द्योत इति व्यवह्रियते तेन तथा प्रश्नः, अनादिनिधनेयं जगत्स्थितिरिति जानतः शिष्यस्य कालत्रयनिर्देशेन प्रश्नः, प्रष्टव्यं तु चन्द्रादिसङ्ख्या, तथा कति सूर्यास्तापितवन्तः–आत्मव्यतिरिक्तवस्तुनि तापं जनितवन्तः, एवं तापयन्ति तापयिष्यन्ति, आतपनामकर्मोदयाद्रविमण्डलानामुष्णः प्रकाशस्ताप इति लोके व्यवह्रियते तेन तथा प्रश्नोक्तिः, तथा कियन्ति

Jain Education Intern For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सप्तम-वक्षस्कारः आरभ्यते

***अथ चन्द्रादि संख्या-विषयक प्रश्नं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१२६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२५०--२५१]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४३३॥

नक्षत्राणि योगं–स्वयं नियतमण्डलचारित्वेऽप्यनियतानेकमण्डलचारिभिर्निजमण्डलक्षेत्रमागतैर्ग्रहैः सह सम्बन्धं युक्तवँन्ति–प्राप्तवन्ति युञ्जन्ति–प्राप्नुवन्ति योक्ष्यन्ति—प्राप्स्यन्ति, तथा कियन्तो महाग्रहाः–अङ्गारकादयश्चारं–मण्डलक्षेत्रपरिभ्रमिं चरितवन्तः–अनुभूतवन्तः चरन्ति–अनुभवन्ति चरिष्यन्ति–अनुभविष्यन्ति, यद्यपि समयक्षेत्रवर्तिनां सर्वेषामपि ज्योतिष्काणां गतिश्चार इत्यभिधीयते तथाप्यन्यव्यपदेशविशेषाभावेन वक्रातिचारादिभिर्गतिविशेषैर्गतिमत्त्वेन चैषां सामान्यगतिशब्देन प्रश्नः, तथा कियत्यस्तारागणकोटाकोट्यः शोभितवन्तः–शोभां भूतवन्त्यः शोभन्ते शोभिष्यन्ते, एषां च चन्द्रादिसूत्रोक्तकारणाभावेन बहुलपक्षादौ भास्वरत्वमात्रेण शोभमानत्वादित्थं प्रश्नाभिलापः, अत्र सूत्रेऽनुक्तोऽपि वाशब्दो विकल्पद्योतनार्थं प्रतिप्रश्नं बोध्यः, भगवानाह—गौतम ! द्वौ चन्द्रौ प्रभासितवन्तौ प्रभासेते प्रभासिष्येते च, जम्बूद्वीपे क्षेत्रे सूर्याक्रान्ताभ्यां दिग्भ्यामन्यत्र शेषयोर्दिशोश्चन्द्राभ्यां प्रकाश्यमानत्वात्, प्रश्नसूत्रे च प्रभासितवन्त इत्यादौ यो बहुवचनेन निर्देशः स प्रश्नरीतिर्बहुवचनेनैव भवतीति ज्ञापनार्थः, एकाद्यन्यतरनिर्णयस्य तु सिद्धान्तोत्तरकाले सम्भवः, एवं सूर्यसूत्रेऽपि भावनीयं, तथा द्वौ सूर्यौ तापितवन्तौ ३ जम्बूद्वीपक्षेत्रमिति शेषः, अस्मिन्नेव क्षेत्रे चन्द्राक्रान्ताभ्यां दिग्भ्यामन्यत्र शेषयोर्दिशोः सूर्याभ्यां ताप्यमानत्वात्, तथा षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि एकैकस्य चन्द्रस्य प्रत्येकमष्टाविंशतिनक्षत्रपरिवारात् योगं युक्तवन्तीत्यादि प्राग्वत्, तथा षट्सप्ततं–षट्सप्तत्युत्तरं महाग्रहशतं एकैकस्य चन्द्रस्य प्रत्येकमष्टाशीतेर्ग्रहाणां परिवारभावात् चारं चरितवदित्यादि, तथा पद्येन तारामानमाह–तारागणकोटाकोटी-

७वक्षस्कारे चन्द्रादि-संख्याः सू. १२६

॥४३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१२६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२५०--२५१]

नामेकं लक्षं त्रयस्त्रिंशच्च सहस्राणि नव च शतानि पञ्चाशानि–पञ्चाशदधिकानि भवन्ति, प्रतिचन्द्रं तारागणकोटाकोटीनां षट्षष्टिसहस्रनवशताधिकपञ्चसप्ततेर्लभ्यमानत्वादिति । अथ प्रथमोद्दिष्टमपि चन्द्रमुपेक्ष्य बहुवक्तव्यत्वात् प्रथमं सूर्यप्ररूपणामाह, तत्रेमानि पञ्चदशानुयोगद्वाराणि–मण्डलसङ्ख्या १ मण्डलक्षेत्रं २ मण्डलान्तरं ३ बिम्बायामविष्कम्भादि ४ मेरुमण्डलक्षेत्रयोरबाधा ५ मण्डलायामादिवृद्धिहानी ६ मुहूर्त्तगतिः ७ दिनरात्रिवृद्धिहानी ८ तापक्षेत्रसंस्थानादि ९ दूरासन्नादिदर्शने लोकप्रतीत्युपपत्तिः १० चारक्षेत्रेऽतीतादिप्रश्नः ११ तत्रैव क्रियाप्रश्नः १२ ऊर्ध्वादिदिक्षु प्रकाशयोजनसङ्ख्या १३ मनुष्यक्षेत्रवर्त्तिज्योतिष्कस्वरूपं १४ इन्द्राद्यभावे स्थितिप्रकल्पः १५ ॥ तत्र मण्डलसङ्ख्यायामादिसूत्रम्—

कइ णं भंते ! सूरमंडला पण्णत्ता ?, गोअमा ! एगे चउरासीए मंडलसए पण्णत्ते इति। जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ सूरमंडला पण्णत्ता ?, गोअमा ! जंबुद्दीवे २ असीअं जोअणसयं ओगाहित्ता एत्थ णं पण्णट्ठी सूरमंडला पण्णत्ता, लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ सूरमंडला पण्णत्ता ?, गोअमा ! लवणे समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं एगूणवीसे सूरमंडलसए पण्णत्ते, एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणे अ समुद्दे एगे चुलसीए सूरमंडलसए भवंतीतिमक्खायंति १ (सूत्रं १२७) सव्वब्भंतराओ णं भंते ! सूरमंडलाओ केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए सूरमंडले पं० ?, गोयमा ! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए सूरमंडले पण्णत्ते २ (सूत्रं १२८) सूरमंडलस्स णं भंते ! सूरमंडलस्स य केवइयं

Jain Education Intern... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

सूर्यमण्डल-आदि विषयक प्रश्नानि

अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! दो जोअणाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ३ (सूत्रं १२९) सूरमंडले णं भंते ! केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! अडयालीसं एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं चउवीसं एगसट्ठिभाए जोअणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते इति ४ (सूत्रं १३०)

'कइ ण' मित्यादि, कति भदन्त ! सूर्ययोर्दक्षिणोत्तरायणे कुर्वतोर्निजबिम्बप्रमाणचक्रवालविष्कम्भानि प्रतिदिनभ्रमिक्षेत्रलक्षणानि मण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, मण्डलत्वं चैषां मण्डलसदृशत्वात् न तु तात्त्विकं, मण्डलप्रथमक्षणे यद् व्याप्तं क्षेत्रं तत्समश्रेण्येव यदि पुरःक्षेत्रं व्याप्नुयात् तदा तात्त्विकी मण्डलता स्यात् तथा च सति पूर्वमण्डलादुत्तरमण्डलस्य योजनद्वयमन्तरं न स्यादिति, भगवानाह–गौतम ! एकं चतुरशीतं–चतुरशीत्यधिकं मण्डलशतं प्रज्ञप्तं, यथा चैभिश्चारक्षेत्रपूरणं तथा अनन्तरद्वारे प्ररूपयिष्यते। अथैतान्येव क्षेत्रविभागेन द्विधा विभज्योक्तसङ्ख्यां पुनः प्रश्नयति–'जंबुदीवे'त्ति जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे कियत्क्षेत्रमवगाह्य कियन्ति सूर्यमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! जम्बूद्वीपे २ अशीतं–अशीत्यधिकं योजनशतमवगाह्यात्रान्तरे पञ्चषष्टिः सूर्यमण्डलानि प्रज्ञप्तानि, तथा लवणे भदन्त ! समुद्रे कियदवगाह्य कियन्ति सूर्यमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! लवणे समुद्रे त्रिंशदधिकानि त्रीणि योजनशतानि सूत्रेऽल्पत्वादविवक्षितानप्यष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागान् अवगाह्यात्रान्तरे एकोनविंशत्यधिकं सूर्यमण्डलशतं प्रज्ञप्तं, अत्र पञ्चषष्ट्या मण्डलैरेकोनाशीत्यधिकं योजनशतं नव चैकषष्टिभागा योजनस्य पूर्यन्ते, जम्बूद्वीपेऽवगाहक्षेत्रं चाशीत्यधिकं योजनशतं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेन शेषा द्वापञ्चाशद्भागाः षट्षष्टितमस्य मण्डलस्य बोध्याः अल्पत्वाच्चात्र न विवक्षिताः, अत्र च पञ्चषष्टिमण्डलानां विषयविभागव्यवस्थायां सङ्ग्रहणीवृत्त्याद्युक्तोऽयं वृद्धसम्प्रदायः–मेरोरेकतो निषधमूर्द्धनि त्रिषष्टिर्मण्डलानि हरिवर्षजीवाकोट्यां च द्वे द्वितीयपार्श्वे नीलवन्मूर्ध्नि त्रिषष्टिः रम्यकजीवाकोट्यां च द्वे इति, एवमेव सपूर्वापरेण पञ्चषष्ट्येकोनविं' शत्यधिकशतमण्डलमीलनेन जम्बूद्वीपे लवणे च समुद्रे एकं चतुरशीतं सूर्यमण्डलशतं भवतीत्याख्यातं मया चान्यैस्तीर्थकृद्भिः । गतं मण्डलसङ्ख्याद्वारम्, अथ मण्डलक्षेत्रद्वारं, तत्र सूत्रं–'सव्वब्भंतराओ ण'मित्यादि, सर्वाभ्यन्तरात्–प्रथमात् सूर्यमण्डलात् भदन्त ! कियत्या अबाधया–कियता अन्तरेण सर्वबाह्यं–सर्वेभ्यः परं यतोऽनन्तरं नैकमपीत्यर्थः सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! दशोत्तराणि पञ्च योजनशतानि अबाधया–अन्तरालत्वाप्रतिघातरूपया सर्वबाह्यं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्, अत्रानुक्ता अपि अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः 'ससिरविणो लवणंमि अ जोअण सय तिण्णि तीस अहिआइं'-इति वचनादधिका ग्राह्याः, अन्यथोक्तसङ्ख्याङ्कानां मण्डलानामनवकाशात्, कथमेतदवसीयते ?, उच्यते–सर्वसङ्ख्या चतुरशीत्यधिकं मण्डलशतं, एकैकस्य च मण्डलस्य विष्कम्भोऽष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य, ततश्चतुरशीत्यधिकं शतमष्टाचत्वारिंशता गुण्यते, जातान्यष्टाशीतिः शतानि द्वात्रिंशदधिकानि, एतेषां योजनानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, हृते च लब्धं चतुश्चत्वारिंशदधिकं योजनशतं १४४, शेषमवतिष्ठतेऽष्टचत्वारिंशत्, चतुरशीत्यधिकशतसङ्ख्यानां च मण्डलानामपान्तरालानि त्र्यशीत्यधिकशतसङ्ख्यानि, सर्वत्रापि ह्यपान्तरालानि रूपोनानि भवन्ति तथा च प्रती-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२७--१३०]

दीप अनुक्रम [२५२--२५५]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥४३५॥

तमेतत् चतसृणामङ्गुलीनामपान्तरालानि त्रीणीति, एकैकं मण्डलान्तरालं च द्वियोजनप्रमाणं, ततस्त्र्यशीत्यधिकं शतं द्विकेन गुण्यते, जातानि त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि ३६६, पूर्वोक्तं च चतुश्चत्वारिंशं शतमत्र प्रक्षिप्यते, ततो जातानि पञ्चशतानि दशोत्तराणि योजनानि अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य, अनेन च मण्डलक्षेत्रस्य प्रमाणमभिहितं, मण्डलक्षेत्रं नाम सूर्यमण्डलैः सर्वाभ्यन्तरादिभिः सर्वबाह्यपर्यवसानैर्व्याप्तमाकाशं, तच्चक्रवालविष्कम्भतोऽवसेयम्। उक्तं मण्डलक्षेत्रद्वारम्, अथ मण्डलान्तरद्वारम्–'सूरमंडल' इत्यादि, भगवन्! सूर्यमण्डलस्य सूर्यमण्डलस्य च कियदबाधया—अव्यवधानेनान्तरं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! द्वे योजने अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्, अन्तरशब्देन च विशेषोऽप्युच्यते इति तन्निवृत्त्यर्थमबाधयेत्युक्तं, कोऽर्थः?–पूर्वस्मादपरं मण्डलं कियद्दूरे इत्यर्थः, अत्र यथा योजनद्वयमुपपद्यते तथाऽनन्तरमेव मण्डलसङ्ख्याद्वारे दर्शितम् । गतं मण्डलान्तरद्वारं, अथ विम्बायामविष्कम्भादिद्वारम्–'सूरमंडले ण'मित्यादि, सूर्यमण्डलं णमिति प्राग्वत् भगवन् ! कियदायामविष्कम्भाभ्यां कियत्परिक्षेपेण कियद्बाहल्येन—उच्चत्वेन प्रज्ञप्तं ?, गौतम ! अष्टचत्वारिंशद्भागान् योजनस्यायामविष्कम्भाभ्यां प्रज्ञप्तं, अयमर्थः–एकयोजनस्यैकषष्टिभागाः कल्प्यन्ते तद्रूपा येऽष्टचत्वारिंशद्भागास्तावत्प्रमाणावस्यायामविष्कम्भावित्यर्थः, तत्त्रिगुणं सविशेषं–साधिकं परिक्षेपेण, अष्टचत्वारिंशत्त्रिगुणिता द्वे योजने द्वाविंशतिरेकषष्टिभागा अधिका योजनस्येत्यर्थः, चतुर्विंशतिरे-

७वक्षस्कारे सूर्यमण्डलादि सू. १२७–१३०

॥४३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषष्टिभागान् योजनस्य बाहल्येन, विमानविष्कम्भस्यार्द्धभागेनोच्चत्वात् । गतं बिम्बायामविष्कम्भादिद्वारम्, अथ मेरुमण्डलयोरबाधाद्वारं, तत्रादिसूत्रम्–

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वब्भंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ?, गोअमा ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे सूरमंडले पण्णत्ते, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइअबाहाए सव्वब्भंतराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ?, गो० ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य बावीसे जोअणसए अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोअणस्स अबाहाए अब्भंतराणंतरे सूरमंडले पं०, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए अब्भंतरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते, ? गो० ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य पणवीसे ओअणसए पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोअणस्स अबाहाए अब्भंतरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते इति, एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयणंतराओ मंडलाओ तयणंतरं मंडलं संकममाणे २ दो दो जोअणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले अबाहावुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइत्ति, जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरे सूरमंडले पं० ?, गो० ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरे सूरमंडले पं०, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वबाहिराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ?, गोअमा ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तेरस य एगसट्ठिभाए जोअणस्स अबाहाए बाहिराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते, जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३१]

दीप अनुक्रम [२५६]

रस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए बाहिरतचे सूरमंडले पण्णत्ते १, गो० ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउवीसे जोअणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स अबाहाए बाहिरतचे सूरमंडले पण्णत्ते, एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे दो दो जोअणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे मंडले अबाहावुड्ढिं णिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ५ (सूत्रं १३१)

'जंबुदीवे ण' मित्यादि, जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवन् ! मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वाभ्यन्तरं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट च विंशत्यधिकानि योजनशतानि अबाधया सर्वाभ्यन्तरं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्, अत्रोपपत्तिः–मन्दरात् जम्बूद्वीपविष्कम्भः पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि, इदं हि मण्डलं जगतीतो द्वीपदिशि अशीत्यधिकयोजनशतोपसङ्क्रमे भवति, तेन ४५००० योजनरूपाद् द्वीपविष्कम्भादियति १८० योजनरूपे शोधिते जातं यथोक्तं मानं, एतच्च चक्रवालविष्कम्भेन भवति तेनापरसूर्यसर्वाभ्यन्तरमण्डलस्याप्यनेनैव करणेनैतावत्येवाबाधा बोद्धव्या, एतेन यदन्यत्र क्षेत्रसमासटीकादौ मेरुमवधीकृत्य सामान्यतो मण्डलक्षेत्राबाधापरिमाणद्वारं पृथक् प्ररूपितं तदनेनैव गतार्थं, अस्यैवाभ्यन्तरतो मण्डलक्षेत्रस्य सीमाकारित्वात्, अथ प्रतिमण्डलं सूर्यस्य दूरदूरगमनादबाधापरिमाणमनियतमित्याह–'जंबुदीवे ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वाभ्यन्तरादनन्तरं–निरन्तरतया जायमानत्वात् द्वितीयं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! चतुश्चत्वारिंश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्योजनसहस्राणि अष्ट च योजनशतानि द्वाविंशत्यधिकानि अष्टचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्याबाधया सर्वाभ्यन्तरानन्तरं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तं, पूर्वस्माद्यदत्राधिकं तद्बिम्बविष्कम्भादन्तरमानाच्च समाधेयं, अथ तृतीयमण्डलं पृच्छन्नाह–'जंबुद्दीवे ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं 'अब्भंतरं तच्च'मिति अभ्यन्तरतृतीयं, अनेन बाह्यतृतीयमण्डलस्य व्यवच्छेदः, उत्तरसूत्रे चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्याबाधया अभ्यन्तरतृतीयं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्, उपपत्तिस्तु द्वितीयमण्डलाबाधापरिमाणे ४४८२२ योजन ३१ इत्येवंरूपे प्रस्तुतमण्डलसत्के सान्तरबिम्बविष्कम्भे प्रक्षिप्ते जातं यथोक्तं मानम्, एवं प्रतिमण्डलमबाधावृद्धावानीयमानायां मा भूद् ग्रन्थगौरवं तेन तज्जिज्ञासूनां बोधकमतिदेशमाह–'एवं खलु' इत्यादि, एवमुक्तरीत्या मण्डलत्रयदर्शितयेत्यर्थः एतेनोपायेन–प्रत्यहोरात्रमेकैकमण्डलमोचनरूपेण निष्क्रामन्–लवणाभिमुखं मण्डलानि कुर्वन् सूर्यस्तदनन्तरात्–विवक्षितात् पूर्वस्मात् मण्डलात् तदनन्तरं—विवक्षितमुत्तरमण्डलं सङ्क्रामन् २ द्वे द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले अबाधाया वृद्धिमभिवर्द्धयन् २ सर्वबाह्यमण्डलमुपक्रम्य चारं चरति, यच्चात्रातिदेशरुचिरपि सूत्रकृन्मण्डलत्रयाभिव्यक्तिमदर्शयत् तत्प्रथमं ध्रुवाङ्कदर्शनार्थं द्वितीयं मण्डलाभिवृद्धिदर्शनार्थं तृतीयं पुनस्तदभ्यासार्थमिति। अथ पश्चानुपूर्व्यापि व्याख्यानाङ्गमित्यन्त्यमण्डलादारभ्य मेरुमण्डलयोरबाधां पृच्छन्नाह–'जंबुद्दीवे'त्ति जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! पञ्चचत्वारिं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शद्योजनसहस्राणि त्रीणि च योजनशतानि त्रिंशदधिकानि अबाधया सर्वबाह्यं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तं, तत्र मन्दरात् पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि जगती ततो लवणे त्रीणि शतानि त्रिंशदधिकानि, तथा द्वितीयमण्डलपृच्छा–'जंबुद्दीवे'त्ति प्रश्नसूत्रे बाह्यानन्तरं–पश्चानुपूर्व्या द्वितीयमित्यर्थः, उत्तरसूत्रे पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि तथैव जगती ततस्त्रिंशदधिकत्रिशतयोजनातिक्रमे यत्सूरमण्डलमुक्तं तस्मादन्तरमाने बिम्बविष्कम्भमाने च शोधिते जातं यथोक्तं मानमिति, अथ तृतीयं–'जंबुद्दीवे'त्ति व्यक्तं, नवरं उत्तरसूत्रे पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि च शतानि चतुर्विंशत्यधिकानि षड्विंशतिं च एकषष्टिभागान् योजनस्येति, अत्र पूर्वमण्डलाङ्कात् सान्तरमण्डलविष्कम्भयोजने २ ६६ शोधिते जातं यथोक्तं मानं, पूर्वमण्डलाङ्को ध्रुवाङ्कस्तत्र सबिम्बविष्कम्भोऽन्तरविष्कम्भः शोध्यस्तत उपपद्यते यथोक्तं मानं, उक्तावशिष्टेषु मण्डलेष्वतिदेशमाह—'एवं खलु' इत्यादि, एवमुक्तरीत्या मण्डलत्रयदर्शितयेत्यर्थः, एतेनोपायेन प्रत्यहोरात्रमेकैकमण्डलमोचनरूपेण प्रविशन् जम्बूद्वीपमिति गम्यं, सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २ द्वे द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले अबाधावृद्धिं निवर्द्धयन् २ इदं समवायाङ्गवृत्त्यनुसारेणोक्तं यथा वृद्धेरभावो निवृद्धिः निशब्दस्याभावार्थत्वात् निवरा कन्येत्यादिवत् तां कुर्वन्, निवृद्धयन् २ इदं स्थानाङ्गवृत्त्यनुसारि, सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्त्यादौ तु निवेष्टयन् २ इत्युक्तमस्ति, अत्र सर्वत्रापि हापयन् २ इत्यर्थः, सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतीति, गतमबाधाद्वारम् । अथ मण्डलायामादिवृद्धिहानिद्वारम्–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंबुद्दीवे दीवे सव्वब्भंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो० ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोअणसए आयामविक्खंभेणं तिण्णि य जोअणसयसहस्साइं पण्णरस य जोअणसहस्साइं एगूणणउइं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिआइं परिक्खेवेणं, अब्भंतराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ? णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च पणयाले जोअणसए पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोअणसयसहस्साइं पण्णस्स य जोअण सहस्साइं एगं सत्तुत्तरं जोअणसयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, अब्भंतरतच्चे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं प० ?, गो० ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च एकावण्णे जोअणसए णव य एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोअणसयं परिक्खेवेणं, एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं उवसंकममाणे २ पंच २ जोअणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुद्धिं अभिवड्ढेमाणे २ अट्ठारस २ जोअणाइं परिरयवुद्धिं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, सव्वबाहिरए णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयामविक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं, बाहिराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च चउपण्णे जोअणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभागे जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि य सत्ताणउए जोअणसए परिक्खेवेणंति, बाहिरतच्चे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो० ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोअणसए बावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि अ अउणासीए जोअणसए परिक्खेवेणं, एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ पंच पंच जोअणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे २ अट्ठारस २ जोअणाइं परिरयवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ६ (सूत्रं १३२)

'जंबुद्दीवे' इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे सर्वाभ्यन्तरं सूर्यमण्डलं कियदायामविष्कम्भाभ्यां कियच्च परिक्षेपेण प्रज्ञप्तं ?, गौतम! नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च योजनशतानि चत्वारिंशदधिकानि आयामविष्कम्भाभ्यां, त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चदश च योजनसहस्राण्येकोननवतिं च योजनानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, तत्रायामविष्कभयोरुत्पत्तिरेवं–जम्बूद्वीपविष्कम्भादुभयोः पार्श्वयोः प्रत्येकमशीत्यधिकयोजनशतशोधने यथोक्तं मानं, तद्यथा–जम्बूद्वीपमानं १००००० अस्मादशीत्यधिकयोजनशते १८० द्विगुणित ३६० शोधिते सति जातं ९९६४० इति, परिक्षेपस्त्वस्यैव राशेः 'विक्खम्भवग्गदहगुणे' त्यादिकरणवशादानेतव्यः, ग्रन्थविस्तरभयान्नात्रोपन्यस्यते, यदिवा यदेकतो जम्बूद्वीपविष्कम्भादशीत्यधिकं योजनशतं यच्चापरतोऽपि तेषां त्रयाणां शतानां षष्ट्यधिकानां ३६० परिरयः एकादश शतान्यष्टत्रिंशदधिकानि ११३८, एतानि जम्बूद्वीपपरिरयात् शोध्यन्ते, ततो यथोक्तं परिक्षेपमानं भवति, अथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयमण्डले तत्पृच्छा–'अब्भंतराण'मित्यादि, अन्वययोजना सुगमा, तात्पर्यार्थस्त्वयम्–सर्वाभ्यन्तरानन्तरं च–द्वितीयं सूर्यमण्डलमायामविष्कम्भाभ्यां नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च योजनशतानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य ९९६४५ ३५/६१, तथाहि–एकतोऽपि सर्वाभ्यन्तरानन्तरं मंण्डलं सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतानष्टचत्वारिंशत्सङ्ख्यानेकषष्टिभागान् द्वे च योजने अपान्तराले विमुच्य स्थितमपरतोऽपि, ततः पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य पूर्वमण्डलविष्कम्भादस्य मण्डलस्य विष्कम्भे वर्द्धन्ते, अस्य च सर्वाभ्यन्तरानन्तरमण्डलस्य परिक्षेपस्त्रीणि शतसहस्राणि पञ्चदश सहस्राण्येकं च शतं सप्तोत्तरं योजनानां ३१५१०७, तथाहि–पूर्वमण्डलादस्य विष्कम्भे पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य वर्द्धन्ते, पञ्चानां च योजनानां पञ्चत्रिंशत्सङ्ख्यैकभागाधिकानां परिरयः सप्तदश योजनानि अष्टत्रिंशच्चैकषष्टिभागाः समधिकाः योजनस्य परं व्यवहारतो विवक्ष्यन्ते परिपूर्णानि अष्टादश योजनानि, तानि पूर्वमण्डलपरिक्षेपे यदाऽधिकानि प्रक्षिप्यन्ते तदा यथोक्तं द्वितीयमण्डलपरिमाणं स्यात्। अथ तृतीयमण्डले तत्पृच्छा–'अब्भंतरतच्चे ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरमुत्तरसूत्रे नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च एकपञ्चाशानि योजनशतानि नव चैकषष्टिभागान् योजनस्याभ्यन्तरतृतीयाख्यं मण्डलमायामविष्कम्भेण, अत्रोपपत्तिः–पूर्वमण्डलायामविष्कम्भे ९९६४५ योजन ३५/६१ इत्येवंरूपे एतन्मण्डलवृद्धौ ५ योजन ३५/६१ प्रक्षिप्तायां यथोक्तं मानं भवति, परिक्षेपेण च त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश योजनसहस्राणि एकं च पञ्चविंशत्यधिकं योजनशतं, तत्रोपपत्तिः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वमण्डलपरिक्षेप ३१५१०७ योजनरूपे प्रागुक्तयुक्त्याऽऽनीते अष्टादश १८ योजनरूपायां वृद्धौ प्रक्षिप्तायां यथोक्तं मानं भवति, अत्रोक्तातिरिक्तमण्डलायामादिपरिज्ञानाय लाघवार्थमतिदेशमाह–'एवं खलु एतेण' मित्यादि, एवमुक्तरीत्या मण्डलत्रयदर्शितयेत्यर्थः, एतेनोक्तप्रकारेण निष्क्रामयन् २ सूर्यस्तदनन्तरात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २ पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्यैकैकस्मिन् मण्डले विष्कम्भवृद्धिमभिवर्द्धयन् २ तथा उक्तरीत्यैवाष्टादश योजनानि परिरयवृद्धिमभिवर्द्धयन् २ सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति । अथ प्रकारान्तरेण प्रस्तुतविचारपरिज्ञानाय पश्चानुपूर्व्या पृच्छन्नाह–'सव्वबाहिरए' इत्यादि प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे एकं योजनलक्षं षट्षष्ट्यधिकानि योजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां, उपपत्तिस्तु जम्बूद्वीपो लक्षं उभयोः पार्श्वयोश्च प्रत्येकं त्रिंशदधिकानि त्रीणि योजनशतानि लवणान्तरमतिक्रम्य परतो वर्त्तमानत्वादस्य इदमेव मानं, त्रीणि योजनलक्षाण्यष्टादश च सहस्राणि त्रीणि च पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि 'व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति'रिति किञ्चिदूनानि परिक्षेपेण भवन्ति, किञ्चिदूनत्वं चात्र परिक्षेपकरणेन स्वयं बोध्यं, संवादश्चात्र विष्कम्भाया ममाने लक्षोपरि यानि षष्ट्यधिकानि षट् योजनशतान्युक्तानि तस्य परिरयमानीय तस्य च जम्बूद्वीपपरिरये प्रक्षेपणाद् भवति । अथ द्वितीयमण्डले तत्पृच्छा–'बाहिराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले' इत्यादि प्रश्नः प्राग्वत्, उत्तरसूत्रे गौतम ! एकं योजनलक्षं षट् चतुःपञ्चाशानि योजनशतानि षड्विंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्यायामविष्कम्भाभ्यां, संवदति चेदं सर्वबाह्यमण्डलविष्कम्भात् पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाधिकपञ्चयोजनेषु शोधितेष्विति, त्रीणि योजनलक्षाण्यष्टादश च सहस्राणि द्वे च सप्तनवतियोजनशते परिक्षेपेण, कथमुपपद्यते चेदिति वदामः, पूर्वमण्डलपरिरयादष्टादशयोजनशोधने सुस्थमिति। अथ तृतीयमण्डले तत्पृच्छा–'बाहिरतचे ण'मित्यादि प्रश्नः पूर्ववत्, उत्तरसूत्रे बाह्यतृतीयं एकं योजनलक्षं षट् चाष्टाचत्वारिंशानि योजनशतानि द्वापञ्चाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्यायामविष्कम्भाभ्यां, युक्तिश्चात्र–अनन्तरपूर्वमण्डलात् पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाधिकपञ्चयोजनवियोजने साधु भवति, त्रीणि योजनलक्षाण्यष्टादश च सहस्राणि द्वे चैकोनाशीते योजनशते परिक्षेपेण, पूर्वमण्डलपरिधेरष्टादशयोजनशोधने यथोक्तं प्रस्तुतमण्डलस्य परिधिमानं, अत्रातिदेशमाह–'एवं खलु एएण'मित्यादि, प्राग्वद्वाच्यं, व्याख्यातार्थत्वात्। गतमायामविष्कम्भादिवृद्धिहानिद्वारम्, अनेनैव क्रमेण द्वयोः सूर्ययोः परस्परमबाधाद्वारमप्यभ्यन्तरबाह्यमण्डलादिष्ववसेयम्। सम्प्रति मुहूर्त्तगतिद्वारम्—

जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गो० ! पंच पञ्च जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोअणसए एगूणतीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोअणसएहिं एगवीसाए अ जोअणस्स सट्ठिभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइत्ति, से णिक्खममाणे सूरिए नवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि सव्वब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइत्ति, जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सूर्यादि मण्डल-विषयक मुहुर्तगतिः प्रदर्श्यते

खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोअणसए सीआलीसं च सट्ठिभागे जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणुसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं एगूणासीए जोअणसए सत्तावण्णाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता एगूणवीसाए चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ बावण्णे जोअणसए पंच य सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणुसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं छण्णउइए जोअणेहिं तेत्तीसाए सट्ठिभागेहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता दोहिं चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, एवं खलु एतेणं ण्वाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोअणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं अभिवड्ढेमाणे अभिवुड्ढेमाणे चुलसीइं २ सआइं जोअणाइं पुरिसच्छायं णिवुड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ पंचुत्तरे जोअणसए पण्णरस य सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणुसस्स एगतीसाए जोअणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एगत्तीसेहिं जोअणसएहिं तीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइत्ति, एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, से सूरिए दोच्चे छम्मासे अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, जया णं भंते ! सूरिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउरुत्तरे जोअणसए सत्तावण्णं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणुसस्स एगत्तीसाए जोअणसहस्सेहिं णवहि अ सोलसुत्तरेहिं जोअणसएहिं इगुणालीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता सट्ठीए चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइत्ति, से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउरुत्तरे जोअणसए इगुणालीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणुयस्स एगाहिएहिं बत्तीसाए जोअणसहस्सेहिं एगूणपण्णाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता तेवीसाए चुण्णिआभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइत्ति, एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ अट्ठारस २ सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं निवड्ढेमाणे २ सातिरेगाइं पंचासीतिं २ जोअणाइं पुरिसच्छायं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे, एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते, (सूत्रं १३३)

'जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं' इत्यादि, यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति इति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?, गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे चैकपञ्चाशे योजनशते एकोनत्रिंशतं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च षष्टिभागान् योजनस्यैकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, कथमिदमुपपद्यते चेत्, उच्यते, इह सर्वमपि मण्डलमेकेनाहोरात्रेण द्वाभ्यां सूर्याभ्यां परिसमाप्यते, प्रतिसूर्यं चाहोरात्रगणने परमार्थतो द्वावहोरात्रौ भवतः, द्वयोश्चाहोरात्रयोः षष्टिर्मुहूर्त्तास्ततो मण्डलपरिरयस्य षष्ट्या भागे हृते यल्लभ्यते तन्मुहूर्त्तगतिप्रमाणं, तथाहि–सर्वाभ्यन्तरमण्डलपरिरयस्त्रीणि लक्षाणि पञ्चदश सहस्राण्येकोननवत्यधिकानि योजनानां ३१५०८९, एतेषां षष्ट्या भागे हृते लब्धं यथोक्तं मुहूर्त्तगतिप्रमाणं ५२५१ ३९/६०, अथ विनयावर्जितमनस्केन प्रज्ञापकेनापृच्छतोऽपि विनेयस्य किञ्चिदधिकं प्रज्ञापनीयमित्याह, यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादनुक्तमपि यच्छब्दगर्भितवाक्यमत्रावतारणीयं तेन यदा सूर्यः एकेन मुहूर्त्तेन इयत् ५२५१ ३९/६० प्रमाणं गच्छति तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलसङ्क्रमणकाले इहगतस्य मनुष्यस्य अत्र जातावेकवचनं ततोऽयमर्थः–इहगतानां भरतक्षेत्रगतानां मनुष्याणां सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैर्द्वाभ्यां च त्रिषष्टाभ्यां–त्रिषष्टयधिकाभ्यां योजनशताभ्यामेकविंशत्या च योजनस्य षष्टिभागैरुदयमानः सूर्यश्चक्षुःस्पर्शं–चक्षुर्विषयं हवं––शीघ्रमागच्छति, अत्र च स्पर्शशब्दो नेन्द्रियार्थसन्निकर्षपरश्चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वेन तदसंभवादिति, काऽत्रोपपत्तिरिति चेत्, उच्यते, इह दिवसस्यार्द्धेन यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते सावति व्यवस्थितः सूर्य उपलभ्यते, स एव लोके उदयमान इति व्यवहियते, सर्वाभ्यन्तरमण्डले दिवसप्रमाणमष्टादश मुहूर्त्तास्तेषामर्द्धे नव मुहूर्त्ताः एकैकस्मिंश्च मुहूर्त्ते सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरन् पञ्च योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते एकपञ्चाशदधिके एकोनत्रिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य गच्छति, एतावन्मुहूर्त्तगतिपरिमाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवभिर्मुहूर्त्तैर्गुण्यते ततो भवति यथोक्तं दृष्टिपथप्राप्ततविषयपरिमाणमिति, एवं सर्वेष्वपि मण्डलेषु स्वस्वमुहूर्त्तगतौ स्वस्वदिवसार्द्धगतमुहूर्त्तराशिना गुणितायां दृष्टिपथप्राप्तता भवति, दृष्टिपथप्राप्तता चक्षुःस्पर्शः पुरुषच्छाया इत्येकार्थाः, सा च पूर्वतोऽपरतश्च समप्रमाणैव भवतीति द्विगुणिता तापक्षेत्रमुदयास्तान्तरमित्यादिपर्यायाः, इदं च सर्वबाह्यानन्तरमण्डलात् पश्चानुपूर्व्या गण्यमानं त्र्यशीत्यधिकशततमं, प्रतिमण्डलं चाहोरात्रगणनादहोरात्रोऽपि त्र्यशीत्यधिकशततमस्तेनायमुत्तरायणस्य चरमो दिवसोऽयमेव च सूर्यसंवत्सरस्य पर्यन्तदिवस उत्तरायणपर्यवसानकत्वात् संवत्सरस्येति। अथ नवसंवत्सरप्रारम्भप्रकारप्रज्ञापनाय सूत्रं प्रारभ्यते–'से णिक्खममाणे' इत्यादि, अथाभ्यन्तरान्मण्डलान्निष्क्रामन् जम्बूद्वीपान्तः प्रवेशेऽशीत्यधिकयोजनशतप्रमाणे क्षेत्रे चरमाकाशप्रदेशस्पर्शनानन्तरं द्वितीयसमये द्वितीयमण्डलाभिमुखं प्रसर्प्पन्नित्यर्थः, सूर्यो नवं–आगामिकालभाविनं संवत्सरमयमानः २–आददानः प्रथमेऽहोरात्रे सर्वाभ्यन्तरानन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, एष चाहोरात्रो दक्षिणायनस्याद्यः संवत्सरस्यापि च दक्षिणायनादिकत्वात् संवत्सरस्य, अत्र चाधिकारे समवायाङ्गसूर्यप्रज्ञप्तिचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रादर्शे प्रस्तुतसूत्रादर्शेषु च अयमाणे २ इत्यस्य स्थाने अयमीणे इति पाठो दृश्यते तेन यदि स समूलस्तदा आर्षत्वादिहेतुना साधुरेव, अयमाणे इति तु लक्षणसिद्धः, अर्थस्तूभयत्रापि स एवेति, अथात्र गतिप्रश्नाय सूत्रम्–'जया णं' इत्यादि, यदा भगवन् ! सर्वाभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं दक्षिणायनापेक्षया आद्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत्क्षेत्रं गच्छति ?, गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वे चैकपञ्चाशे योजनशते सप्तचत्वारिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्यैकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, कथमिति चेत्, उच्यते अस्मिंश्च मण्डले परिरयपरिमाणं त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि शतमेकं सप्तोत्तरं व्यवहारतः परिपूर्णं निश्चयमतेन तु किञ्चिदूनं ३१५१०७, ततोस्य प्रागुक्तयुक्तिवशात् षष्ट्या भागे लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिप्रमाणं ५२५१ ६०, अथवा पूर्वमण्डलपरिरयपरिमाणादस्य परिरयपरिमाणे व्यवहारतः पूर्णान्यष्टादशयोजनानि वर्द्धन्ते निश्चयमतेन तु किञ्चिदूनानि, अष्टादशानां योजनानां षष्ट्या भागे लब्धा अष्टादश षष्टिभागा योजनस्य ते प्राक्तनमण्डलगतमुहूर्त्तगतिपरिमाणेऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यन्ते, ततो भवति यथोक्तं तत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिप्रमाणमिति, अत्रापि दृष्टिपथप्राप्ततां विषयं परिमाणमाह–यदा अभ्यन्तरद्वितीये मण्डले सूर्यश्चरति तदा इहगतस्य मनुष्यस्य–जातावेकवचनमित्यत्र गतानां मनुष्याणां सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैरेकोनाशीत्यधिकेन योजनशतेन, सूत्रे तृतीयार्थे सप्तमी प्राकृतत्वात्, सप्तपञ्चाशता च षष्टिभागैर्योजनस्य षष्टिभागं च एकषष्टिधा छित्त्वा–एकषष्टिखण्डान् कृत्वा एकषष्टिधा गुणयित्वेत्यर्थः, तस्य सत्कैरेकोनविंशत्या चूर्णिकाभागैः–भागभागैः सूर्यश्चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तथाहि–सर्वाभ्यन्तरानन्तरे द्वितीये मण्डले दिवसप्रमाणं द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यां हीना अष्टादश मुहूर्त्तास्तेषामर्द्धे नव मुहूर्त्ता एकेनैकषष्टिभागेन हीनास्ततः सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं नवापि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, तेभ्य एकषष्टिभागोऽपनीयते, ततः शेषा जाता एकषष्टिभागाः पञ्च शतान्यष्टचत्वारिंशदधिकानि ५४८, प्रस्तुतमण्डले मुहूर्त्तगतिः ५२५१ योजन ६० अयं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राशिः षष्टिच्छेद इति योजनराशिं षष्ट्या गुणयित्वा सवर्ण्यते जातं ३१५१०७, अयमेव राशिः करणविभावनायां मलयगिरीयक्षेत्रसमासवृत्तौ च परिधिराशिरिति कृत्वा दर्शितो लाघवात् भाज्यराशिलब्धस्य भाजकराशिना गुणने मूलराशेरेव लाभात्, एष राशिः पञ्चभिः शतैरष्टाचत्वारिंशदधिकैर्गुण्यते जाताः सप्तदश कोट्यः षड्विंशतिर्लक्षाः अष्टसप्ततिः सहस्राणि षट् शतानि षट्त्रिंशदधिकानि १७२६७८६३६, अयं च राशिर्भागभागात्मकत्वान्न योजनानि प्रयच्छतीति एकषष्टेः षष्ट्या गुणिताया यावान् राशिर्भवति तेन भागो ह्रियते, इयं च गणितप्रक्रिया लाघवार्थिका, अन्यथाऽस्य राशेरेकषष्ट्या भागे हृते षष्टिभागा लभ्यन्ते तेषां च षष्ट्या भागे हृते योजनानि भवन्तीति गौरवं स्यात्, एकषष्ट्यां च षष्ट्या गुणितायां षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६०, तैर्भागे हृते आगतं सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि शतमेकमेकोनाशीत्यधिकं योजनानां ४७१७९, शेषं ३४९६, छेदराशेः षष्ट्याऽपवर्त्तना क्रियते जाता एकषष्टिः ६१ तया शेषराशेर्भागो ह्रियते लब्धाः सप्तपञ्चाशत् षष्टिभागाः ५७, एकोनविंशतिश्चैकस्य षष्टिभागस्य सत्काः एकषष्टिभागाः १९। अथाभ्यन्तरतृतीयमण्डलस्य चारं पिपृच्छिषुराद्यसूत्रं सूत्रयति–'से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि' इत्यादि, अथ निष्क्रामन् सूर्यो द्वितीयेऽहोरात्रे प्रस्तुतायनापेक्षया द्वितीयमण्डल इत्यर्थः अभ्यन्तरं तृतीयमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?, भगवानाह—गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे च द्विपञ्चाशद्योजनशते पञ्चदश षष्टिभागान् योजनस्यैकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति,इदं च प्रस्तुतमण्डलपरिरयस्य षष्ट्या भजने संवादमादत्ते, तदा च इह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतस्य मनुष्यस्य सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः षण्णवत्या च योजनैस्त्रयस्त्रिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य षष्टिभागं चैकं एकषष्टिधा छित्त्वा द्वाभ्यां चूर्णिकाभागाभ्यां सूर्यश्चक्षुःस्पर्शं हवं–शीघ्रमागच्छति, तथाहि–अत्र मण्डले दिनप्रमाणमष्टादश मुहूर्त्ताश्चतुर्भिरेकषष्टिभागैर्हीनास्तेषामर्द्धे च नव द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यां हीनास्ततः सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं नवापि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते तेभ्यश्च द्वावेकषष्टिभागावपनीयेते शेषाः पञ्च शतानि सप्तचत्वारिंशदधिकानि ५४७, प्रस्तुतमण्डले मुहूर्त्तगतिः ५२५२ $\frac{1}{61}$ इत्येवंरूपां योजनराशिं षष्ट्या गुणयित्वा सवर्ण्यते जातं ३१५१२५, अयमेव राशिरन्यैः परिधिराशित्वेन निरूपितः, अस्य च सप्तचत्वारिंशदधिकपञ्चशतैर्गुणने जाताः सप्तदश कोट्यस्त्रयोविंशतिः शतसहस्राणि त्रिसप्ततिः सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि १७२३७३३७५, एतेषां षष्टिगुणितया एकषष्ट्या ३६६० भागे हृते आगतानि सप्तचत्वारिंशत् सहस्राणि षण्णवत्यधिकानि ४७०९६, शेषं विंशतिशतानि पञ्चदशोत्तराणि २०१५, छेदराशेः षष्ट्याऽपवर्त्तनायां जाता एकषष्टिः तया शेषराशेर्भजने लब्धास्त्रयस्त्रिंशत् षष्टिभागाः $\frac{33}{61}$ शेषौ च द्वावेकस्य षष्टिभागस्य सत्कावेकषष्टिभागौ $\frac{2}{61}$, इति। सम्प्रति चतुर्थमण्डलादिष्वतिदेशमाह—'एवं खलु एतेणं उवाएणं' इत्यादि, एवं मण्डलत्रयदर्शितरीत्या खलु–निश्चितमेतेनानन्तरोदितेनोपायेन शनैः शनैस्तत्तद्बहिर्मण्डलाभिमुखगमनरूपेण निष्क्रामन् सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं प्रागुक्तप्रकारेण सङ्क्रामन् २ एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिमित्यत्र प्राकृतत्वात् सप्तम्यर्थे द्वितीया तेन मुहूर्त्तगतौ अष्टादश २ षष्टिभागान् योजनस्य व्यवहारतः परिपूर्णान् निश्चयतः किञ्चिदू-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नान् अभिवर्द्धयमानः चतुरशीतिं २ योजनानि शीतानि–किञ्चिन्यूनानि पुरिसच्छायमिति–पुरुषस्य छाया यतो भवति सा पुरुषच्छाया सा चेह प्रस्तावात् प्रथमतः सूर्यस्योदयमानस्य दृष्टिपथप्राप्तता, अत्रापि सप्तम्यर्थे द्वितीया, ततोऽयमर्थः–तस्या निवर्द्धयन् २–हापयन् २, कोऽर्थः ?–पूर्वं २ मण्डलसत्कपुरुषच्छायातो बाह्यबाह्यमण्डलपुरुषच्छाया किञ्चिन्यूनैश्चतुरशीत्या योजनैर्हीना इत्यर्थः, सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, यच्चात्रोक्तं ८४ योजनानि किञ्चिन्यूनानि उत्तरोत्तरमण्डलसत्कपुरुषच्छायायां हीयन्ते इति तत्स्थूलत उक्तं, परमार्थतः पुनरिदं द्रष्टव्यं—त्र्यशीतियोंजनानि त्रयोविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य एकषष्टिधाच्छिन्नस्य सत्का द्विचत्वारिंशद् भागाश्चेति दृष्टिपथप्राप्ततायां हानौ ध्रुवं, ततः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात् तृतीयं यन्मण्डलं तत आरभ्य यस्मिन् मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता ज्ञातुमिष्यते तत्तन्मण्डलसङ्ख्यया षट्त्रिंशद् गुण्यते, तद्यथा—सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीये मण्डले एकेन चतुर्थे द्वाभ्यां पञ्चमे त्रिभिर्यावत् सर्वबाह्यमण्डले व्यशीताधिकशतेन गुणयित्वा ध्रुवराशिमध्ये प्रक्षिप्यते, प्रक्षिप्ते सति यद्भवति तेन हीना पूर्वमण्डलसत्कदृष्टिपथप्राप्तता तस्मिन् विवक्षिते मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता ज्ञातव्या, अथ त्र्यशीतियोजनादिकस्य ध्रुवराशेः कथमुपपत्तिः ?, उच्यते, सर्वाभ्यन्तरमण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणे सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य ४७२६३ $\frac{21}{60}$, एतच्च नवमुहूर्त्तगम्यं तत एकस्मिन् मुहूर्त्तैकषष्टिभागे किमागच्छतीति चिन्तायां नव मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि पञ्च शतान्येकोनपञ्चाशदधिकानि ५४९ तैर्भागे हृते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लब्धानि षडशीतिर्योजनानि पञ्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्यैकषष्टिधाच्छिन्नस्य चतुर्विंशतिर्भागाः ८६ ६०|२४ ६१ इदं च सर्वाभ्यन्तरे मण्डले एकस्य मुहूर्त्तैकषष्टिभागस्य गम्यं, अथ द्वितीयमण्डलपरिरयवृद्ध्यङ्कभजनाद्यत्लभ्यते मुहूर्त्तैकषष्टिभागेन तच्छोधनार्थमुपक्रम्यते, पूर्वपूर्वमण्डलादनन्तरानन्तरे मण्डले परिरयपरिमाणचिन्तायामष्टादशाष्टादश योजनानि व्यवहारतः परिपूर्णानि वर्धन्ते, ततः पूर्वपूर्वमण्डलगतमुहूर्त्तगतिपरिमाणादनन्तरानन्तरे मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणचिन्तायां प्रतिमुहूर्त्तमष्टादश २ षष्टिभागा योजनस्य वर्द्धन्ते, प्रतिमुहूर्त्तैकषष्टिभागं चाष्टादशैकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाः, सर्वाभ्यन्तरानन्तरे च द्वितीयमण्डले नवमुहूर्त्तैरेकेन मुहूर्त्तैकषष्टिभागेनोनैर्यावत् क्षेत्रं व्याप्यते तावति स्थितः सूर्यो दृष्टिपथप्राप्तो भवति ततो नव मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते जातान्यष्टानवतिशतानि चतुःषष्ट्यधिकानि ९८६४, तेषां षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धमेकषष्ट्यधिकं शतं षष्टिभागानां त्रिचत्वारिंशत् षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाः १६१ ४३ ६१, तत्र विंशत्यधिकेन षष्टिभागशतेन लब्धे द्वे योजने अवशेषा एकचत्वारिंशत् षष्टिभागाः एकस्य च षष्टिभागस्य सत्कास्त्रिचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः, एतच्च द्वे योजने एकचत्वारिंशत्षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्कास्त्रिचत्वारिंशदेकषष्टिभागा इत्येवंरूपं प्रागुक्तात् षडशीतिर्योजनानि पञ्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काश्चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागा इत्येतस्माच्छोध्यन्ते, शोधिते च तस्मिन् स्थितानि त्र्यशीतिर्योजनानि त्रयोविंशतिः षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३३]

दीप अनुक्रम [२५८]

[३२/४२/६१] एतावच्च सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतदृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणाद् द्वितीयमण्डलगतदृक्पथप्राप्ततापरिमाणे हीनं स्यात्, एतच्चोत्तरोत्तरमण्डलदृष्टिपथप्राप्ततांचिन्तायां हानौ ध्रुवं अत एव ध्रुवराशिरित्युच्यते, ततो द्वितीयस्मान्मण्डलादनन्तरे तृतीये मण्डले एष एव ध्रुवराशिरेकस्य षष्टिभागस्य सत्कैः षट्त्रिंशता भागभागैः सहितो यावान् राशिः स्यात्, तथाहि–त्र्यशीतिर्योजनानि चतुर्विंशतिः षष्टिभागा योजनस्य सप्तदश च षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागा इति तावान् द्वितीयमण्डलगताद् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणाच्छोध्यते, ततो भवति यथोक्तमत्र मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं, चतुर्थमण्डले स एव ध्रुवराशिर्द्वासप्तत्या सहितः क्रियते, चतुर्थं हि मण्डलं तृतीयमण्डलापेक्षया द्वितीयं, ततः षट्त्रिंशद् द्वाभ्यां गुणिता द्विसप्ततिः स्यात् तया सहितस्त्र्यशीत्यादिको राशिः ८३ २४/६१ ५३/६१ इत्येवंस्वरूपो जातः, अयं च तृतीयमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणाच्छोध्यते ततो यथावस्थितं तुर्यमण्डले दृक्पथप्राप्तिमानं, तच्चेदम्–सप्तचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रयोदशोत्तराणि अष्टौ च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्य सत्का दशैकषष्टिभागाः, सर्वान्तिमे तु मण्डले तृतीयमण्डलापेक्षया द्व्यशीत्यधिकशततमे यदा दृष्टिपथप्राप्तिजिज्ञासा तदा षट्त्रिंशत् द्व्यशीत्यधिकशतेन गुण्यते जातानि पञ्चषष्टिशतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ६५५२ ततः षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागे लब्धं सप्तोत्तरं शतं षष्टिभागानां पञ्चविंशतिरवशिष्टाः एतद् ध्रुवराशौ प्रक्षिप्यते जातं पञ्चाशीतिर्योजनानि एकादश षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षडेकषष्टिभागाः ८५ ११/६१, इह षट्त्रिंशत एवमुत्पत्तिः–पूर्वस्मात् २

श्रीजम्बू. ७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मण्डलादनन्तरेऽनन्तरे मण्डले दिवसो द्वाभ्यां २ मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्या हीनः स्यात्, प्रतिमुहूर्त्तैकषष्टिभागं चाष्टादश एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागा हीयन्ते, ततः उभयमीलने षट्त्रिंशत् स्युः, ते चाष्टादश भागाः कलया न्यूना लभ्यन्ते न परिपूर्णाः परं व्यवहारतः पूर्वं परिपूर्णा विवक्षिताः, तच्च कलया न्यूनत्वं प्रतिमण्डलं भवत् यदा द्व्यशीत्यधिकशततममण्डले एकत्र पिण्डितं सत् चिन्त्यते तदा अष्टषष्टिरेकषष्टिभागास्तुल्यन्ति, एतदपि व्यवहारत उक्तं परमार्थतः पुनः किञ्चिदधिकमपि त्रुट्यदवसेयम्, ततोऽमी अष्टषष्टिरेकषष्टिभागा अपसार्यन्ते, तदपसारणे पञ्चाशीतियोजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ८५ [६०/६१] इति जातं सर्वबाह्यमण्डलानन्तरार्वाक्तनद्वितीयमण्डलगतदृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणादेकत्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि योजनानां एकोनचत्वारिंशत्षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ३१९१६ [३९/६१] इत्येवंरूपाच्छोध्यते ततो यथोक्तं सर्वबाह्यमण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्चाग्रे स्वयमेव वक्ष्यति, तत एवं पुरुषच्छायायां दृष्टिपथप्राप्ततारूपायां द्वितीयादिषु केषुचिन्मण्डलेषु चतुरशीतिं किञ्चिन्न्यूनानि उपरितनेषु मण्डलेष्वधिकान्यधिकतराणि उक्तप्रकारेणाभिवर्द्धयन् २ तावदवसेयो यावत्सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तत्र तु पञ्चाशीतिं योजनानि साधिकानि हापयतीत्यर्थः, साधिकत्र्यशीतिचतुरशीतिपञ्चाशीतियोजनानां सम्भवेऽपि सूत्रे यच्चतुरशीतिग्रहणं तद् देहलीप्रदीपन्यायेनोभयपार्श्ववर्त्तिन्योरुभयशीतिपञ्चाशीत्योर्ग्रहणार्थमिति। अथोक्ते एव मण्डलक्षेत्रे पश्चानु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व्या सूर्यस्य मुहूर्त्तगत्याह–'जया ण' मित्यादि, यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?, गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि पञ्चोत्तराणि योजनशतानि पञ्चदश षष्टिभागान् योजनस्य ५३०५ १५/६० एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, कथमिति चेत्, उच्यते–अस्मिन् मण्डले परिरयपरिमाणं तिस्रो लक्षा अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चदशोत्तराणि ३१८३१५, ततोऽस्य प्रागुक्तयुक्तिवशात् षष्ट्या भक्ते लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणमिति, अत्र दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणमाह–'तदा' सर्वबाह्यमण्डलचारचरणकाले इहगतस्य मनुष्यस्येति प्राग्वत् एकत्रिंशता योजनसहस्रैरष्टभिश्चैकत्रिंशदधिकैर्योजनशतैस्त्रिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य ३१८३१ ३०/६० सूर्यः शीघ्रं चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले सूर्ये चारं चरति दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो, दिवसस्यार्द्धेन यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते तावति स्थित उदयमानः सूर्य उपलभ्यते, द्वादशानां च मुहूर्त्तानामर्द्धे षट् मुहूर्त्तास्ततो यदत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं पञ्चयोजनसहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि पञ्चदश च षष्टिभागा योजनस्य ५३०५ १५/६० तत् षड्भिर्गुण्यते, दिवसार्द्धगुणितायाः एव मुहूर्त्तगतेर्दृष्टिपथप्राप्ततोकरणत्वात्, ततो यथोक्तमत्र मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, यद्यप्युपान्त्यमण्डलदृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् पञ्चाशीतिर्योजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः इत्येवंराशौ शोधिते इदमुपपद्यते एतच्च प्राग् भावितं तथापि प्रस्तुतमण्डलस्योत्तरायणगतमण्डलानामवधिभूतत्वेनान्यमण्डलकरणनिरपेक्षतया करणान्तरमकारि, इदं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वाभ्यन्तरानन्तरमण्डलात् पूर्वानुपूर्व्या गण्यमानं त्र्यशीत्यधिकशततमं, प्रतिमण्डलं चाहोरात्रगणनादहोरात्रोऽपि त्र्यशीत्यधिकशततमस्तेनायं दक्षिणायनस्य चरमो दिवस इत्याद्यभिधातुमाह–'एस णं पढमे छम्मासे एस ण'मित्यादि, एष च दक्षिणायनसत्कत्र्यशीत्यधिकशतदिनरूपो राशिः प्रथमः षण्मासः–अयनरूपः कालविशेषः, षट्सङ्ख्याङ्काः मासाः पिण्डीभूता यत्रेति व्युत्पत्तेरिदं समाधेयं, अन्यथा प्रथमः षण्मास इत्येकवचनानुपपत्तिरिति, अथवा पाठ्यादि गणान्तः पाठात् स्त्रीत्वाभावे अदन्तद्विगुत्वेऽपि न ङीप्रत्ययस्तेनैव तत्प्रथमं षण्मासं आर्षत्वात् पुंस्त्वं, एतच्च प्रथमस्य षण्मासस्य दक्षिणायनरूपस्य पर्यवसानं, अथ सर्वबाह्यमण्डलचारानन्तरं सूर्यो द्वितीयं षण्मासं प्रामुवन् गृह्णन् इत्यर्थः प्रथमे अहोरात्रे उत्तरायणस्येति गम्यं, बाह्यानन्तरं पश्चानुपूर्व्या द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, अथात्र गत्यादिप्रश्नार्थं सूत्रमाह–'जया ण' मित्यादि, यदा भगवन्! सूर्यः बाह्यानन्तरमर्वाक्तनं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा भगवन्! एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?, भगवानाह–गौतम! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि च चतुरुत्तराणि योजनशतानि सप्तपञ्चाशतं च षष्टिभागान् योजनस्यैकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ५३०४ ५७, तथाहि–अस्मिन् मण्डले परिरयपरिमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि द्वे शते सप्तनवत्यधिके योजनानां ३१८२९७ ततोऽस्य षष्ट्या भागे हृते लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिप्रमाणं, अत्रापि दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणमाह–तदा इहगतस्य मनुष्यस्येति प्राग्वत् एकत्रिंशता योजनसहस्रैः षोडशाधिकैः नवभिश्च योजनशतैरेकोनचत्वारिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कैः षष्ट्या चूर्णिकाभागैः ३१९१६ ६१ ६१ सूर्यश्चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले सूर्ये चारं चरति दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिकः तेषां चार्द्धे षड् मुहूर्त्ताः एकेन मुहूर्त्तैकषष्टिभागेनाभ्यधिकास्ततः सवर्णनार्थं षडपि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते तत एकः षष्टिभागस्तत्राधिकः प्रक्षिप्यते, ततो जातानि त्रीणि शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि एकषष्टिभागानां ३६७, ततः प्रस्तुतमण्डले यत्परिमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादशसहस्राणि द्वे शते सप्तनवत्यधिके ३१८२९७, इदं च योजनराशिं षष्ट्या गुणयित्वा सवर्णिता मुहूर्त्तगतिरिति यथा व्यवह्रियते तथा प्रागुक्तम्, एतदेभिस्त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्याऽधिकैर्गुण्यते जाता एकादश कोट्योऽष्टषष्टिर्लक्षाश्चतुर्दश सहस्राणि नव शतानि नवनवत्यधिकानि ११६८१४९९९, एतस्य एकषष्ट्या गुणितया षष्ट्या ३६६० भागो ह्रियते लब्धान्येकत्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि ३१९१६, शेषमुद्धरति चतुर्विंशतिशतानि एकोनचत्वारिंशदधिकानि २४३९ न चातो योजनान्यायान्ति ततः षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा एकोनचत्वारिंशत् षष्टिभागाः ३९ एकस्य च षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ६१ । अथ तृतीयं मण्डलं–'से पविसमाणे' इत्यादि, अथ प्रविशन्—जम्बूद्वीपाभिमुखं चरन् सूर्यः द्वितीयेऽहोरात्रे उत्तरायणसत्के इत्यर्थः बाह्यतृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तदा किमित्याह–'जया ण'मित्यादि, यदा भगवन्! सूर्यः बाह्यतृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत क्षेत्रं गच्छति ?, भगवानाह–गौतम! पञ्च पञ्च योजनसह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्राणि त्रीणि चतुरुत्तराणि योजनशतानि एकोनचत्वारिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य ५३०४ ३९/६० एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले परिरयपरिमाणं तिस्रो लक्षा अष्टादश सहस्राणि द्वे शते एकोनाशीत्यधिके ३१८-२७९ अस्य च षष्ट्या भागे हृते लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिप्रमाणं, अथात्र दृष्टिपथप्राप्तता–तदा इहगतस्य मनुष्यस्य एकार्धिकैर्द्वात्रिंशता सहस्रैरेकोनपञ्चाशता च षष्टिभागैरेकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा तस्य सत्कैस्त्रयोविंशत्या चूर्णिकाभागैः ३२००१ ४९/६१ ३३/६१ सूर्यः चक्षुःस्पर्शमागच्छति, तथाहि–अस्मिन् मण्डले दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणश्चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरधिकस्तस्यार्द्धं षट् मुहूर्त्ता द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यामधिकास्ततः सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं षडपि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यंते गुणयित्वा च तत्र द्वावेकषष्टिभागौ प्रक्षिप्येते ततो जातानि त्रीणि शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि एकषष्टिभागानां ३६८, ततोऽस्मिन् मण्डले यत्परिरयप्रमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि द्वे शते एकोनाशीत्यधिके ३१८२७९ एतत् त्रिभिः शतैः अष्टषष्ट्यधिकैर्गुण्यते जाता एकादश कोटयः एकसप्ततिः शतसहस्राणि षड्विंशतिः सहस्राणि षट् शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ११७१२६६७२, अस्य एकषष्ट्या गुणितया षष्ट्या ३६६० भागे लब्धानि द्वात्रिंशत्सहस्राणि एकोत्तराणि ३२००१ शेषं त्रीणि सहस्राणि द्वादशोत्तराणि ३०१२ तेषां षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागे हृते लब्धा एकोनपञ्चाशत् षष्टिभागाः ४९/६१ एकस्य षष्टिभागस्य सत्कास्त्रयोविंशतिश्चूर्णिकाभागाः ३३/६१ इति, समवायांङ्गे तु त्रयस्त्रिंशत्समवाये 'जया णं सूरिए बाहिराणंतरतच्चं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसाए जोअणसहस्सेहिं किंचिविसेसूणेहिं चक्खुफासं हवमागच्छइ'त्ति एतद्वृत्तौ च इह तु यदुक्तं त्रयस्त्रिंशत् किञ्चिन्न्यूनास्तत्र सातिरेकयोजनस्यापि न्यूनसहस्रता विवक्षितेति सम्भाव्यते इति, अथात्रापि चतुर्थमण्डलादिष्वतिदेशमाह–'एवं खलु' इत्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण खलु–निश्चितमेतेनोपायेन–शनैः २ तत्तदनन्तराभ्यन्तरमण्डलाभिमुखगमनरूपेणाभ्यन्तरं प्रविशन् सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २ एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिमित्यत्र द्वितीया पूर्ववत् मुहूर्त्तगतिपरिमाणे अष्टादश २ षष्टिभागान् योजनस्य व्यवहारतः परिपूर्णान् निश्चयतः किञ्चिदूनान् निवर्द्धयन् २ हापयन्नित्यर्थः, पूर्वमण्डलात् अभ्यन्तराभ्यन्तरमण्डलस्य परिरयमधिकृत्याष्टादशयोजनैर्हीनत्वात्, पुरुषच्छायामित्यत्रापि द्वितीया पूर्ववत्, ततोऽयमर्थः—पुरुषच्छायायां दृष्टिपथप्राप्ततारूपायां नवभिः षष्टिभागैः षष्ट्या च चूर्णिकाभागैः सातिरेकाणि–समधिकानि पञ्चाशीतिं २ योजनान्यभिवर्द्धयन् २ प्रथमद्वितीयादिषु कतिपयेषु मण्डलेषु इयं वृद्धिर्ज्ञेया सर्वमण्डलापेक्षया तु येनैव क्रमेण सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतो दृष्टिपथप्राप्ततां हापयन्निर्गतस्तेनैव क्रमेण सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाकृतनेषु दृष्टिपथप्राप्ततामभिवर्द्धयन् प्रविशति, तत्र सर्वबाह्यमण्डलादर्वाकृतनद्वितीयमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् सर्वबाह्ये मण्डले पञ्चाशीतिं योजनानि नव षष्टिभागान् योजनस्य एकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा भित्त्वा तस्य सत्कान् षष्टिभागान् हापयति, एतच्च प्रागेव भावितं तस्मात् सर्वबाह्यादर्वाकृतने द्वितीये मण्डले प्रविशन् तावद्भूयोऽपि दृष्टिपथप्राप्ततापरिमा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेऽभिवर्द्धयति तच्च ध्रुवं, ततोऽर्वाक्तनेषु मण्डलेषु यस्मिन् मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता ज्ञातुमिष्यते तृतीयमण्डलादारभ्य तत्तन्मण्डलसङ्ख्यया षट्त्रिंशद् गुण्यते, तद्यथा–तृतीयमण्डलचिन्तायामेकेन चतुर्थमण्डलचिन्तायां द्वाभ्यां एवं यावत् सर्वाभ्यन्तरमण्डलचिन्तायां द्व्यशीत्यधिकेन शतेन, इत्थं च गुणयित्वा यल्लभ्यते तद् ध्रुवराशेरपनीय शेषेण ध्रुवराशिना सहितं पूर्वस्मण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं तत्र मण्डले द्रष्टव्यं, यथा तृतीये मण्डले षट्त्रिंशदेकेन गुण्यते, 'एकेन च गुणितं तदेव भवती'ति जाता षट्त्रिंशदेव सा ध्रुवराशेरपनीयते, जातं शेषमिदं–पञ्चाशीतिर्योजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्य सत्काश्चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागाः ८५ ९/६० २४/६१ एतेन पूर्वमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं एकत्रिंशत् सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि योजनानामेकोनचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ३१९१६ इत्येवंरूपसहितं क्रियते कृते च तृतीये मण्डले यथोक्तं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति तच्च प्रागेव प्रदर्शितं, चतुर्थे मण्डले षट्त्रिंशद् द्वाभ्यां गुण्यते गुणयित्वा ध्रुवराशेरपनीय शेषेण ध्रुवराशिना तृतीयमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं सहितं क्रियते, तत इदं तत्र मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति–द्वात्रिंशत्सहस्राणि षडशीत्यधिकानि योजनानामष्टपञ्चाशत् षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः एकादशैकषष्टिभागाः ३२०८६ ११/६१ एवं शेषेष्वपि मण्डलेषु भावनीयं, यदा तु सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं ज्ञातुमिष्यते तदा षट्त्रिंशद् द्व्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यते, तृतीयमण्डलादारभ्य सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्य द्व्यशी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यधिकशततमत्वात्, ततो जातानि पञ्चषष्टिः शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ६५५२, तेषामेकषष्ट्या भागे हृते लब्धं सप्तोत्तरं शतं षष्टिभागानां शेषाः पञ्चविंशतिः $\frac{१०७}{६१}$, एतत्पञ्चाशीतिर्योजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ८५ $\frac{६०}{६१}$ इत्येवंरूपाद् ध्रुवराशेः शोध्यते, जातानि पश्चात् त्र्यशीतिर्योजनानि द्वाविंशतिः षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाः, इह षट्त्रिंशदेकषष्टिभागाः कलया न्यूनाः परमार्थतो लभ्यन्ते, एतच्च प्रागेवोपदर्शितं, तच्च कलाया न्यूनत्वं प्रतिमण्डलं भवत् यदा द्व्यशीत्यधिकशततममण्डले एकत्र पिण्डितं सत् चिन्त्यते तदा अष्टषष्टिरेकषष्टिभागा लभ्यन्ते ततस्ते भूयः प्रक्षिप्यन्ते ततो जातमिदं-त्र्यशीतिर्योजनानि त्रयोविंशतिः षष्टिभागाः योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ८३ $\frac{२३}{६०}$ $\frac{४२}{६१}$, एतेन सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि शतमेकोनाशीत्यधिकं योजनानां सप्तपञ्चाशत् षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकोनविंशतिरेकषष्टिभागाः ४७१७९ $\frac{५७}{६०}$ $\frac{१९}{६१}$ इत्येवंरूपसहितं क्रियते ततो यथोक्तं सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्च सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य ४७२६३ $\frac{२१}{६०}$ एवं दृष्टिपथप्राप्तायां कतिपयेषु मण्डलेषु सातिरेकाणि पञ्चाशीतिं २ योजनानि अग्रेतनेषु चतुरशीतिं २ पर्यन्ते यथोक्ताधिकसहितानि त्र्यशीतिं योजनानि अभिवर्द्धयन् २ तावद् वक्तव्यो यावत् सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, इदं च सर्वाभ्यन्तरमण्डलं सर्वबाह्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३३]

दीप अनुक्रम [२५८]

नन्तरात् मण्डलात् पश्चानुपूर्व्या गण्यमानं त्र्यशीत्यधिकशततमं, प्रतिमण्डलं चाहोरात्रगणनादहोरात्रोऽपि त्र्यशीत्यधिकशततमस्तेनायमुत्तरायणस्य चरमो दिवस इत्याद्यभिधातुमाह–'एस णं दोच्चे छम्मासे' इत्यादि, एष द्वितीयः षण्मासः–प्रागुक्तयुक्तया अयनविशेषो ज्ञातव्यः, एतत् द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानं त्र्यशीत्यधिकशततमाहोरात्रत्वात्, एष आदित्यः संवत्सरः–आदित्यचारोपलक्षितः संवत्सर इति, इत्यनेन नक्षत्रादिसंवत्सरव्युदासः, एतच्चादित्यस्य संवत्सरस्य पर्यवसानं चरमायनचरमदिवसत्वात् इति समाप्तं मुहूर्त्तगतिद्वारम्, तत्सम्बद्धाच्च दृष्टिपथवक्तव्यताऽपि ॥ अथाष्टमं दिनरात्रिवृद्धिहानिद्वारं निरूप्यते–

जया णं भंते ! सूरिए सब्बब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?, गोअमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जहण्णिआ दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?, गो० ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहि अ एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिअत्ति, से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि जाव चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?, गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिअत्ति, एवं खलु एएणं उवा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ दिन-रात्रि वृद्धि-हानि प्ररुप्यते

एणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे दो दो एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं मंडले दिवसखित्तस्स निव्वुड्ढेमाणे २ रयणिखित्तस्स अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइत्ति, जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वब्भंतरमंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदिअसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसए दिवसखेत्तस्स निव्वुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइत्ति, जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?, गोअमा! तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिआ अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइत्ति, एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, जया णं भंते ! सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे भवइ केमहालिया राई भवइ ?, गो० ! अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए, से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे भवइ केमहालिया राई भवइ ?, गो० ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए इति, एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे दो दो एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं एगमेगे मंडले रयणिखेत्तस्स निवुड्ढेमाणे २ दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइत्ति, जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिराओ मंडलाओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदिअसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरइ, एस णं दोच्चे छम्मासे एस णं दुचस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे एस णं आइच्चे संवच्छरे एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते ८ (सूत्रं १३४)

'जया ण' मित्यादि, यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा को महान् आलयो–व्याप्यक्षेत्ररूपः आश्रयो यस्यासौ किंमहालयः कियानित्यर्थः दिवसो भवति, किंमहालया–कियती रात्रिर्भवति ?, भगवानाह–गौतम ! तदा उत्तमकाष्ठां प्राप्तः–उत्तमावस्थां प्राप्तः आदित्यसंवत्सरसत्कषट्षष्ट्यधिकत्रिशतदिवसमध्ये यतो नापरः कश्चिदधिक इत्यर्थः अत एवोत्कर्षकः उत्कृष्ट इत्यर्थः अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति, यत्र मण्डले यावत्प्रमाणो दिवसस्तत्र तदपेक्षया अ (शेषा) होरात्रप्रमाणा रात्रिरिति जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, सर्वस्मिन् क्षेत्रे काले वाऽहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तसङ्ख्याकत्वस्य नैयत्यात्, ननु यदा भरतेऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसस्तदा विदेहेषु जघन्या द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिस्तर्हि द्वादशमुहूर्त्तेभ्यः परं रात्रेरतिक्रान्तत्वेन षट् मुहूर्त्तान् यावत्केन कालेन भाव्यं ?, एवं भरतेऽपि वाच्यम्, उच्यते, अत्र षड्मुहूर्त्तगम्यक्षेत्रेऽवशिष्टे सति तत्र सूर्यस्योदयमानत्वेन दिवसेनेति, तच्च सूर्योदयास्तान्तरविचारणेन तन्मण्डलगतदृष्टिपथप्राप्ततादिविचारणेन च सूपपन्नं, आह–एवं सति सूर्योदयास्तमयने अनियते आपन्ने, भवतु नाम, न चैतदनार्षम्, यदुक्तम्–"जह जह समए समए पुरओ संचरइ भक्खरो गयणे। तह तह इओवि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियमा जायइ रयणीइ भावत्थो ॥ १ ॥ एवं च सइ नराणं उदयत्थमणाइं होंतऽनियताइं । सइ देसकालभेए कस्सइ किंची य दिस्सए नियमा ॥ २ ॥ सइ चेव य निद्दिट्ठो रुद्दमुहुत्तो कमेण सव्वेसिं । केसिंचीदाणिंपिअ विसयपमाणो रवी जेसिं ॥ ३ ॥" ति [यथा यथा समये समये पुरतः संचरति भास्करो गगने तथा तथेतोऽपि नियमात् जायते रजनीति भावार्थः ॥ १ ॥ एवं च सति नराणामुदयास्तमयने अनियते भवतः । सति देशकालभेदे कस्यापि किंचिद्व्यवहार्यते नियमात् ॥ २ ॥ सकृदेव च निर्दिष्टो रुद्रमुहूर्तः क्रमेण सर्वेषाम् । केषाञ्चिदिदानीमपि च विषयप्रमाणो रविर्येषां भवति ॥ ३ ॥] यत्तु सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ सूर्यमण्डलसंस्थित्यधिकारे समचतुरस्रसंस्थितिवर्णनायां युगादौ एकः सूर्यो दक्षिणपूर्वस्यां एकश्चन्द्रो दक्षिणापरस्यां द्वितीयः सूर्यः पश्चिमोत्तरस्यां द्वितीयः चन्द्रः उत्तरपूर्वस्यामित्युक्तं तत्तु दक्षिणादिभागेषु मूलोदयापेक्षया इति बोध्यं, अयं च सर्वोत्कृष्टो दिवसः पूर्वसंवत्सरस्य चरमो दिवस इति वक्तुमाह–'से णिक्खममाणे' इत्यादि, अथ निष्क्रामन् सूर्यः नवं संवत्सरमयमानः–प्रामुवन्नाददान इत्यर्थः, प्रथमे अहोरात्रेऽभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति इति, अथ दिनरात्रिवृद्ध्यपवृद्ध्यर्थमाह–'जया ण' मित्यादि, यदा भगवन्! सूर्यः अभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा भगवन्! किंमहालयः–किंप्रमाणो दिवसः किंमहालया–किंप्रमाणा रात्रिः?, भगवानाह–गौतम! तदा अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूनो दिवसो भवति, अत्र सूत्रे प्राकृतत्वात् पदव्यत्ययः, द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणा द्वाभ्यां मुहूर्त्तैक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्टिभागाभ्यामधिका रात्रिर्भवति, अत्रोपपत्तिर्यथा–अष्टादशमुहूर्त्ते दिवसे द्वादश ध्रुवमुहूर्त्ताः षट् चरमुहूर्त्ताः, ते च मण्डलानां त्र्यशीत्यधिकशतेन वर्द्धन्ते चापवर्द्धन्ते, ततोऽत्र त्रैराशिकावतारः–यदि मण्डलानां त्र्यशीत्यधिकशतेन षट् मुहूर्त्ताः वर्द्धन्ते चापवर्द्धन्ते तदा एकेन मण्डलेन किं वर्द्धते चापवर्द्धते?, स्थापना यथा १८३ । ६।१ अत्रान्त्यराशिना एककलक्षणेन मध्यराशिः षट्लक्षणो गुण्यते, गुणिते च 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति षडेव स्थितास्ते चादिराशिना भज्यन्ते अल्पत्वाद् भागं न प्रयच्छन्तीति भाज्यभाजकराश्योस्त्रिकेणापवर्त्तना कार्या, जात उपरितनो राशिर्द्विकरूपः अधस्तन एकषष्टिरूपः ६१ आगतं द्वावेकषष्टिभागौ मुहूर्त्तस्य अतो दिवसेऽपवर्द्धते रात्रौ च वर्द्धते इति, एवमग्रेऽपि करणभावना कार्या । अथाग्रेतनमण्डलगते दिनरात्रिवृद्धिहानी पृच्छन्नाह–'से णिक्खममाणे' इत्यादि, अथ निष्क्रामन् सूर्यो दक्षिणायनसत्के द्वितीये अहोरात्रे अत्र यावच्छब्दाद् 'अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता' इति ज्ञेयं, सर्वाभ्यन्तरमण्डलापेक्षया तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा किंप्रमाणो दिवसः किंप्रमाणा रात्रिर्भवति?, गौतम ! तदा अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो द्वाभ्यां पूर्वमण्डलसत्काभ्यां द्वाभ्यां च प्रस्तुतमण्डलसत्काभ्यामित्येवं चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूनो दिवसो भवति द्वादशमुहूर्त्ता उक्तप्रकारेणैव चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरधिका रात्रिर्भवति, उक्तातिरिक्तमण्डलेष्वतिदेशमाह–'एवं खलु एएण' मित्यादि, एवं मण्डलत्रयदर्शितरीत्या खलु–निश्चितमेतेन–अनन्तरोक्तेनोपायेन–प्रतिमण्डलं दिवसरात्रिसत्कमुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयवृद्धिहानिरूपेण निष्क्रामन्–दक्षिणाभिमुखं गच्छन् सूर्यस्तदनन्तरा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् द्वौ द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभागावेकैकस्मिन् मण्डले दिवसक्षेत्रस्य निवर्द्धयन् २–हापयन् २ रजनिक्षेत्रस्य तावेवाभिवर्द्धयन् २, कोऽर्थः ?–मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयगम्यं क्षेत्रं दिवसक्षेत्रे हापयन् तावदेव रजनिक्षेत्रे अभिवर्द्धयन्निति सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, प्रतिमण्डलं भागद्वयहानिवृद्धी उक्ते, असर्वमण्डलेषु भागानां हानिवृद्धिसर्वाग्रं वक्तुमाह–'जया ण' मित्यादि, यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलादित्यत्र यबूलोपे पञ्चमी वक्तव्या, तेन सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमारभ्य सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं प्रणिधाय–मर्यादीकृत्य ततः परस्माद् द्वितीयान्मण्डलादारभ्येत्यर्थः एकेन त्र्यशीतेन–त्र्यशीत्यधिकेन रात्रिन्दिवानां–अहोरात्राणां शतेन त्रीणि षट्षष्टानि–षट्षष्ट्यधिकानि मुहूर्त्तैकषष्टिभागशतानि दिवसक्षेत्रस्याभिवर्द्ध्य कोऽर्थः ?–षट्षष्ट्यधिकत्रिशतमुहूर्त्तैकषष्टिभागै-र्यावन्मात्रं क्षेत्रं गम्यते तावन्मात्रं क्षेत्रं हापयित्वा इत्यर्थः, तावदेव क्षेत्रं रजनिक्षेत्रस्याभिवर्द्ध्य चारं चरति, अयमर्थः-दक्षिणायनसत्कत्र्यशीत्यधिकमण्डलेषु प्रत्येकं हीयमानभागद्वयस्य त्र्यशीत्यधिकशतगुणनेन षट्षष्ट्यधिकत्रिशतराशिरुपप-द्यत इति तावदेव रजनिक्षेत्रे वर्द्धते इत्यर्थः, एतदेव पश्चानुपूर्व्या पृच्छति–'जया ण' मित्यादि, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, उत्त-रसूत्रे गौतम ! तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्ता–प्रकृष्टावस्थां प्राप्ता अत एवोत्कर्षिका–उत्कृष्टा, यतो नान्या प्रकर्षवती रात्रिरि-त्यर्थः, अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिर्भवति तदा त्रिंशन्मुहूर्त्तसङ्ख्यापूरणाय जघन्यको द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति, त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्य, एष चाहोरात्रो दक्षिणायनस्य चरम इत्यादि प्रज्ञापनार्थमाह–'एस ण' मित्यादि, एतच्च प्रा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुप्तार्थम्, अथात्र द्वितीयं मण्डलं पृच्छन्नाह–'जया ण' मित्यादि, यदा भगवन्! सूर्यः सर्वबाह्यानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा किंप्रमाणो दिवसो भवति, किंप्रमाणा रात्रिर्भवति ?, गौतम! अष्टादशमुहूर्त्ता द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूना रात्रिर्भवति, द्वादशमुहूर्त्तो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिको दिवसो भवति, भागयोर्न्यूनाधिकत्वकरणयुक्तिः प्राग्वत्, अथ तृतीयमण्डलप्रश्नायाह–'से पविसमाणे' त्ति प्राग्वत्, प्रश्नसूत्रमपि तथैव, उत्तरसूत्रे गौतम! तदा अष्टादशमुहूर्त्ता द्वाभ्यां पूर्वमण्डलसत्काभ्यां द्वाभ्यां च प्रस्तुतमण्डलसत्काभ्यां इत्येवं चतुर्भिः–चतुःसङ्ख्याङ्कैर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूना रात्रिर्भवति, द्वादशमुहूर्त्तश्च तथैव चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरधिको दिवसो भवति, उक्तातिरिक्तेषु मण्डलेष्वतिदेशमाह–'एवं खलु' इत्यादि, एवं–मण्डलत्रयदर्शितरीत्या एतेनानन्तरोक्तेनोपायेन प्रतिमण्डलं दिवसरात्रिसत्कमुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयवृद्धिहानिरूपेण प्रविशन् जम्बूद्वीपे मण्डलानि कुर्वन् सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २ द्वौ द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभागौ एकैकस्मिन् मण्डले रजनिक्षेत्रस्य निवर्द्धयन् २ दिवसक्षेत्रस्य तावेवाभिवर्द्धयन् २ सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, अत्रापि सर्वमण्डलेषु भागानां हानिवृद्धिसर्वाग्रं निर्दिशन्नाह–'जया ण' मित्यादि, यदा भगवन्! सूर्यः सर्वबाह्यात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा सर्वबाह्यं मण्डलं प्रणिधाय–मर्यादीकृत्य तदर्वाक्तनाद् द्वितीयान्मण्डलादारभ्येत्यर्थः एकेन त्र्यशीत्यधिकेन रात्रिन्दिवशतेन त्रीणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्षष्ट्यधिकानि मुहूर्त्तैकषष्टिभागशतानि रजनिक्षेत्रस्य निवर्द्धं २ दिवसक्षेत्रस्य तान्येवाभिवर्द्धं २ चारं चरति एष चाहो-रात्र उत्तरायणस्य चरम इत्यादि निगमयन्नाह–'एस ण' मित्यादि प्राग्वत् ॥ अथ नवमं तापक्षेत्रद्वारं–

जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किंसंठिआ तावखित्तसंठिई पण्णत्ता ?, गो ! उद्धी-मुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ तावखेत्तसंठिई पण्णत्ता अंतो संकुआ बाहिं वित्थडा अंतो वट्टा बाहिं विहुला अंतो अंकमुहसंठिआ बाहिं सगडुद्धीमुहसंठिआ उत्तरपासे णं तीसे दो बाहाओ अवट्ठिआओ हवंति पणयालीसं २ जोअणसहस्साइं आयामेणं, दुवे अ णं तीसे बाहाओ अणवट्ठिआओ हवंति, तंजहा–सव्वब्भंतरिआ चेव बाहा सव्ववाहिरिआ चेव बाहा, तीसे णं सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं णवजोअणसहस्साइं चत्तारि छलसीए जोअणसए णव य दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, एस णं भंते ! परिक्खे-वविसेसे कओ आहिएति वएज्जा ?, गोअमा ! जे णं मंदरस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस परिक्खेवविसेसे आहिएति वदेज्जा, तीसे णं सव्ववाहिरिआ बाहा लवणसमुद्दंतेणं चउणवई जोअणसहस्साइं अट्ठसट्ठे जोअण-सए चत्तारि अ दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, से णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएति वएज्जा ?, गो० ! जे णं जंबुदीवस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसभागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिएत्ति वएज्जा इति । तया णं भंते ! तावखित्ते केवइअं आयामेणं पं०?, गो० ! अट्ठहत्तरिं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तेत्तीसे जोअणसए जोअणस्स तिभागं च आयामेणं पण्णत्ते, मेरुस्स मज्झयारे जाव य लवणस्स रुंदछब्भागो । तावायामो एसो सगडुद्धीसंठिओ नियमा ॥ १ ॥" तया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तापक्षेत्र द्वारम् प्ररुप्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२६०--२६२]

णं भंते ! किंसंठिआ अंधकारसंठिई पण्णत्ता ?, गोअमा ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ अंधकारसंठिई पण्णत्ता, अंतो संकुआ बाहिं वित्थडा तं चेव जाव तीसे णं सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं छज्जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउवीसे जोअणसए छच्च दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणंति, से णं भंते! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएतिवएज्जा ?, गो० ! जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिएति वएज्जा, तीसे णं सव्वबाहिरिआ बाहा लवणसमुद्देतेणं तेसट्ठी जोअणसहस्साइं दोण्णि य पणयाले जोअणसए छच्च दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, से णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएतिवएज्जा ?, गो० ! जे णं जंबुद्दीवस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता जाव तं चेव तया णं भंते ! अंधयारे केवइए आयामेणं पं० ?, गो० ! अट्ठहत्तरिं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तेत्तीसे जोअणसए तिभागं च आयामेणं पं० । जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किंसंठिआ तावक्खित्तसंठिई पं० ?, गो० ? उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ पण्णत्ता, तं चेव सव्वं णेअव्वं णवरं णाणत्तं जं अंधयारसंठिइए पुव्ववण्णिअं पमाणं तं तावखित्तसंठिईए णेअव्वं, जं तावखित्तसंठिईए पुव्ववण्णिअं पमाणं तं अंधयारसंठिईए णेअव्वंति (सूत्रं१३५)

'जया ण'मित्यादि, यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा किंसंस्थिता–किंसंस्थाना तापक्षेत्रस्य–सूर्यातपव्याप्ताकाशखण्डस्य संस्थितिः–व्यवस्था प्रज्ञप्ता ?, सूर्यातपस्य किं संस्थानमितियावत्, भगवानाह–गौतम ! ऊर्ध्वमुखं अधोमुखत्वे तस्य वक्ष्यमाणाकारासम्भवात् यत् कलम्बुकापुष्पं–नालिकापुष्पं तत्संस्थानसंस्थिता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञप्ता मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, इदमेव संस्थानं विशिनष्टि–अन्तः–मेरुदिशि सङ्कुचिता बहिः–लवणदिशि विस्तृता, तथा अन्तः–मेरुदिशि वृत्ता–अर्द्धवलयाकारा सर्वतो वृत्तमेरुगतान् त्रीन् द्वौ वा दशभागान् अभिव्याप्यास्या व्यवस्थितत्वात्, बहिः–लवणदिशि पृथुला–मुत्कलभावेन विस्तारमुपगता, एतदेव संस्थानकथनेन स्पष्टयति–अन्तर्मेरुदिशि अङ्कः–पद्मासनोपविष्टस्योत्सङ्गरूप आसनबन्धस्तस्य मुखं–अग्रभागोऽर्द्धवलयाकारस्तस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा, बहिः–लवणदिशि शकटस्योद्धिः प्रतीता तस्याः मुखं–यतः प्रभृति निश्रेणिकाया फलकानि बध्यन्ते तच्चातिविस्तृतं भवति तत्संस्थाना, अन्तर्बहिर्भागौ प्रतीत्य यथाक्रमं सङ्कुचिता विस्तृता इति भावः आदर्शान्तरे तु 'बाहिं सोत्थिअमुहसंठिआ' पाठस्तत्र स्वस्तिकः प्रतीतस्तस्य मुखं–अग्रभागस्तस्येवातिविस्तीर्णतया संस्थितं–संस्थानं यस्याः सा तथा, अथास्याः आयाममाह–'उभओपासे ण' मित्यादि, उभयपार्श्वेन–मन्दरस्योभयोः पार्श्वयोः तस्यास्तापक्षेत्रसंस्थितेः सूर्यभेदेन द्विधाव्यवस्थितायाः प्रत्येकमेकैकभावेन द्वे बाहे–द्वे द्वे पार्श्वे अवस्थिते–अवृद्धिहानिस्वभावे सर्वमण्डलेष्वपि नियतपरिमाणे भवतः, अयमर्थः–एका भरतस्थसूर्यकृता दक्षिणपार्श्वे द्वितीया ऐरवतस्थसूर्यकृता उत्तरपार्श्वे इति द्विप्रकारा, सा च पञ्चचत्वारिंशतं २ योजनसहस्राणि आयामेन, मध्यवर्त्तिनो मेरोरारभ्य द्वयोर्दक्षिणोत्तरभागयोः पञ्चचत्वारिंशता योजनसहस्रैर्व्यवहिते जम्बूद्वीपपर्यन्ते व्यवस्थितत्वात्, एवं पूर्वापरभागयोरपि, यदा तत्र सूर्यौ तदाऽयमायामो बोध्यः, एतच्च सूत्रं जम्बूद्वीपगतायाममपेक्ष्य बोध्यं, लवणसमुद्रे तु त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२६०--२६२]

एकश्च त्रिभागो योजनस्येति, एतच्च एकत्र पिण्डितं अष्टासप्ततिः सहस्राणि योजनानां त्रीणि शतानि इत्यादिकं सूत्रकृदग्रे वक्ष्यति तत्र सोपपत्तिकं निगदिष्यते तेनात्र पुनरुक्तभिया नोक्तं। सम्प्रत्यनवस्थितबाहास्वरूपमाह–'दुवे अ ण' मित्यादि, तस्याः–एकैकस्यास्तापक्षेत्रसंस्थितेः द्वे च बाहे अनवस्थिते–अनियतपरिमाणे भवतः, प्रतिमण्डलं यथायोगं हीयमानवर्द्धमानपरिमाणत्वात्, तद्यथा—सर्वाभ्यन्तरा सर्वबाह्या चैवशब्दौ प्रत्येकमनवस्थितस्वभावद्योतनार्थौ, तत्र या मेरुपार्श्वे विष्कम्भमधिकृत्य बाहा सा सर्वाभ्यन्तरा या तु लवणदिशि जम्बूद्वीपपर्यन्तमधिकृत्य बाहा सा सर्वबाह्या, आयामश्च दक्षिणोत्तरायततया प्रतिपत्तव्यो विष्कम्भः पूर्वापरायततयेति, साम्प्रतं सर्वाभ्यन्तरापरिमाणं निर्दिशति–'तीसे ण'मित्यादि, तस्या–एकैकस्याः तापक्षेत्रसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तरा बाहा मेरुगिरिसमीपे नव योजनसहस्राणि चत्वारि षडशीत्यधिकानि योजनशतानि नव च दशभागान् योजनस्य परिक्षेपेण, अत्रोपपत्त्यर्थं प्रश्नमाह–'एस ण'मित्यादि, एषः–अनन्तरोक्तप्रमाणः परिक्षेपविशेषो–मन्दरपरिरयपरिक्षेपविशेषः कुतः–कस्मात् एवंप्रमाण आख्यातो नोनोऽधिको वा इति वदेत्?, भगवानाह–गौतम! यो मन्दरस्य परिक्षेपस्तं त्रिभिर्गुणयित्वा दशभिश्छित्त्वा–दशभिर्विभज्य एतदेव पर्यायेण व्याचष्टे–दशभिर्भागे ह्रियमाणे सति एष परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः, अयमर्थः–मेरुणा प्रतिहन्यमानः सूर्यातपो मेरुपरिधिं परिक्षिप्य स्थित इति मेरुसमीपेऽभ्यन्तरतापक्षेत्रविष्कम्भचिन्ता, अथैवं सति सत्रयोविंशतिषट्शताधिकैकत्रिंशत्सहस्रयोजनमानः सर्वोऽपि मेरुपरिधिरस्य तापक्षेत्रस्य विष्कम्भतामापद्येत इति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२६०--२६२]

चेत्, न, सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानः सूर्यो दीप्तलेश्याकत्वाज्जम्बूद्वीपचक्रवालस्य यत्र तत्र प्रदेशे तत्तच्चक्रवालक्षेत्रानुसारेण त्रीन् दशभागान् प्रकाशयति दशभागानां त्रयाणां मीलने यावत् प्रमाणं क्षेत्रं तावत्तापयतीत्यर्थः, ननु तर्हि मेरुपरिधेस्त्रिगुणीकरणं किमर्थं ? दशभागानां त्रिधागुणनेनैव चरितार्थत्वात्, सत्यं, विनेयानां सुखावबोधाय, भगवतीवृत्तौ तु श्रीअभयदेवसूरिपादा दशभागलब्धं त्रिगुणं चक्रुरिति, अथ दशभिर्भागे को हेतुरिति चेत्, उच्यते, जम्बूद्वीपचक्रवालक्षेत्रस्य त्रयो भागा मेरुदक्षिणपार्श्वे त्रयस्तस्यैवोत्तरपार्श्वे द्वौ भागौ पूर्वतो द्वौ चापरतः सर्वमीलने दश, तत्र भरतगतः सूर्यः सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चरन् त्रीन् भागान् दाक्षिणात्यान् प्रकाशयति, तदानीं च त्रीनौत्तराहान् ऐरवतगतः तदा द्वौ भागौ पूर्वतो रजनी द्वौ चापरतोऽपि, यथा यथा क्रमेण दाक्षिणात्य औत्तराहो वा सूर्यः सञ्चरति तथा तथा तयोः प्रत्येकं तापक्षेत्रमग्रतो वर्द्धते पृष्ठतश्च हीयते, एवं क्रमेण सञ्चरणशीले तापक्षेत्रे यदैकः सूर्यः पूर्वस्यां परोऽपरस्यां वर्त्तते तदा पूर्वपश्चिमदिशोः प्रत्येकं त्रीन् भागांस्तापक्षेत्रं द्वौ भागौ दक्षिणोत्तरयोः प्रत्येकं रजनीति, अथ गणितकर्मविधानं, तत्र मेरुव्यासः १०००० एषां च वर्गो दश कोट्यः १००००००० ततो दशभिर्गुणने जातं कोटिशतं १००००००००० अस्य वर्गमूलानयने लब्धान्येकत्रिंशद्योजनसहस्राणि षट् शतानि त्रयोविंशत्यधिकानि ३१६२३ एष राशिस्त्रिभिर्गुण्यते जातानि चतुर्नवतिसहस्राणि अष्टौ शतान्येकोनसप्तत्यधिकानि ७४८६९ एषां दशभिर्भागे लब्धानि नव योजनसहस्राणि चत्वारि शतानि षडशीत्यधिकानि नव च दशभागा योजनस्य । अथ सर्वबाह्यबाहापरि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२६०--२६२]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४५५॥

माणमाह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्याः—तापक्षेत्रसंस्थितेः सर्वबाह्या लवणसमुद्रस्यान्ते—समीपे चतुर्नवतिं योजनसह-स्राणि अष्टौ च षष्ट्यधिकानि योजनशतानि चतुरश्च दशभागान् योजनस्य परिक्षेपेण, अत्रोपपादकसूत्रमाह—'से णं भंते ! परिक्खेवे' इत्यादि, स भदन्त ! परिक्षेपविशेषोऽनन्तरोक्तो य इति गम्यं कुत आख्यात इति गौतमो वदेद्, वदति भगवानाह—गौतम ! यो जम्बूद्वीपपरिक्षेपस्तं परिक्षेपं त्रिभिर्गुणयित्वा दशभिश्छित्त्वा—दशभिर्विभज्य इदमेव पर्यायेणाह—दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष परिक्षेपविशेष आख्यातो मयाऽन्यैश्चासैरिति वदेत् स्वशिष्येभ्यः, इदमुक्तं भवति—तापक्षेत्रस्य परमविष्कम्भः प्रतिपिपादयिषितव्यः, स च जम्बूद्वीपपर्यन्त इति तत्परिधिः स्थाप्यः योजन ३१६२२७ क्रोश ३ धनूंषि १२८ अं १३ अर्द्धाङ्गुलं १ एतावता च योजनमेकं किञ्चिदूनमिति व्यवहारतः पूर्णं विवक्ष्यते—सांश-राशितो निरंशराशेर्गणितस्य सुकरत्वात्, ततो जातं ३१६२२८, एतत् त्रिगुणं क्रियते जातानि नव लक्षाणि अष्टच-त्वारिंशत्सहस्राणि षट् शतानि चतुरशीत्यधिकानि ९४८६८४, एषां दशभिर्भजने लब्धानि चतुर्नवतिर्योजनसहस्राणि अष्टौ शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि चत्वारश्च दशभागा योजनस्य, अत्रापि त्रिगुणकरणादौ युक्तिः प्राग्वत्, नन्वन्यत्र 'रविणो उदयत्थंतरचउणवइसहस्स पणसय छवीसा। बायाल सट्ठिभागा कक्कडसंकंतिदिअहंमि' ॥१॥ इत्युक्तं, अत्रोदयास्तान्तरं प्रकाशक्षेत्रं तापक्षेत्रमित्येकार्थाः तत्र भेदे किं निबन्धनमिति चेत्, उच्यते, सर्वाभ्यन्तरमण्डलवर्त्ती सूर्यो मन्दरदिशि जम्बूद्वीपस्य पूर्वतोऽपरतश्चाशीत्यधिकं शतं योजनानामवगाह्य चारं चरति तेनाशीत्यधिकशतयोजनानि द्विगुणानि ३६०

७वक्षस्कारे तापक्षेत्रं सू. १३५

॥४५५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य वर्गदशगुणवर्गमूलानयने जातानि ११३८ एतच्च द्वीपपरिधितः ३१६२२७ रूपात् शोध्यते ततः स्थितं ३१५०८९, अस्य दशभिर्भागे आगतं ३१५०८ अवशिष्टभागाः १०, अनयोरंशच्छेदयोः षड्भिर्गुणने जातं ६०, अथास्य राशेस्त्रिगुणने सम्पद्यते यथोक्तराशिः, तथाहि–९४५२६ ६०/६० इदं च सूक्ष्मेक्षिकया दर्शितं, न चैतत् स्वमत्युत्प्रेक्षितमिति भाव्यं, श्रीमुनिचन्द्रसूरिकृतसूर्यमंडलविचारेऽस्य सुविचारितत्वात्, प्रस्तुते च स्थूलनयाश्रयणेन द्वीपपर्यन्तमात्रविवक्षणेन सूत्रोक्तं प्रमाणं सम्पद्यते, द्वीपोदधिपरिधेरेव सर्वत्राप्यागमे दशांशकल्पनादिश्रवणात्, अनेन परिधितः परतो लवणोदषड्भागं यावत् प्राप्यमाणे तापक्षेत्रे तच्चक्रवालक्षेत्रानुसारेण तत्र विष्कम्भसम्भवात् परमविष्कम्भस्तत्र कथनीय इति निरस्तं, अयमेव चतुर्नवतिसहस्रपञ्चशतादियोजनादिको राशिर्बहुबहुश्रुतैः प्रमाणीकृतः करणसंवादित्वात्, तथाहि–स्वस्वमण्डलपरिधिः षष्ट्या भक्तो मुहूर्त्तगतिं प्रयच्छति, सा च दिवसार्द्धगतमुहूर्त्तराशिना गुणिता चक्षुःस्पर्शं सा चोदयतः सूर्यस्याग्रतो यावानस्तमयतश्च पृष्ठतोऽपि तावानिति द्विगुणितः सन् तापक्षेत्रं भवति, एतच्च चक्षुःस्पर्शद्वारे सुव्यक्तं निरूपितमस्ति, इदं च तापक्षेत्रकरणं सर्वबाह्यमण्डलसत्कतापक्षेत्रबाह्यबाहानिरूपणे विभावयिष्यत इति नात्रोदाह्रियते, यदुक्तं चेत् दशभागान् प्रकाशयति इति, तत्र भागः षण्मुहूर्त्ताक्रमणीयक्षेत्रप्रमाणः, कथं ?, सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चरति सूर्ये दिवसोऽष्टादशमुहूर्त्तमानः नवमुहूर्त्ताक्रमणीये च क्षेत्रे स्थितः सूर्यो दृश्यो भवति तत एतावत्प्रमाणं सूर्यात् प्राक् तापक्षेत्रं तावच्च अपरतोऽपि, इत्थं चाष्टादशमुहूर्त्ताक्रमणीयक्षेत्रप्रमाणमेकस्य सूर्यस्य तापक्षेत्रं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२६०--२६२]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४५६॥

तच्च किल दशभागत्रयात्मकं ततो भवत्येकस्मिन् दशभागे षण्मुहूर्त्ताक्रमणीयक्षेत्रप्रमाणतेति । सम्प्रति सामस्त्येनाऽऽया-मतस्तापक्षेत्रपरिमाणं पिपृच्छिषुराह—'तया ण'मित्यादि, यदा भगवन् ! एतावांस्तापक्षेत्रपरमविष्कम्भ इति गम्यं तदा भगवंस्तापक्षेत्रं सामस्त्येन दक्षिणोत्तरायततया कियदायामेन प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! अष्टसप्ततिं योजन-सहस्राणि त्रीणि च त्रयस्त्रिंशदधिकानि योजनशतानि योजनस्यैकस्य त्रिभागं च यावदायामेन प्रज्ञप्तं, पञ्चचत्वारिंश-द्योजनसहस्राणि द्वीपगतानि, त्रयस्त्रिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि च योजनशतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि उपरि च योजन-त्रिभागयुक्तानि लवणगतानि, द्वयोः सङ्कलने यथोक्तं मानं, इदं च दक्षिणोत्तरत आयामपरिमाणमवस्थितं न क्वापि मण्डलचारे विपरिवर्त्तेतेति, एतमेवार्थं सामस्त्येन द्रढयति—'मेरुस्स मज्झयारे' इत्यादि, इह मेरुणा सूर्यप्रकाशः प्रतिह-न्यत इत्येकेषां मतं नेत्यपरेषां, तत्राद्यानां मते इयं सम्मतिरूपा गाथा, तस्मिन् पक्षे एवं व्याख्येया—करणं कारो मध्ये कारो मध्यकारः—मध्ये करणं मेरोस्तस्मिन् सति, कोऽर्थः ?—चक्रवालक्षेत्रत्वात्तापक्षेत्रस्य मेरुं मध्ये कृत्वा यावल्लवणस्य रुंदस्य—नि-र्देशस्य भावप्रधानत्वाद्रुन्दतायाः—विस्तारस्य षड्भागः—षष्ठो भागः एतावत्प्रमाणः तापस्य—तापक्षेत्रस्यायामः, तत्र मेरोरा-रभ्य जम्बूद्वीपपर्यन्तं यावत्पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि तथा लवणविस्तारो द्वे योजनलक्षे तयोः षष्ठो भागस्त्रयस्त्रिंशद्यो-जनसहस्राणि त्रीणि योजनशतानि त्रयस्त्रिंशद्योजनानि एको योजनत्रिभाग इति रूपः तत उभयमीलने यथोक्तप्रमाणः, एष च नियमात् शकटोद्धिसंस्थितः, शकटोद्धिसंस्थानोऽन्तः सङ्कुचितो बहिर्विस्तृत इति, अथ येषां मेरुणा न सूर्य-

७वक्षस्कारे तापक्षेत्रं सू. १३५

॥४५६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशः प्रतिहन्यते इति मतं तेषामर्थान्तरसूचनायेयं गाथा तत्पक्षे चैवं व्याख्येया, मेरोर्मध्यभागो–मन्दरार्धं यावच्च लवणरुन्दतायाष्ठभागः एतेन मन्दरार्द्धसत्कपञ्चयोजनसहस्राणि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते जायते च त्र्यशीतिसहस्रयोजनानि त्रीणि योजनशतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि एकश्च योजनत्रिभागः ८३३३३ ⅓, अनेन च मन्दरगतकन्दरादीनामप्यन्तः प्रकाशः स्यादिति लभ्यते, यत्त्वस्मिन् व्याख्याने श्रीमलयगिरिपादैः सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ "युक्तं चैतत् सम्भावनया तापक्षेत्रायामपरिमाणमन्यथा जम्बूद्वीपमध्ये तापक्षेत्रस्य पंचचत्वारिंशद्योजनसहस्रपरिमाणाभ्युपगमे यथा सूर्यो बहिर्निष्क्रामति तथा तत्प्रतिबद्धं तापक्षेत्रमपि, ततो यदा सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा सर्वथा मन्दरसमीपे प्रकाशो न प्राप्नोति, अथ च तदापि तत्र मन्दरपरिरयपरिक्षेपेणाविशेषं परिमाणमग्रे वक्ष्यते, तस्मात्पादलिप्तसूरिव्याख्यानमभ्युपगन्तव्यमिती"त्युक्तं, तत्र तत्रभवत्पादानां गम्भीरमाशयं न विद्मः, बाह्यमण्डलस्थेऽपि सूर्ये इयत्प्रमाणस्य तापक्षेत्रायामस्यावस्थितत्वेन प्रतिपादनात्, उक्ता सर्वाभ्यन्तरे मण्डले तापक्षेत्रसंस्थितिः, सम्प्रति प्रकाशपृष्ठलग्नत्वेन तद्विपर्ययभूतत्वेन च सर्वाभ्यन्तरमण्डलेऽन्धकारसंस्थितिं पृच्छति–'तया णं भन्ते !'इत्यादि, तदा–सर्वाभ्यन्तरमण्डलचरणकाले कर्कसंक्रान्तिदिने किंसंस्थाना अन्धकारसंस्थितिः प्रज्ञप्ता ?, यद्यपि प्रकाशतमसोः सहावस्थायित्वविरोधात् समानकालीनत्वासंभवः तथापि अवशिष्टेषु चतुर्षु जम्बूद्वीपचक्रवालदशभागेषु सम्भावनया पृच्छत आशयान्नोक्तविरोधः, ननु आलोकाभावरूपस्य तमसः संस्थानासंभवेन कुतस्तत्पृच्छौचितीमंचति ?, उच्यते, नीलं शीतं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२६०--२६२]

बहलं तम इत्यादिपुद्गलधर्माणामभ्रान्तसार्वजनीनव्यवहारसिद्धत्वेनास्य पौद्गलिकत्वे सिद्धे संस्थानस्यापि सिद्धेः, यथा चास्य पौद्गलिकत्वं तथाऽन्यत्र पूर्वाचार्यैः सुचर्चितत्वान्नात्र विस्तरभिया चर्च्यते इति, ऊर्ध्वमुखकलम्बुकापुष्पसंस्थानसंस्थिता अन्धकारसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, अन्तः संकुचिता बहिर्विस्तृतेत्यादि तदेव–तापक्षेत्रसंस्थित्यधिकारोक्तमेव ग्राह्यं, कियत्पर्यन्तमित्याह—यावत्तस्याः–अन्धकारसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तरिका बाहा मन्दरपर्वतान्ते षड् योजनसहस्राणि त्रीणि चतुर्विंशत्यधिकानि योजनशतानि षट् च दशभागान् योजनस्य परिक्षेपेण, अत्रोपपत्तिं सूत्रकृदेवाह—'से ण'मिति, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, उत्तरसूत्रे यो मेरुपरिक्षेपः स त्रयोविंशतिषट्शताधिकैकत्रिंशद्योजनसहस्रमानस्तं परिक्षेपं द्वाभ्यां गुणयित्वा, सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्थे सूर्ये तापक्षेत्रसत्कानां त्रयाणां भागानामपान्तराले रजनिक्षेत्रस्य दशभागद्वयरूप मानत्वात् दशभिर्विभज्य–दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेदेतद्भगवन्! गौतमः स्वशिष्येभ्यः, तथाहि–३१६२३ एतद् द्वाभ्यां गुण्यते जातानि त्रिषष्टिसहस्राणि द्वे शते षट्चत्वारिंशदधिके ६३२४६ एषां दशभिर्भागे लब्धं यथोक्तं मानं। अथ बाहामाह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्याः–अन्धकारसंस्थितेः सर्वबाह्यबाहा पूर्वतोऽपरतश्च परमविष्कम्भो लवणसमुद्रान्ते त्रिषष्टिं योजनसहस्राणि द्वे च पंचचत्वारिंशदधिके योजनशते षट् च दशभागान् योजनस्य परिक्षेपेणेति, अत्रोपपत्तिं सूत्रकृदेवाह–'से ण'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं जम्बूद्वीपपरिक्षेपः ३१६२२८ तं परिक्षेपं प्रागुक्तहेतुना द्वाभ्यां गुणयित्वा दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेत्, अथास्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२६०--२६२]

अवस्थितबाहामाह--'तया ण'मित्यादि, तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारकाले अन्धकारं कियदायामेन प्रज्ञप्तम्?, गौतम! अष्टसप्ततिं योजनसहस्राणि त्रीणि च त्रयस्त्रिंशदधिकानि योजनशतानि योजनत्रिभागं चैकं, अवस्थिततापक्षेत्रसंस्थित्यायाम इवायमपि बोध्यः, तेन मन्दरार्द्धसत्कपंचसहस्रयोजनान्यधिकानि मन्तव्यानि सूर्यप्रकाशाभाववति क्षेत्रे स्वत एवान्धकारप्रसरणात्, कन्दरादौ तथा प्रत्यक्षदर्शनात्, सूत्रेऽविवक्षितान्यपि व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्तिरिति दर्शितानि। अथ पश्चानुपूर्व्या तापक्षेत्रसंस्थितिं पृच्छति—'जया ण'मित्यादि, यदा भगवन्! सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा किंसंस्थानसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता?, गौतम! ऊर्ध्वमुखकलम्बुकापुष्पसंस्थानसंस्थिता प्रज्ञप्ता, तदेव–अभ्यन्तरमण्डलगततापक्षेत्रसंस्थितिसत्कमेव सर्वमवस्थितानवस्थितबाहादिकं नेतव्यं, नवरमिदं नानात्वं–विशेषः यदन्धकारसंस्थितेः पूर्वं–सर्वाभ्यन्तरमंडलगततापक्षेत्रसंस्थितिप्रकरणे वर्णितं ६३२४५$\frac{६}{६०}$ इत्येवंरूपं प्रमाणं तत्तापक्षेत्रसंस्थितेः प्रमाणं नेतव्यं, द्वीपपरिधिदशभागसत्कभागद्वयप्रमाणत्वात्, यत्तापक्षेत्रसंस्थितेः पूर्ववर्णितम् ९४८६८$\frac{४}{६०}$ इत्येवंरूपं प्रमाणं तदन्धकारसंस्थितेर्नेतव्यं द्वीपपरिधिदशभागसत्कभागत्रयप्रमाणत्वात्, यदत्र तापक्षेत्रस्याल्पत्वं तमस्श्चानल्पत्वं तत्र मंदलेश्याकत्वं हेतुरिति, एवं सर्वाभ्यन्तरमण्डलेऽभ्यन्तरबाहाविष्कम्भे यत्तापक्षेत्रपरिमाणं ९४८६ $\frac{६}{६०}$ इत्येवंरूपं तदत्रान्धकारसंस्थितेर्ज्ञेयं, यच्च तत्रैव विष्कम्भेऽन्धकारसंस्थितेः ६३२४ $\frac{६}{६०}$ इत्येवं तापक्षेत्रस्यात्र मन्तव्यं, ननु इदं सर्वबाह्यमंडलसत्कतापक्षेत्रप्ररूपणं, यदि तन्मंडलपरिधौ ३१८३१५ रूपे षष्टिभक्ते लब्धा ५३०५ रूपा मुहूर्त्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३५] + गाथा

दीप अनुक्रम [२६०--२६२]

गतिः तदा च सर्वजघन्यो दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणोऽतो द्वादशभिः सा गुण्यते तथा च कृते ६३६६३ इत्येवंरूपो राशिः स्यात्, यदिवोक्तपरिधिर्द्विगुणितो दशभिर्भज्यते तदाप्ययमेव राशिर्द्विधाकरणरीतिलब्धस्तत्किमेतस्मात् सूत्रोक्तराशिर्विभिद्यते?, उच्यते, सूत्रकारेण द्वीपपरिध्यपेक्षयैव करणरीतेर्दर्श्यमानत्वान्नात्र दोषः, अभ्यन्तरमण्डले परिधिर्यथा न न्यूनीक्रियते तथा बाह्यमंडले नाधिकीक्रियते तत्र विवक्षैव हेतुरिति ॥ सम्प्रति सूर्याधिकारादेतत्सम्बन्धिनं दूरासन्नादिदर्शनरूपं विचारं वक्तुं दशमं द्वारमाह—

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति मज्झंतिअमुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति ?, हंता गो० ! तं चेव जाव दीसंति, जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि अ मज्झंतिअमुहुत्तंसि अ अत्थमणमुहुत्तंसि अ सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं ?, हंता तं चेव जाव उच्चत्तेणं, जइ णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि अ मज्झं० अत्थ० सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं, कम्हा णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति०, गोयमा ! लेसापडिघाएणं उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति इति लेसाहितावेणं मज्झंतिअमुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति लेसापडिघाएणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति, एवं खलु गोअमा ! तं चेव जाव दीसंति १० (सूत्रं १३६)। जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे सूरिआ किं तीअं खेत्तं गच्छंति पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छन्ति अणागयं खेत्तं गच्छन्ति ?, गो० ! णो तीअं खेत्तं गच्छन्ति पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छन्ति णो अणागयं खेत्तं गच्छन्तिति, तं भन्ते ! किं पुट्ठं गच्छन्ति जाव नियमा छद्दिसिंति, एवं ओभासेंति, तं भन्ते !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सूर्यस्य दूर-आसन्नादि दर्शनरूपं वक्तव्यता लिख्यते

किं पुट्ठं ओभासेंति ? एवं आहारपयाइं णेअव्वाइं पुट्ठोगाढमणंतरअणुमहआदिविसयाणुपुव्वी अ जाव णिअमा छद्दिसिं, एवं उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति ११ (सूत्रं १३७) जम्बुद्दीवे णं भन्ते! दीवे सूरिआणं किं तीते खित्ते किरिआ कज्जइ पडुप्पण्णे० अणागए० ?, गो! णो तीए खित्ते किरिआ कज्जइ पडुप्पण्णे कज्जइ णो अणागए, सा भन्ते! किं पुट्ठा कज्जइ०?, गोअमा! पुट्ठा० णो अणापुट्ठा कज्जइ जाव णिअमा छद्दिसिं (सूत्रं १३८)

जम्बूद्वीपे द्वीपे भदन्त ! सूर्यौ उद्गमनमुहूर्त्ते–उदयोपलक्षिते मुहूर्त्ते एवमस्तमनमुहूर्त्ते, सूत्रे यकारलोप आर्षत्वात्, दूरे च–द्रष्टृस्थानापेक्षया विप्रकृष्टे मूले च–द्रष्टृप्रतीत्यपेक्षया आसन्ने दृश्यते, द्रष्टारो हि स्वरूपतः सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः समधिकैर्व्यवहितमुद्गमनास्तमनयोः सूर्यं पश्यन्ति, आसन्नं पुनर्मन्यन्ते, विप्रकृष्टं सन्तमपि न प्रतिपद्यन्ते, 'मध्यान्तिकमुहूर्त्त'इति मध्यो–मध्यमोऽन्तो–विभागो गमनस्य दिवसस्य वा मध्यान्तः स यस्य मुहूर्त्तस्यास्ति स मध्यान्तिकः स चासौ मुहूर्त्तश्चेति मध्यान्तिको–मध्याह्नमुहूर्त्त इत्यर्थः, तत्र मूले चासन्ने देशे द्रष्टृस्थानापेक्षया दूरे च–विप्रकृष्टे देशे द्रष्टृप्रतीत्यपेक्षया सूर्यौ दृश्येते, द्रष्टा हि मध्याह्ने उदयास्तमयनदर्शनापेक्षया आसन्नं रविं पश्यति, योजनशताष्टकेनैव तदाऽस्य व्यवहितत्वात् मन्यते पुनरुदयास्तमयनप्रतीत्यपेक्षया व्यवहितं इति, अत्र सर्वत्र काक्वा प्रश्नोऽवसेयः, अत्र भगवानाह––तदेव यद्भवताऽनन्तरमेव प्रश्नविषयीकृतं तत्तथैवेत्यर्थः यावद् दृश्यते इति, अत्र चर्मदृशां जायमाना प्रतीतिर्मा ज्ञानदृशां प्रतीत्या सह विसंवदत्विति संवादाय पुनर्गौतमः पृच्छति—'जम्बुद्दीवे ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे उद्गमनमुहूर्त्ते च मध्यान्तिकमुहूर्त्ते च अस्तमयनमुहूर्त्ते च अत्र चशब्दा वाशब्दार्थाः सूर्यौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३६--१३८]

दीप अनुक्रम [२६३--२६५]

सर्वत्र–उक्तकालेषु समौ उच्चत्वेन, अत्रापि काकुपाठात् प्रश्नावगतिः, भगवानाह––तदेव यद्भवता मां प्रति पृष्टं यावदुच्चत्वेनेति, सर्वत्र–उद्गमनमुहूर्त्तादिषु समौ समव्यवधानावुच्चत्वेन समभूतलापेक्षयाऽष्टौ योजनशतानीतिकृत्वा, न हि सतीं जनप्रतीतिं वयमपलपाम इति भगवदुक्तमेवानुवदन्नत्र विप्रतिपत्तिबीजं प्रष्टुमाह––'जइ ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं स्पष्टं, उत्तरसूत्रे गौतम! लेश्यायाः–सूर्यमंडलगततेजसः प्रतिघातेन दूरतरत्वादुद्गमनदेशस्य तदप्रसरणेनेत्यर्थः उद्गमनमुहूर्त्ते दूरे च मूले च दृश्यते, लेश्याप्रतिघाते हि सुखदृश्यत्वेन स्वभावेन दूरस्थोऽपि सूर्य आसन्नप्रतीतिं जनयति, एवमस्तमयनमुहूर्त्तेऽपि व्याख्येयं, द्वयोः समगमकत्वात्, मध्यान्तिकमुहूर्त्ते तु लेश्याया अभितापेन–प्रतापेन सर्वतस्तेजःप्रतापेनेत्यर्थः, मूले च दूरे च दृश्येते, मध्याह्ने ह्यासन्नोऽपि सूर्यस्तीव्रतेजसा दुर्दर्शत्वेन दूरप्रतीतिं जनयति, एवमेवासन्नत्वेन दीप्तलेश्याकत्वं दिनवृद्धिघर्म्मादयो भावा दूरतरत्वेन मन्दलेश्याकत्वं दिनहानिशीतादयश्च वाच्याः, उद्गमनास्तमयनादीनि च ज्योतिष्काणां गतिप्रवृत्ततया जायन्ते इति तेषां गमनप्रश्नायैकादशं द्वारमाह––'जम्बुदीवे ण'-मित्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सूर्यौ किमतीतं–गतिविषयीकृतं क्षेत्रं गच्छतः–अतिक्रामतः उत प्रत्युत्पन्नं–वर्त्तमानं गतिविषयीक्रियमाणं उत अनागतं–गतिविषयीकरिष्यमाणं, एतेन इह च यदाकाशखण्डं सूर्यः स्वतेजसा व्याप्नोति तत्क्षेत्रमुच्यते तेनास्यातीतेत्यादिव्यवहारविषयत्वं नोपपद्यते अनादिनिधनत्वादिति शङ्का निरस्ता, भगवानाह––गौतम! नोशब्दस्य निषेधार्थत्वान्नातीतं क्षेत्रं गच्छतः, अतीतक्रियाविषयीकृते वर्त्तमानक्रियाया एवासम्भवात्, प्रत्युत्पन्नं गच्छतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्त्तमानक्रियाविषये वर्त्तमानक्रियायाः सम्भवात्, नो अनागतं अनागतक्रियाविषयेऽपि तदसम्भवात्, अत्र प्रस्तावाद् गतिविषयं क्षेत्रं कीदक् स्यादिति प्रष्टुमाह—'तं भन्ते! किं पुट्ठे'इत्यादि, अत्र यावत्पदसंग्रहोऽयं—पुट्ठं गच्छंति, गोअमा! पुट्ठं गच्छंति, णो अपुट्ठं गच्छन्ति, तं भन्ते! किं ओगाढं गच्छन्ति अणोगाढं गच्छन्ति?, गोअमा! ओगाढं गच्छन्ति, णो अणोगाढं गच्छन्ति, तं भन्ते! किं अणंतरोगाढं गच्छन्ति, परंपरोगाढं गच्छन्ति?, गोअमा! अणंतरोगाढं गच्छन्ति णो परंपरोगाढं गच्छन्ति, तं भन्ते! किं अणुं गच्छंति बायरं गच्छंति?, गोअमा! अणुंपि गच्छंति बायरंपि गच्छंति, तं भन्ते! किं उद्धं गच्छंति अहे गच्छंति तिरियं गच्छन्ति?, गोअमा! उद्धंपि गच्छन्ति तिरिअंपि गच्छन्ति अहेवि गच्छन्ति, तं भन्ते! किं आइं गच्छंति मज्झे गच्छंति पज्जवसाणे गच्छंति?, गोअमा! आइंपि गच्छंति मज्झेवि गच्छंति पज्जवसाणेवि गच्छंति, तं भन्ते! किं सविसयं गच्छंति, अविसयं गच्छंति?, गोअमा! सविसयं गच्छंति, णो अविसयं गच्छंति, तं भन्ते! किं आणुपुविं गच्छंति अणाणुपुविं गच्छंति?, गो०! आणुपुविं गच्छंति णो अणापुविं गच्छंति, तं भन्ते! किं एगदिसिं गच्छंति छद्दिसिं गच्छंति?, गो०! नियमा छद्दिसिं गच्छंति'त्ति, अत्र व्याख्या—तद् भदन्त! क्षेत्रं किं स्पृष्टं—सूर्यबिम्बेन सह स्पर्शमागतं गच्छतः—अतिक्रामतः उतास्पृष्टं, अत्र पृच्छकस्यायमाशयः—गम्यमानं हि क्षेत्रं किञ्चित्स्पृष्टमतिक्रम्यते यथाऽपवरकक्षेत्रं किंचिच्चास्पृष्टं यथा देहलीक्षेत्रमतोऽत्र कः प्रकार इति, भगवानाह—स्पृष्टं गच्छतः नास्पृष्टं, अत्र सूर्यबिम्बेन सह स्पर्शनं सूर्यबिम्बावगाहक्षेत्राद्बहिरपि सम्भवति स्पर्शनाया अवगाहना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तोऽधिकविषयत्वात्, ततः प्रश्नयति–तद्भदन्त ! स्पृष्टं क्षेत्रं अवगाढं–सूर्यबिम्बेनाश्रयीकृतं अधिष्ठितमित्यर्थः उतानवगाढं तेनानाश्रयीकृतं नाधिष्ठितमित्यर्थः, भगवानाह––गौतम ! अवगाढं क्षेत्रं गच्छतः नानवगाढं, आश्रितस्यैव त्यजनयोगात्, अथ यद्भदन्त! अवगाढं तदनन्तरावगाढं–अव्यवधानेनाश्रयीकृतं उत परम्परावगाढं–व्यवधानेनाश्रयीकृतं ?, भगवानाह—गौतम! अनन्तरावगाढं न पुनः परम्परावगाढं, किमुक्तं भवति?–यस्मिन्नाकाशखण्डे यो मण्डलावयवोऽव्यवधानेनावगाढः स मण्डलावयवस्तमेवाकाशखण्डं गच्छति न पुनरपरमण्डलावयवावगाढं तस्य व्यवहितत्वेन परम्परावगाढत्वात्, तच्चाल्पमनल्पमपि स्यादित्याह–तद्भदन्त! अणुं गच्छतः बादरं वा?, गौतम! अण्वपि सर्वाभ्यन्तरमण्डलक्षेत्रापेक्षया बादरमपि सर्वबाह्यमण्डलक्षेत्रापेक्षया, तत्तच्चक्रवालक्षेत्रानुसारेण गमनसम्भवात्, गमनं च ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गतित्रयेऽपि सम्भवेदिति प्रश्नयति—तद्भदन्त! क्षेत्रमूर्ध्वमधस्तिर्यग्वा गच्छतः?, गौतम! ऊर्ध्वमपि तिर्यगप्यधोऽपि, ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्त्वं च योजनैकषष्टिभागरूपचतुर्विंशतिभागप्रमाणोत्सेधापेक्षया द्रष्टव्यं, अन्यथा 'जाव नियमा छद्दिसिं' इति चरमसूत्रेण सह विरोधः स्यात्, इदं च व्याख्यानं प्रज्ञापनोपाङ्गतैकादशभाषापदाष्टाविंशतितमाहारपदगतोर्ध्वाधस्तिर्यग्विषयकनिर्वचनसूत्रव्याख्यानुसारेण कृतमिति बोध्यं, गमनं च क्रिया सा च बहुसामयिकत्वान्त्रिकालनिर्वर्त्तनीया स्यादित्यादिमध्यादिप्रश्नः, तद्भदन्त! किमादौ गच्छतः किं मध्ये उत पर्यवसाने वा ?, भगवानाह—गौतम! षष्टिमुहूर्त्तप्रमाणस्य मण्डलसंक्रमकालस्यादावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽपि वा गच्छतः, उक्तप्रकारत्रयेण मंडल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३६--१३८]

दीप अनुक्रम [२६३--२६५]

कालसमापनात्, अथ तद्भदन्त! स्वविषयं–स्वोचितं क्षेत्रं गच्छतः उत अविषयं वा स्वानुचितमित्यर्थः, गौतम! स्वविषयं स्पृष्टावगाढनिरन्तरावगाढस्वरूपं गच्छतः न अविषयं–अस्पृष्टानवगाढपरम्परावगाढक्षेत्राणां गमनायोग्यत्वात्, तद्भदन्त! आनुपूर्व्या–क्रमेण यथासन्नं गच्छतः उत अनानुपूर्व्या–क्रमेणानासन्नमित्यर्थः, सूत्रे द्वितीया तृतीयार्थे, गौतम! आनुपूर्व्या गच्छतः नानानुपूर्व्या व्यवस्थाहानेः, प्रागुक्तमेव दिक्प्रश्नं व्यक्त्या आह—तद्भदन्त! किमेकदिग्विषयकं क्षेत्रं गच्छतः यावत् षड्दिग्विषयकं?, गौतम! नियमात् षड्दिशि, तत्र पूर्वादिषु तिर्यग्दिक्षु उदितः सन् स्फुटमेव गच्छन् दृश्यते, ऊर्ध्वाधोदिग्गमनं च यथोपपद्यते तथा प्राग्दर्शितं । सम्प्रत्येतदतिदेशेनावभासनादिसूत्राण्याह—'एवं ओभासेंति'इत्यादि, 'एव'मिति गमनसूत्रप्रकारेण अवभासयतः–ईषदुद्योतयतः, यथा स्थूरतरमेव दृश्यते, तमेव प्रकारमीषद्दर्शयति–तद्भदन्त! क्षेत्रं स्पृष्टं–सूर्यस्तेजसा व्याप्तं अवभासयतः उतास्पृष्टं?, भगवानाह—स्पृष्टं नास्पृष्टं, दीपादिभास्वरद्रव्याणां प्रभाया गृहादिस्पर्शपूर्वकमेवावभासकत्वदर्शनात्, एवं–स्पृष्टपदरीत्या आहारपदानि–चतुर्थोपाङ्गगताष्टाविंशतितमपदे आहारग्रहणविषयकानि पदानि–द्वाराणि नेतव्यानि, तद्यथा—'पुट्ठो'इत्यादि, प्रथमतः स्पृष्टविषयं सूत्रं, ततोऽवगाढसूत्रं ततोऽणुबादरसूत्रं तत ऊर्ध्वाधःप्रभृतिसूत्रं, तत आइं इति उपलक्षणमेतत् आदिमध्यावसानसूत्रं ततो विषयसूत्रं तदनन्तरमानुपूर्वीसूत्रं, ततो यावत् नियमात् षड्दिशीति सूत्रं, अत्र यथासम्भवं विपक्षसूत्राण्युपलक्षणाद् ज्ञेयानि, अत्र चोर्ध्वादिदिग्भावना सूत्रकृत् स्वयमेव वक्ष्यति, एवमुद्द्योतयतो–भृशं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशयतः यथा स्थूलमेव दृश्यते, तापयतः–अपनीतशीतं कुरुतः, यथा सूक्ष्मं पिपीलिकादि दृश्यते तथा कुरुतः, प्रभासयतः–अतितापयोगादविशेषतोऽपनीतशीतं कुरुतो यथा सूक्ष्मतरं दृश्यते, उक्तमेवार्थं शिष्यहिताय प्रकारान्तरेण प्रश्नयितुं द्वादशद्वारमाह—'जम्बुद्दीवे ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे द्वयोः सूर्ययोः किमतीते क्षेत्रे–पूर्वोक्तस्वरूपे क्रिया–अवभासनादिका क्रियते, कर्मकर्त्तरिप्रयोगोऽयं तेन भवतीत्यर्थः, प्रत्युत्पन्ने अनागते वा?, भगवानाह—गौतम! नोऽतीते क्षेत्रे क्रिया क्रियते, प्रत्युत्पन्ने क्रियते, नो अनागते, व्याख्यानं प्राग्वत्, सा क्रिया भगवन्! किं स्पृष्टा क्रियते उतास्पृष्टा क्रियते?, गौतम! स्पृष्टा तेजसा स्पर्शनं स्पृष्टं भावे क्तप्रत्ययविधानात् तद्योगाद्या सा स्पृष्टा उच्यते, कोऽर्थः?–सूर्यतेजसा क्षेत्रस्पर्शनेऽवभासनमुद्योतनं तापनं प्रभासनं चेत्यादिका क्रिया स्यादिति, अथवा स्पृष्टात्–स्पर्शनादिति पञ्चमीपरतया व्याख्येयं न अस्पृष्टात् क्रियते, अत्र यावत्पदात् आहारपदानि ग्राह्याणि, तत्रेयं सूत्रपद्धतिः-से णं भन्ते! किं ओगाढा अणोगाढा?, ओगाढा णो अणोगाढा, अत्रापि भावे क्तप्रत्ययविधानादवगाढं–अवगाहनं क्षेत्रे तेजःपुद्गलानामवस्थानं तद्योगाद्या साऽवगाढा क्रिया, एममनन्तरावगाढपरम्परावगाढसूत्रं, 'सा णं भन्ते! अणू किज्जइ बायरा किज्जइ?, गोअमा! अणूवि बायरावि'त्ति, सा क्रिया अवभासनादिका किमणुर्वा बादरा वा क्रियते?, गौतम! अणुरपि–सर्वाभ्यन्तरमण्डलक्षेत्रावभासनापेक्षया बादराऽपि–सर्वबाह्यमण्डलक्षेत्रावभासनापेक्षया, ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्सूत्रविभावनां सूत्रकृदनन्तरमेव करिष्यति, 'सा णं भन्ते! किं आइं किज्जइ मज्झे किज्जइ पज्जवसाणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३६--१३८]

दीप अनुक्रम [२६३--२६५]

किज्जइ?, गोअमा! आइंपि किज्जइ मज्झेवि किज्जइ पज्जवसाणेवि किज्जइ'त्ति गमनसूत्र इवात्रापि भावना, एवं विषयसूत्रमानुपूर्वीसूत्रं षड्दिक्सूत्रं च ज्ञेयमिति। अथ त्रयोदशद्वारमाह—

जम्बुद्दीवे णं भन्ते! दीवे सूरिआ केवइअं खेत्तं उद्धं तवयन्ति अहे तिरिअं च?, गोअमा! एगं जोअणसयं उद्धं तवयन्ति अट्ठारससयजोअणाइं अहे तवयन्ति सीआलीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेवट्ठे जोअणसए एगवीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स तिरिअं तवयन्तित्ति १३ (सूत्रं १३९)। अंतो णं भन्ते! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिमसूरिअगहगणणक्खत्ततारारूवा णं भन्ते! देवा किं उद्धोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठिईआ गइरइआ गइसमावण्णगा?, गोअमा! अंतो णं माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चन्दिमसूरिअ जाव तारारूवे ते णं देवा णो उद्धोववण्णगा णो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा णो चारट्ठिईआ गइरइआ गइसमावण्णगा उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिएहिं जोअणसाहस्सिएहिं तावखेत्तेहिं साहस्सिआहिं वेउव्विआहिं बाहिराहिं परिसाहिं महयाहयणट्टगीअवाइअतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुप्पवाइअरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा महया उक्किट्ठिसीहणायबोलकलकलरवेणं अच्छं पव्वयरायं पयाहिणावत्तमण्डलचारं मेरुं अणुपरिअट्टंति १४ (सूत्रं १४०)

'जम्बुद्वीवे ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे गौतम! ऊर्ध्वमेकं योजनशतं तापयतः, स्वविमानस्योपरि योजनशतप्रमाणस्यैव तापक्षेत्रस्य भावात्, अष्टादशशतयोजनान्यधस्तापयतः, कथं?, सूर्याभ्यामष्टासु योजनशतेष्वधोगतेषु भूतलं, तस्माच्च योजनसहस्रे अधोग्रामाः स्युस्तांश्च यावत्तापनात्, सप्तचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि इत्यादि प्रमाणं क्षेत्रं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यक् तापयतः, एतच्च सर्वोत्कृष्टदिवसचक्षुःस्पर्शापेक्षया बोध्यं, तिर्यग्दिक्कथनेन पूर्वपश्चिमयोरेवेदं ग्राह्यं, उत्तरतस्तु १८० न्यून ४५ योजनसहस्राणि याम्यतः पुनर्द्वीपे १८० योजनानि, लवणे तु योजनानि ३३ सहस्राणि ३ शतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि योजनत्रिभागयुतानीति ॥ अथ मनुष्यक्षेत्रवर्त्तिज्योतिष्कस्वरूपं प्रष्टुं चतुर्दशद्वारमाह—'अंतो णं भन्ते'इत्यादि, अन्तर्मध्ये भदन्त! मानुषोत्तरस्य मनुष्येभ्य उत्तरः—अग्रवर्ती एनमवधीकृत्य मनुष्याणामुत्पत्तिविपत्ति-सिद्धिसम्पत्तिप्रभृतिभावात् अथवा मनुष्याणामुत्तरो—विद्यादिशक्त्यभावेऽनुल्लंघनीयो मानुषोत्तरस्तस्य पर्वतस्य ये चन्द्र-सूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपज्योतिष्काः ते भदन्त! अत्रैकस्मिन्नेव प्रश्ने यद्भदन्तेति भगवत्सम्बोधनं पुनश्चके तत्पृच्छ-कस्य भगवन्नामोच्चारेऽतिप्रीतिमत्त्वात् देवाः किमूर्ध्वोपपन्नाः—सौधर्मादिभ्यो द्वादशभ्यः कल्पेभ्य ऊर्ध्वं ग्रैवेयकानु-त्तरविमानेषूपपन्नाः—उत्पन्नाः कल्पातीता इत्यर्थः कल्पोपपन्नाः—सौधर्मादिदेवलोकोत्पन्नाः विमानेषु—ज्योतिःसम्बन्धिषु उपपन्नाः चारो—मण्डलगत्या परिभ्रमणं तमुपपन्ना—आश्रितवन्तः उत चारस्य—यथोक्तस्वरूपस्य स्थितिः—अभावो येषां ते चारस्थितिका अपगतचारा इत्यर्थः गतौ रतिः—आसक्तिः प्रीतिर्येषां ते गतिरतिकाः, अनेन गतौ रतिमात्रमुक्तं, सम्प्रति साक्षाद् गतिं प्रश्नयति—गतिसमापन्ना—गतियुक्ताः?, भगवानाह—गौतम! अन्तर्मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य ये चन्द्र-सूर्यग्रहणनक्षत्रतारारूपज्योतिष्कास्ते देवा नोर्ध्वोपपन्नाः नो कल्पोपपन्नाः विमानोपपन्नाः चारोपपन्नाः नो चारस्थितिकाः अत एव गतिरतिकाः गतिसमायुक्ताः, ऊर्ध्वमुखकलम्बुकापुष्पसंस्थानसंस्थितैरिति प्राग्वत्, योजनसाहस्रिकैः—अनेकयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनसहस्रप्रमाणैस्तापक्षेत्रैः, अत्रेत्थंभावे तृतीया, तेनेत्थंभूतैस्तैर्मेरुं परिवर्त्तन्त इति क्रियायोगः, कोऽर्थः ?–उक्तस्वरूपाणि तापक्षेत्राणि कुर्वन्तो जम्बूद्वीपगतं मेरुं परितो भ्रमन्ति, तापक्षेत्रविशेषणं चन्द्रसूर्याणामेव, नतु नक्षत्रादीनां, यथासम्भवं विशेषणानां नियोज्यत्वात्, अथैतान् साधारण्येन विशेषयन्नाह—साहस्रिकाभिः–अनेकसहस्रसङ्ख्याकाभिः वैकुर्विकाभिः–विकुर्वितनानारूपधारिणीभिर्बाह्याभिः–आभियोगिककर्मकारिणीभिः, नाट्यगानवादनादिकर्मप्रवणत्वात्, न तु तृतीयपर्षद्रूपाभिः, पर्षद्भिः–देवसमूहरूपाभिः कर्तृभूताभिः, बहुवचनं चात्र नाट्यादिगणापेक्षया, महता प्रकारेणाहतानि–भृशं ताडितानि नाट्ये गीते वादित्रे च–वादनरूपे त्रिविधेऽपि सङ्गीते इत्यर्थः, तन्त्रीतलतालरूपत्रुटितानि शेषं प्राग्वत्, तथा स्वभावतो गतिरतिकैः–बाह्यपर्षदन्तर्गतैर्देवैर्वेगेन गच्छत्सु विमानेषूत्कृष्टो यः सिंहनादो मुच्यते यौ च बोलकलकलौ क्रियेते, तत्र बोलो नाम मुखे हस्तं दत्त्वा महता शब्देन पूत्करणं, कलकलश्च व्याकुलशब्दसमूहस्तद्रवेण महता २ समुद्ररवभूतमिव कुर्वाणा मेरुमिति योगः, किंविशिष्टमित्याह–अच्छं–अतीवनिर्मलं जाम्बूनदमयत्वात् रत्नबहुलत्वाच्च पर्वतराजं–पर्वतेन्द्रं 'प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलचार'मिति प्रकर्षेण सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमतां चन्द्रादीनां दक्षिण एव मेरुर्भवति यस्मिन्नावर्त्तने–मण्डलपरिभ्रमणरूपे स प्रदक्षिणः प्रदक्षिणः आवर्त्तो येषां मण्डलानां तानि तथा तेषु यथा चारो भवति तथा क्रियाविशेषणं तेन प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलं चारं यथा स्यात्तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरुं परिवर्त्तन्ते' इति योज्यं, अयमर्थः–चन्द्रादयः सर्वेऽपि समयक्षेत्रवर्त्तिनो मेरुं परितः प्रदक्षिणावर्त्तमंडलचारेण भ्रमन्तीति । अथ पञ्चदशमं द्वारमाह—

तेसि णं भन्ते! देवाणं जाहे इंदे चुए भवइ से कहमियाणिं पकरेंति?, गो०! ताहे चत्तारि पंच वा सामाणिआ देवा तं ठाणं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति जाव तत्थ अण्णे इंदे उववण्णे भवइ । इंदट्ठाणे णं भंते! केवइअं कालं उववाएणं विरहिए?, गो०! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं छम्मासे उववाएणं विरहिए । बहिआ णं भन्ते! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम जाव तारारूवा तं चेव णेअव्वं णाणत्तं विमाणोववण्णगा णो चारोववण्णगा चारठिईआ णो गइरइआ णो गइसमावण्णगा पक्किट्ठगसंठाणसंठिएहिं जोअणसयसाहस्सिएहिं तावखित्तेहिं सयसाहस्सिआहिं वेउव्विआहिं बाहिराहिं परिसाहिं महयाहयणट्ट जाव भुंजमाणा सुहलेसा मन्दलेसा मन्दातवलेसा चित्तंतरलेसा अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं कूडाविव ठाणठिआ सव्वओ समन्ता ते पएसे ओभासंति उज्जोवेंति पभासेन्तित्ति । तेसि णं भन्ते! देवाणं जाहे इंदे चुए से कहमियाणिं पकरेन्ति जाव जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा इति १५ (सूत्रं १४१)

'तेसि ण'मित्यादि, तेषां भदन्त! ज्योतिष्कदेवानां यदा इन्द्रश्च्यवते तदा ते देवा इदानीं–इन्द्रविरहकाले कथं प्रकुर्वन्ति?, भगवानाह—गौतम! तदा चत्वारः पञ्च वा सामानिका देवाः संभूय एकबुद्धितया भूत्वेत्यर्थः तत्स्थानं–इन्द्रस्थानमुपसम्पद्य विहरन्ति–तदिन्द्रस्थानं परिपालयन्ति, कियन्तं कालमिति चेदत आह—यावदन्यस्तत्र इन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपपन्नः--उत्पन्नो भवति । इदानीमिन्द्रविरहकालं प्रश्नयन्नाह—'इंदट्ठाणे ण'मित्यादि, इन्द्रस्थानं भदन्त! कियन्तं कालमुपपातेन--इन्द्रोत्पादेन विरहितं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनैकं समयं यावत् उत्कर्षेण षण्मासान् यावत्ततः परमवश्यमन्यस्येन्द्रस्योत्पादसम्भवात् इति । सम्प्रति समयक्षेत्रबहिर्वर्त्तिज्योतिष्काणां स्वरूपं पृच्छति—'बहिआ ण'मित्यादि, बहिस्ताद् भगवन्! मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य ये चन्द्रादयो देवास्ते किमूर्ध्वोपपन्ना इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनसूत्रे तु नोर्ध्वोपपन्नाः, नापि कल्पोपपन्नाः, किन्तु विमानोपपन्नाः तथा नो चारोपपन्नाः नो चारयुक्ताः, किन्तु चारस्थितिकाः, अत एव नो गतिरतयो नापि गतिसमापन्नकाः, पक्केष्टकासंस्थानसंस्थितैर्योजनशतसाहस्रिकैस्तापक्षेत्रैस्तान् प्रदेशान् अवभासयन्तीत्यादिक्रियायोगः, पक्केष्टकासंस्थानं चात्र यथा पक्केष्टका आयामतो दीर्घा भवति विस्तरतस्तु स्तोका चतुरस्रा च, तेषामपि मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्वर्त्तिनां चन्द्रसूर्याणामातपक्षेत्राणि आयामतोऽनेकयोजनलक्षप्रमाणानि विष्कम्भत एकलक्षयोजनप्रमाणानि, इयमत्र भावना—मानुषोत्तरपर्वतात् योजनलक्षार्द्धातिक्रमे करणविभावनोक्तकरणानुसारेण प्रथमा चन्द्रसूर्यपङ्क्तिस्ततो योजनलक्षातिक्रमे द्वितीया पंक्तिस्तेन प्रथमपंक्तिगतचन्द्रसूर्याणामेतावांस्तापक्षेत्रस्यायामः विस्तारश्च, एकसूर्यादपरः सूर्यो लक्षयोजनातिक्रमे तेन लक्षयोजनप्रमाणः, इयं च भावना प्रथमपंक्त्यपेक्षया बोद्धव्या, एवमग्रेऽपि भाव्यं, 'सयसाहस्सिएहिं'इत्यादि प्राग्वत्, कथंभूता इत्याह--सुखलेश्याः, एतच्च विशेषणं चन्द्रान् प्रति, तेन ते नातिशीततेजसः मनुष्यलोके इव शीतकालादौ न एकान्ततः शीतर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्मय इत्यर्थः, मन्दलेश्या एतच्च सूर्यान् प्रति, तेन ते नात्युष्णतेजसः मनुष्यलोके इव निदाघसमये न एकान्तत उष्ण-रश्मय इत्यर्थः, एतदेव व्याचष्टे–मन्दातपलेश्या–मन्दा–नात्युष्णस्वभावा आतपरूपा लेश्या–रश्मिसंघातो येषां ते तथा, तथा च चित्रान्तरलेश्याः–चित्रमन्तरं लेश्या च येषां ते तथा, भावार्थश्चास्य चित्रमन्तरं सूर्याणां चन्द्रान्तरितत्वात्, चित्रलेश्या चन्द्रमसां शीतरश्मित्वात् सूर्याणामुष्णरश्मित्वात्, काभिरवभासयन्तीत्याह–अन्योऽन्यसमवगाढाभिः–परस्परं संश्लिष्टाभिर्लेश्याभिः, तथाहि—चन्द्रमसां सूर्याणां च प्रत्येकं लेश्या योजनशतसहस्रप्रमाणविस्ताराश्चन्द्रसूर्याणां च सूचीपंक्त्या व्यवस्थितानां परस्परमन्तरं पञ्चाशद्योजनसहस्राणि ततश्चन्द्रप्रभामिश्राः सूर्यप्रभाः सूर्यप्रभा-मिश्राश्चन्द्रप्रभाः, इत्थं चन्द्रसूर्यप्रभाणां मिश्रीभावः एषां स्थिरत्वदृष्टान्तेन द्योतयति–कूटानीव–पर्वतोपरिव्यवस्थि-तशिखराणीव स्थानस्थिताः–सदैवैकत्र स्थाने स्थिताः, सर्वतः समन्तात्, तान् प्रदेशान्–स्वस्वप्रत्यासन्नान् अवभा-सयन्ति उद्योतयन्ति तापयन्ति प्रभासयन्तीत्यादि प्राग्वत्। एषामपीन्द्राभावे व्यवस्थां प्रश्रयन्नाह—'तेसि णं भन्ते ! देवाण'मित्यादि प्राग्वत् । इति कृता पञ्चदशानुयोगद्वारैः सूर्यप्ररूपणा, अथ चन्द्रवक्तव्यमाह–तत्र सप्तानुयोगद्वा-राणि, मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणा १ मण्डलक्षेत्रप्ररूपणा २ प्रतिमण्डलमन्तरप्ररूपणा ३ मण्डलायामादिमानं ४ मन्दरम-धिकृत्य प्रथमादिमण्डलाबाधा ५ सर्वाभ्यन्तरादिमण्डलायामादि ६ मुहूर्त्तगतिः ७। तत्रादौ मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणां पृच्छति–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कइ णं भन्ते! चंदमण्डला पं० ?, गो० ! पण्णरस चंदमण्डला पण्णत्ता ! जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ चन्दमण्डला पं० ?, गो० ! जम्बुद्दीवे २ असीयं जोअणसयं ओगाहित्ता पंच चंदमण्डला पण्णत्ता, लवणे णं भन्ते! पुच्छा, गो० ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं दस चंदमण्डला पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं जम्बुद्दीवे दीवे लवणे य समुद्दे पण्णरस चंदमण्डला भवन्तीतिमक्खायं १ (सूत्रं१४२)। सव्वब्भंतराओ णं भन्ते ! चंदमंडलाओ णं केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले पं० ?, गोअमा ! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले पण्णत्ते २ (सूत्रं १४३) चंदमंडलस्स णं भन्ते! चंदमंडलस्स केवइआए अबाहाए अंतरे पं० ?, गो० ! पणतीसं २ जोअणाइं तीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए चंदमंडलस्स चंदमंडलस्स अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ३ (सूत्रं १४४) चंदमंडले णं भन्ते! केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! छप्पण्णं एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयामविक्खम्भेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अट्ठावीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स बाहल्लेणं ४ (सूत्रं १४५)

कति भदन्त! चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम! पञ्चदश चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि । अथैषां मध्ये कति द्वीपे कति लवणे इति व्यक्त्यर्थं पृच्छति—जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे कियदवगाह्य कियन्ति चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम! जम्बूद्वीपे २ अशीत्यधिकं योजनशतमवगाह्य पञ्च चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि, अथ लवणसमुद्रे भदन्त ! प्रश्नः, गौतम! लवणसमुद्रे त्रिंशदधिकानि त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य अत्रान्तरे दश चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमेव सपूर्वापरेण जम्बूद्वीपे द्वीपे लवणसमुद्रे पञ्चदश चन्द्रमण्डलानि भवन्तीति आख्यातमिति । अथ मण्डलक्षेत्रप्ररूपणां प्रश्नयन्नाह—'सव्वब्भंतराओ ण'मित्यादि, सर्वाभ्यन्तरादू भदन्त! चन्द्रमण्डलात् कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तं?, किमुक्तं भवति?—चन्द्रमण्डलैः सर्वाभ्यन्तरादिभिः सर्वबाह्यान्तैर्व्याप्तमाकाशं तन्मण्डलक्षेत्रं, तत्र च चक्रवालतया विष्कम्भः पञ्च योजनशतानि दशोत्तराणि अष्टचत्वारिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य ५१० ४८/६१ इदं च व्याख्यातोऽधिकं बोध्यं, तथाहि—चन्द्रस्य मण्डलानि पञ्चदश चन्द्रबिम्बस्य च विष्कम्भः एकषष्टिभागात्मकयोजनस्य षट्पञ्चाशद्भागाः तेन ते ५६ पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते जातं ८४० तत एतेषां योजनानयनार्थं एकषष्ट्या भागे हृते लब्धानि त्रयोदश योजनानि शेषाः सप्तचत्वारिंशत्, तथा पञ्चदशानां मण्डलानामन्तराणि चतुर्दश, एकैकस्यान्तरस्य प्रमाणं पञ्चत्रिंशद्योजनानि त्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तधाच्छिन्नस्य सत्काश्चत्वारो भागाः, ततः पञ्चत्रिंशच्चतुर्दशभिर्गुण्यन्ते जातानि चत्वारि योजनशतानि नवत्यधिकानि येऽपि च त्रिंशदेकषष्टिभागास्तेऽपि चतुर्दशभिर्गुण्यन्ते जातानि चत्वारि शतानि विंशत्यधिकानि, अयं च राशिरेकषष्टिभागात्मकस्तेन एकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धानि षट् योजनानि, एषु पूर्वराशौ प्रक्षिप्तेषु जातानि ४९६ योजनानि, शेषाश्चतुःपञ्चाशदेकषष्टिभागास्तिष्ठन्ति, ये च एकस्यैकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागास्तेऽपि चतुर्दशभिर्गुण्यन्ते जाताः षट्पञ्चाशत् तेषां सप्तभिर्भागे हृते लब्धा अष्टावेकषष्टिभागास्तेऽनन्तरोक्तचतुःपञ्चाशति प्रक्षिप्यन्ते जाता द्वाषष्टिः ६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४२--१४५]

दीप अनुक्रम [२६९--२७२]

तत्रैकषष्टिभागैर्योजनं लब्धं तच्च योजनराशौ प्रक्षिप्यते एकश्चैकषष्टिभागः शेषः ४९७ योजन $\frac{१}{६१}$, इदं च मण्डलान्तरक्षेत्रं, योऽपि च बिम्बक्षेत्रराशिस्त्रयोदशयोजनसप्तचत्वारिंशदेकषष्टिभागात्मकः सोऽपि मण्डलान्तरराशौ प्रक्षिप्यते जातं योजनानि ५१०, यश्च पूर्वोद्धरितः एकः एकषष्टिभागः स सप्तचत्वारिंशति प्रक्षिप्यते जातं ४८ एकषष्टिभागाः, ननु पञ्चदशसु मण्डलेषु चतुर्दशान्तरालसम्भवाच्चतुर्दशभिर्भजनं युक्तिमत्, सप्तचत्वारो भागा इति कथं सङ्गच्छते?, उच्यते, मण्डलान्तरक्षेत्रराशेः ४९७ $\frac{१}{६१}$ मण्डलान्तरैश्चतुर्दशभिर्भजने लब्धानि ३५ योजनानि, उद्धरितस्य योजनराशेरेकषष्ट्या गुणने मूलराशिसत्कैकषष्टिभागप्रक्षेपे च जातं ४२८ एषां चतुर्दशभिर्भजने आगतोऽंशराशिः ३० शेषा अष्टौ तेषां चतुर्दशभिर्भागाप्राप्तौ लाघवार्थं द्वाभ्यामपवर्त्तने जातं भाज्यभाजकराश्योः $\frac{४}{७}$ इति सुस्थं ॥ सम्प्रति मण्डलान्तरप्ररूपणाप्रश्नमाह—' चंदमंडलस्स णं'इत्यादि, चन्द्रमण्डलस्य भदन्त! चन्द्रमण्डलस्य कियत्या अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! पञ्चत्रिंशत्पञ्चत्रिंशद्योजनानि त्रिंशच्चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा चतुरश्चूर्णिकाभागान्, एतच्च चन्द्रमण्डलस्य २ अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तं, अत्र सप्त चत्वारश्चूर्णिका यथा समायान्ति तथाऽनन्तरं व्याख्यातं, सम्प्रति मण्डलायामादिमानद्वारम्—'चन्दमण्डले णं भन्ते! केवइयं आयाम' इत्यादि, चन्द्रमण्डलं भगवन्! कियदायामविष्कम्भाभ्यां कियत्परिक्षेपेण कियद्बाहल्येन—उच्चैस्त्वेन प्रज्ञप्तम्?, गौतम! षट्पञ्चाशतमेकषष्टिभागान् योजनस्यायामविष्कम्भाभ्यां, एकस्य योजनस्य एकषष्टिभागीकृतस्य यावत्प्रमाणा भागा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४२--१४५]

दीप अनुक्रम [२६९--२७२]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४६६॥

स्तावत्प्रमाणषट्पञ्चाशद्भागप्रमाणमित्यर्थः, तत्त्रिगुणं सविशेषं–साधिकं परिक्षेपेण करणरीत्या द्वे योजने पञ्चपञ्चाशद्भागाः साधिका इत्यर्थः, अष्टाविंशतिमेकषष्टिभागान् योजनस्य बाहल्येन । अथ मन्दरमधिकृत्य प्रथमादिमण्डलाबाधाप्रश्नमाह—

जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए आबाहाए सव्वब्भंतरए चन्दमंडले पण्णत्ते?, गोअमा! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअणसए अबाहाए सव्वब्भन्तरे चन्दमंडले पण्णत्ते, जम्बुद्दीवे २ मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए अब्भंतराणन्तरे चन्दमंडले पण्णत्ते?, गो०! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य छप्पण्णे जोअणसए पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए अबाहाए अब्भंतराणन्तरे चन्दमंडले पण्णत्ते, जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए अब्भंतरतच्चे मंडले पं०?, गो०! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य बाणउए जोअणसए एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं अबाहाए अब्भंतरतच्चे मंडले पण्णत्ते, एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे तयाणन्तराओ मंडलाओ तयाणन्तरं मंडलं संकममाणे २ छत्तीसं छत्तीसं जोअणाइं पणवीसं चं एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मंडले अबाहाए वुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरे चंदमंडले पं०?, पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले प०, जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स

७वक्षस्कारे प्रथमादि-मण्डला-बाधा सू. १४६

॥४६६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४६]

दीप अनुक्रम [२७३]

पव्वयस्स केवइआए अबाहाए बाहिराणन्तरे चंदमंडले पण्णत्ते?, गो० ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेणउए जोअणसए पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता तिण्णि चुण्णिआभाए अबाहाए बाहिराणन्तरे चंदमंडले पण्णत्ते, जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमंडले पं० ?, गो० ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ सत्तावण्णे जोअणसए णव य एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमंडले पं० । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चंदे तयाणन्तराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ छत्तीसं २ जोअणाइं पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मंडले अबाहाए वुड्ढि णिव्वुड्ढेमाणे २ सब्बब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ५ (सूत्रं १४६)

'जम्बुद्दीवे २' इत्यादि, जम्बूद्वीपे २ भगवन्! मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वाभ्यन्तरं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तं?, गौतम! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट च विंशत्यधिकानि योजनशतान्यबाधया सर्वाभ्यन्तरं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तमिति, उपपत्तिस्तु प्राक् सूर्यवक्तव्यतायां दर्शिता, द्वितीयमण्डलाबाधां प्रश्नयन्नाह–'जम्बुद्दीवे २' इत्यादि, जम्बूद्वीपे २ भगवन्! मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया अभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्टौ च षट्पञ्चाशदधिकानि योजनशतानि पञ्चविंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा चतुरश्चूर्णिकाभागान् अबाधया सर्वाभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं चन्द्रमण्डलं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञप्तं, अत्रोपपत्तिः प्रागुक्तेऽभ्यन्तरमण्डलगतराशौ मण्डलान्तरक्षेत्रमण्डलविष्कम्भराश्योः प्रक्षेपे जायते, तथाहि–४४८२० रूपः पूर्वमण्डलयोजनराशिः, अस्मिन् मण्डलान्तरक्षेत्रयोजनानि ३५, तथाऽन्तरसत्कत्रिंशदेकषष्टिभागानां मण्डलविष्कम्भसत्कषट्पञ्चाशदेकषष्टिभागानां च परस्परमीलने जातं ८६ एकषष्ट्या भागे चागतं योजनमेकं तच्च पूर्वोक्तायां पञ्चत्रिंशति प्रक्षिप्यते जाता षट्त्रिंशद्योजनानां शेषाः पञ्चविंशतिरेकषष्टिभागाश्चत्वारश्चूर्णिकाभागा इति, अथ तृतीयं–'जम्बुद्दीवे २' इत्यादि, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, उत्तरसूत्रे द्वितीयमण्डलसत्कराशौ ३६ योजनानि २५ एकषष्टिभागाश्चत्वारश्चूर्णिकाभागा इत्यस्य प्रक्षेपे जातं यथोक्तं, अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह—'एवं खलु'इत्यादि, एवमुक्तरीत्या मण्डलत्रयदर्शितयेत्यर्थः, एतेनोपायेन–प्रत्यहोरात्रमेकैकमण्डलमोचनरूपेण निष्क्रामन्–लवणाभिमुखं मण्डलानि कुर्वन् चन्द्रस्तदनन्तराद्–विवक्षितात्पूर्वस्मान्मण्डलाद्विवक्षितमुत्तरमण्डलं संक्रामन् २ षट्त्रिंशद्योजनानि, अत्र योजनसंख्यागतवीप्सा भागसंख्यापदेष्वपि ग्राह्या, तेन पञ्चविंशतिं २ एकषष्टिभागान् योजनस्य एकं चैकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा चतुरश्चूर्णिकाभागान् एकैकस्मिन् मण्डले अबाधाया वृद्धिं अभिवर्द्धयन् २ सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति, अथ पश्चानुपूर्व्यापि व्याख्यानाङ्गमित्यन्त्यमण्डलान्मण्डलाबाधां पृच्छन्नाह—'जम्बुद्दीवे'त्ति, जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवन्! मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तं?, गौतम! पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि च त्रिंशदधिकानि योजनशतान्यबाधया सर्वबाह्यं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्, उपपत्तिस्तु प्राग्वत्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्वितीयमण्डलं पृच्छन्नाह–'जम्बुद्दीवे'इत्यादि, जम्बूद्वीपे भगवन्! मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वबाह्यानन्तरं द्वितीयं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तं ?, गौतम! पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि द्वे च त्रिनवत्यधिके योजनशते पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं चैकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा त्रींश्चूर्णिकाभागानबाधया सर्वबाह्यानन्तरं द्वितीयं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तं, सर्वबाह्यमण्डलराशेः षट्त्रिंशद्योजनानि पञ्चविंशतिश्च योजनैकषष्टिभागा एकस्यैकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागाः पात्यन्ते जायते यथोक्तराशिः, अथ तृतीयमण्डलपृच्छा–'जम्बुद्दीवे २'इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि द्वे च सप्तपञ्चाशदधिके योजनशते नव च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा षट् चूर्णिकाभागान् अबाधया बाह्यतृतीयं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तं, उपपत्तिस्तु बाह्यद्वितीयमण्डलराशेस्तमेव षट्त्रिंशद्योजनादिकं राशिं पातयित्वा यथोक्तं मानमानेतव्यं। अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह—'एवं खलु' इत्यादि व्यक्तम्, नवरं अबाधायाः वृद्धिं निवर्द्धयन् २ हापयन् २ इत्यर्थः॥ अथ सर्वाभ्यन्तरादिमण्डलायामाद्याह—

सव्वब्भंतरे णं भन्ते! चंदमंडले केवइअं आयामविक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गो०! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्चत्ताले जोअणसए आयामविक्खम्भेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं अउणाणउतिं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पं०, अब्भन्तराणंतरे सा चेव पुच्छा, गो०! णवणउइं जोअणसहस्साइं सत्त य बारसुत्तरे जोअणसए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [२७४]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४६८॥

एगावण्णं च एगट्ठिभागे जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं आयामविक्खम्भेणं तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं पन्नर सहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, अब्भन्तरतच्चे णं जाव पं० ?, गो० ! णवणउइं जोअणसहस्साइं सत्त य पच्चासीए जोअणसए इगतालीसं च एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता दोण्णि अ चुण्णि-आभाए आयामविक्खम्भेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं पंच य इगुणापण्णे जोअणसए किंचिवि-सेसाहिए परिक्खेवेणंति, एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे जाव संकममाणे २ बावत्तरिं २ जोअणाइं एगावण्णं च एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं च चुण्णिआभागं एगमेगे मंडले विक्खम्भवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २ दो दो तीसाइं जोअणसयाइं परिरयवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । सव्वबाहिरए णं भन्ते! चन्दमं-डले केवइअं आयामविक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो० ! एगं जोयणसयसहस्सं छव्वसट्ठे जोअणसए आयामवि-क्खम्भेणं तिण्णि अ जोसणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं, बाहिराणन्तरे णं पुच्छा, गो० ! एगं जोअणयसहस्सं पच्च सत्तासीए जोअणसए णव य एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए आयामविक्खम्भेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं पंचासीइं च जोअणाइं परिक्खेवेणं, बाहिर-तच्चे णं भन्ते! चन्दमण्डले० पं० ?, गो० ! एगं जोअणसयसहस्सं पंच य चउद्दसुत्तरे जोअणसए एगूणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता पंच चुण्णिआभाए आयामविक्खम्भेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं सत्तरस सहस्साइं अट्ठ य पणपण्णे जोअणसए परिक्खेवेणं, एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चन्दे जाव संकममाणे २ बावत्तरिं २ जोअणाइं

७वक्षस्कारे मण्डला-यामादि सू. १४७

॥४६८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [२७४]

एगावण्णं च एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं एगमेगे मण्डले विक्खम्भवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे २ दो दो तीसाइं जोअणसयाइं परिरयवुड्ढिं णिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ६ (सूत्रं १४७)

सर्वाभ्यन्तरं भदन्त! चन्द्रमण्डलं कियदायामविष्कम्भाभ्यां कियत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम्?, गौतम! नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च चत्वारिंशदधिकानि योजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां त्रीणि च योजनलक्षाणि पञ्चदश योजनसहस्राण्येकोननवतिं च योजनानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तं, उपपत्तिस्तूभयत्रापि सूर्यमण्डलाधिकारे दर्शिता, अथ द्वितीयं–'अब्भंतराणन्तरे'इत्यादि, अभ्यन्तरानन्तरे सैव पृच्छा या सर्वाभ्यन्तरे मण्डले, उत्तरसूत्रे–गौतम! नवनवतिं योजनसहस्राणि सप्त च द्वादशोत्तराणि योजनशतानि एकपञ्चाशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकं चैकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा एकं चूर्णिकाभागमायामविष्कम्भाभ्यां, तथाहि–एकतश्चन्द्रमा द्वितीये मण्डले संक्रामन् षट्त्रिंशद्योजनानि पञ्चविंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकस्य चैकषष्टिभागस्य सप्तधा छिन्नस्य सत्कान् चतुरो भागान् विमुच्य संक्रामति अपरतोऽपि तावन्त्येव योजनानि विमुच्य संक्रामति उभयमीलने जातं द्वासप्ततियोजनानि एकपञ्चाशदेकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य एकषष्टिभागस्य सप्तधा छिन्नस्य सत्क एको भागो द्वितीयमण्डले विष्कम्भायामचिंतायामधिकत्वेन प्राप्यत इति, तच्च पूर्वमण्डलराशौ प्रक्षिप्यते जायते यथोक्तं द्वितीयमण्डलायामविष्कम्भमानं, त्रीणि योजनशतसहस्राणि त्रीणि चैकोनविंशत्यधिकानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण द्वितीयं मण्डलं

श्रीजम्ब. ७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञप्तं, उपपत्तिस्तु प्रथममण्डलपरिरये द्वासप्ततियोजनादीनां परिरये त्रिंशदधिकद्वियोजनशतरूपे प्रक्षिप्ते सति यथोक्तं मानं, अथ तृतीयं—'अब्भंतरतच्चे ण'मित्यादि, अभ्यन्ततरतृतीये चन्द्रमण्डले यावत्पदात् 'चन्दमण्डले केवइअं आयामविक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेण'मिति ग्राह्यं, उत्तरसूत्रे गौतम! नवनवतिं योजनसहस्राणि सप्त च पञ्चाशीत्यधिकानि योजनशतानि एकचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा द्वौ च चूर्णिकाभागावायामविष्कम्भाभ्यां, अथ द्वितीयमण्डलगतराशौ द्वासप्ततिं योजनान्येकपञ्चाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च चूर्णिकाभागं प्रक्षिप्य यथोक्तं मानमानेतव्यं, त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश योजनसहस्राणि पञ्च चैकोनपञ्चाशदधिकानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, इह पूर्वमण्डलपरिरयराशौ द्वे योजनशते त्रिंशदधिके प्रक्षिप्योपपत्तिः कार्या, अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह—'एवं खलु'इत्यादि, पूर्ववत्, निष्क्रामंश्चन्द्रो यावत्पदात् 'तयाणन्तराओ मंडलाओ तयाणन्तरं मण्डल'मितिग्राह्यं, संक्रामन् २ द्वासप्ततिं २ योजनानि योजनसंख्यापदगतावीप्सा भागसंख्यापदेष्वपि ग्राह्या, तेनैकपञ्चाशतं एकपञ्चाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा एकमेकं चूर्णिकाभागमेकैकस्मिन् मण्डले विष्कम्भवृद्धिमभिवर्द्धयन् २ द्वे द्वे त्रिंशदधिके योजनशते परिरयवृद्धिमभिवर्द्धयन् २ सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरतीति । सम्प्रति पश्चानुपूर्व्या पृच्छति—'सव्ववाहिरए ण'मित्यादि, सर्वबाह्यं भदन्त! चन्द्रमण्डलं कियदायामविष्कम्भाभ्यां कियत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम्?, गौतम! एकं योजनलक्षं षट् षष्टानि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [२७४]

षष्ट्यधिकानि योजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्या, उपपत्तिस्तु जम्बूद्वीपो लक्षं उभयोः प्रत्येकं त्रीणि योजनशतानि त्रिंशदधिकानि उभयमीलने योजनानां षट् शतानि षष्ट्यधिकानीति, त्रीणि च योजनलक्षाणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि च पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि परिक्षेपेण, अत्रोपपत्तिः जम्बूद्वीपपरिधौ षष्ट्यधिकषट्शतपरिधौ प्रक्षिप्ते भवति यथोक्तं मानं, अथ द्वितीयं 'बाहिराणन्तर'मित्यादि, बाह्यानन्तरं द्वितीयं मण्डलमित्यर्थः पृच्छति प्रश्नालापकस्तथैव, उत्तरसूत्रे गौतम! एकं योजनलक्षं पञ्च सप्ताशीत्यधिकानि योजनशतानि नव चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा षट् चूर्णिकाभागान् आयामविष्कम्भाभ्यां, अत्रोपपत्तिः पूर्वराशेर्द्वासप्ततिं योजनान्येकपञ्चाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तधा छिन्नस्य एकं भागमपनीय कर्त्तव्या, त्रीणि योजनलक्षाणि अष्टादश सहस्राणि पञ्चाशीतिं योजनानि परिक्षेपेण, सर्वबाह्यमण्डलपरिधेर्द्वे शते त्रिंशदधिके योजनानामपनयने यथोक्तमानं, अथ तृतीयं 'बाहिरतच्चे ण'मित्यादि, बाह्यतृतीयं भदन्त! चन्द्रमण्डलं यावच्छब्दात् सर्वं प्रश्नसूत्रं ज्ञेयं, उत्तरसूत्रे–गौतम! एकं योजनलक्षं पञ्च चतुर्दशोत्तराणि योजनशतानि एकोनविंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं चैकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा पञ्च चूर्णिकाभागान् आयामविष्कम्भाभ्यां, अत्र सङ्गतिस्तु द्वितीयमण्डलराशेः द्वासप्ततियोजनादिकं राशिमपनीय कार्या, त्रीणि योजनलक्षाणि सप्तदश सहस्राणि अष्ट च पञ्चपञ्चाशदधिकानि योजनशतानि परिक्षेपेण, उपपत्तिस्तु पूर्वराशेर्द्वे शते त्रिंशदधिके अपनीय कार्या, अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह—'एवं खलु'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि, पूर्ववत्, प्रविशंश्चन्द्रो यावत्पदात् 'तयाणन्तराओ मण्डलाओ तयाणन्तरं मण्डल'मिति ग्राह्यं, संक्रामन् २ द्वासप्ततिं २ योजनानि एकपञ्चाशतमेकपंचाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं एकषष्टिभागं च सप्तधा छित्त्वा एकमेकं चूर्णिकाभागमेकैकस्मिन् मण्डले विष्कम्भवृद्धिं निवर्द्धयन् २ हापयन् २ इत्यर्थः द्वे द्वे त्रिंशदधिके योजनशते परिरयवृद्धिं निवर्द्धयन् २ हापयन् हापयन्नित्यर्थः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति॥ अथ मुहूर्त्तगतिप्ररूपणा—

जया णं भन्ते! चन्दे सव्वब्भन्तरमण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ?, गोअमा! पंच जोअणसहस्साइं तेवत्तरिं च जोअणाइं सत्तत्तरिं च चोआले भागसए गच्छइ मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता इति, तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोअणएहिं एगवीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स चन्दे चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ । जया णं भन्ते! चन्दे अब्भन्तराणन्तरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ जाव केवइअं खेत्तं गच्छइ?, गो०! पंच जोअणसहस्साइं सत्तत्तरिं च जोअणाइं छत्तीसं च चोअत्तरे भागसए गच्छइ, मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं जाव छेत्ता, जया णं भन्ते! चन्दे अब्भंतरतच्चं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ?, गो०! पंच जोअणसहस्साइं असीइं च जोअणाइं तेरस य भागसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे भागसए गच्छइ मण्डलं तेरसहिं जाव छेत्ता इति। एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चन्दे तयाणन्तराओ जाव संकममाणे २ तिण्णि २ जोअणाइं छण्णउइं च पंचावण्णे भागसए एगमेगे मण्डले मुहुत्तगइं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ मुहूर्तगतिः प्ररुपणा क्रियते

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [२७५]

चरइ, जया णं भन्ते! चन्दे सव्वबाहिरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ?, गो० ! पंच जोअणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोअणसयं अउणत्तरिं च णउए भागसए गच्छइ मण्डलं तेरसहिं भागसहस्सेहिं सत्तहि अ जाव छेत्ता इति, तया णं इहगयस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोअणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एगत्तीसेहिं जोअणसएहिं चन्दे चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, जया णं भन्ते! बाहिराणन्तरं पुच्छा, गोअमा! पंच जोअणसहस्साइं एकं च एकवीसं जोअणसयं एक्कारस य सट्ठे भागसहस्से गच्छइ मण्डलं तेरसहिं जाव छेत्ता, जया णं भंते! बाहिरतचं पुच्छा, गोअमा! पंच जोअणसहस्साइं एगं च अट्ठारसुत्तरं जोअणसयं चोद्दस य पंचुत्तरे भागसए गच्छइ मंडलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहिं पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता, एवं खलु एएणं उवाएणं जाव संकममाणे २ तिण्णि २ जोअणाइं छण्णउतिं च पंचावण्णे भागसए एगमेगे मण्डले मुहुत्तगई णिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ (सूत्रं १४८)

'जया ण'मित्यादि, पूर्ववत्, भदन्त! चन्द्रः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति?, भगवानाह—गौतम! पंच योजनसहस्राणि त्रिसप्ततिं च योजनानि सप्तसप्ततिं च चतुश्चत्वारिंशदधिकानि भागशतानि गच्छति, कस्य सत्का भागा इत्याह—मण्डलं प्रक्रमात् सर्वाभ्यन्तरं त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिश्च शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागैश्छित्त्वा—विभज्यैतत् पंचसहस्रयोजनादिकं गतिपरिमाणमानेतव्यं, तथाहि—प्रथमतः सर्वाभ्यन्तरमण्डलपरिधिः योजन ३१५०८९ रूपो द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यते जातं ६९६३४६६९,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्य राशेः त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पंचविंशत्यधिकैर्भागे हृते लब्धानि पंच योजनसहस्राणि त्रिसप्तत्यधिकानि अंशाश्च सप्तसप्ततिशतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$ ननु यदि मण्डलपरिधिस्त्रयोदशसहस्रादिकेन भाजकेन रविणा भाज्यस्तर्हि किमित्येकविंशत्यधिकाभ्यां द्वाभ्यां शताभ्यां मण्डलपरिधिर्गुण्यते?, उच्यते, चन्द्रस्य मण्डलपूरणकालो द्वाषष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सत्कास्त्रयोविंशतिरेकविंशत्यधिकशतद्वयभागाः, अस्य च भावना चन्द्रस्य मुहूर्त्तभागगत्यवसरे विधास्यते, मुहूर्त्तानां सवर्णनार्थमेकविंशत्यधिकशतद्वयेन गुणने त्रयोविंशत्यंशप्रक्षेपे च जातं १३७२५, अतः समभागानयनार्थं मण्डलस्याप्येकविंशत्यधिकशतद्वयेन गुणनं सङ्गतमेवेति, अयं भावः–यथा सूर्यः षष्ट्या मुहूर्त्तैर्मण्डलं समापयति शीघ्रगतित्वात् लघुविमानगामित्वाच्च तथा चन्द्रो द्वाषष्ट्या मुहूर्त्तैस्त्रयोविंशत्येकविंशत्यधिकशतद्वयभागैर्मण्डलं पूरयति मन्दगतित्वाद् गुरुविमानगामित्वाच्च, तेन मण्डलपूर्त्तिकालेन मण्डलपरिधिर्भक्तः सन् मुहूर्त्तगतिं प्रयच्छतीति सर्वसम्मतं, आह–एकविंशत्यधिकशतद्वयभागकरणे किं बीजमिति चेद्, उच्यते, मण्डलकालानयने अस्यैव छेदकराशेः समानयनात्, मण्डलकालनिरूपणार्थमिदं त्रैराशिकं–यदि सप्तदशभिः शतैः अष्टषष्ट्यधिकैः सकलयुगवर्त्तिभिः अर्द्धमण्डलैरष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि रात्रिन्दिवानां लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यामेकेन मण्डलेनेति भावः कति रात्रिन्दिवानि लभ्यन्ते?, राशित्रयस्थापना–१७६८।१८३०।२ अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यस्य राशेः १८३० रूपस्य गुणने जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६० तेषा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [२७५]

माद्येन राशिना १७६८ रूपेण भागे हृते लब्धे द्वे रात्रिन्दिवे, शेषं तिष्ठति चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४ तत एकस्मिन् रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति तस्य त्रिंशता गुणने जातानि सप्तत्रिंशच्छतानि विंशत्यधिकानि ३७२० तेषां सप्तदर्शभिः शतैः अष्टषष्ट्यधिकैर्भागे हृते लब्धौ मुहूर्त्तौ, शेषाः १८४, अथ छेद्यच्छेदकराश्योरष्टकेनापवर्त्तने जातः छेद्यो राशिस्त्रयोविंशतिः छेदकराशिरेकविंशत्यधिकशतद्वयरूप इति । अथास्य दृष्टिपथप्राप्ततामाह—'तया णं इहगयस्स'इत्यादि, तदा इहगतानां मनुष्याणां सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैर्द्वाभ्यां च त्रिषष्ट्यधिकाभ्यां योजनशताभ्यामेकविंशत्या च षष्टिभागैर्योजनस्य चन्द्रः चक्षुःस्पर्शं शीघ्रमागच्छति, अत्रोपपत्तिः सूर्याधिकारे दर्शितापि किञ्चिद्विशेषाधानाय दर्श्यते, यथा सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डले जम्बूद्वीपचक्रवालपरिधेर्दशभागीकृतस्य दश त्रिभागान् यावत्ता-पक्षेत्रं तथास्यापि प्रकाशक्षेत्रं तावदेव पूर्वतोऽपरतश्च तस्यार्द्धे चक्षुःपथप्राप्ततापरिमाणमायाति, यत्तु षष्टिभागीकृतयोजनसत्कैकविंशतिभागाधिकत्वं तत्तु सम्प्रदायगम्यं, अन्यथा चन्द्राधिकारे साधिकद्वाषष्टिमुहूर्त्तप्रमाणमण्डलपूर्त्तिकालस्य छेदराशित्वेन भणनात् सूर्याधिकारे वाच्यस्य षष्टिमुहूर्त्तप्रमाणमण्डलपूर्त्तिकालरूपस्य छेदराशेरनुपपद्यमानत्वात् । अथ द्वितीयमण्डले मुहूर्त्तगतिमाह—'जया ण'मित्यादि, यदा भदन्त! चन्द्रः अभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति यावत्पदात् 'तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेण'मिति गम्यते, कियत् क्षेत्रं गच्छति?, गौतम! पञ्च योजनसहस्राणि सप्तसप्ततिं च योजनानि षट्त्रिंशतं च चतुःसप्तत्यधिकानि भागशतानि गच्छति, मण्डलं त्रयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशभिः सहस्रैः यावत्पदात् 'सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहि'मिति ग्राह्यं, छित्त्वा–विभज्य, एतत् सूत्रं प्राग्भावितार्थमिति नेह पुनरुच्यते, अत्रोपपत्तिः द्वितीयचन्द्रमण्डले परिरयपरिमाणं ३१५३१९ एतत् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यते जातं ६९६८५४९९ एषां त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागे लब्धानि पञ्च योजनसहस्राणि सप्तत्यधिकानि ५०७७, शेषं षट्त्रिंशच्छतानि चतुःसप्तत्यधिकानि भागानां १३७२५ $\frac{३६७४}{१३७२५}$, अथ तृतीयं 'जया ण'-मित्यादि, यदा भदन्त! चन्द्रः अभ्यन्तरतृतीयमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति?, गौतम! पञ्च योजनसहस्राणि अशीतिं च योजनानि त्रयोदश च भागसहस्राणि त्रीणि च एकोनत्रिंशदधिकानि भागशतानि गच्छति, मण्डलं त्रयोदशभिः सहस्रैरित्यादि पूर्ववत्, अत्रोपपत्तिर्यथा–अत्र मण्डले परिरयः ३१५५४९ एतद् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यते जातं ६९७३६३२९, एषां त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागे हृते लब्धानि पञ्च सहस्राण्यशीत्यधिकानि ५०८०, शेषं त्रयोदश सहस्राणि त्रीणि शताण्येकोनत्रिंशदधिकानि भागानां $\frac{१३३२९}{१३७२५}$ । अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह—'एवं खलु एएण'मित्यादि, पूर्ववत्, निष्क्रामन् चन्द्रस्तदनन्तरात् यावत्शब्दात् मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं संक्रामन् २ त्रीणि २ योजनानि षण्णवतिं च पञ्चपञ्चाशदधिकानि भागशतान्येकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिमभिवर्द्धयन् २ सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति, कथमेतदवसीयत इति चेत्, उच्यते, प्रतिचन्द्रमण्डलं परिरयवृद्धिर्द्वे शते त्रिंशदधिके २३०, अस्य च त्रयोदशस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्तादिकेन राशिना भागे हृते लब्धानि त्रीणि योजनानि शेषं षण्णवतिः पञ्चपञ्चाशदधिकानि भागशतानि ३ ९६५५/१३७२८। अथ पश्चानुपूर्व्या पृच्छति—'जया ण'मित्यादि, यदा भदन्त! चन्द्रः सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति?, गौतम! पञ्च योजनसहस्राणि एकं च पञ्चविंशत्यधिकं योजनशतमेकोनसप्ततिं च नवत्यधिकानि भागशतानि गच्छति, मण्डलं त्रयोदशभिर्भागसहस्रैः सप्तभिश्च यावच्छब्दात् पञ्चविंशत्यधिकैः शतैर्विभज्य, अत्रोपपत्तिः—अत्र मण्डले परिरयपरिमाणं ३१८३१५ एतद् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यते जातं ७०३४७६१५ एषां त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागे हृते लब्धानि ५१२५ शेषं भागा ६९९३/१३७२८, अथात्र मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततामाह—'तया ण'मिति, तदा—सर्वबाह्यमण्डलचरणकाले इहगतानां मनुष्याणामेकत्रिंशता योजनसहस्रैः अष्टभिश्चैकत्रिंशदधिकैः योजनशतैश्चन्द्रश्चक्षुःस्पर्शं शीघ्रमागच्छति, अत्र सूर्याधिकारोक्तं 'तीसाए सट्ठिभाए'इत्यधिकं मन्तव्यं, उपपत्तिस्तु प्राग्वत्, अथ द्वितीयं मण्डलं—'जया ण'मित्यादि, यदा भदन्त! सर्वबाह्यानन्तरं द्वितीयमित्यादि प्रश्नः प्राग्वत्, गौतम! पञ्च योजनसहस्राणि एकं चैकविंशत्यधिकं योजनशतं एकादश च षष्ट्यधिकानि भागसहस्राणि गच्छति, मण्डलं त्रयोदशभिर्यावत्पदात् सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैः छित्त्वा, अत्रोपपत्तिः—अत्र मण्डले परिरयः ३१८०८५ एतद् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यते जातं ७०२९६७८५ एषां १३७२५ एभिर्भागे हृते लब्धं ५१२१ शेषं ११०६५/१३७२५। अथ तृतीयं—'जया ण'मित्यादि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नः प्राग्वत्, गौतम! पञ्च योजनसहस्राण्येकं चाष्टादशाधिकं योजनशतं चतुर्दश च पञ्चाधिकानि भागशतानि गच्छति, मण्डलं त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैः छित्त्वा, अत्रोपपत्तिः–अत्र मण्डले परिरयप्रमाणं ३१७८५५ एतद् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यते जातं ७०२४५९५५ एषां १३७२५ एभिर्भागे हृते लब्धं ५११८ शेषं भागा $\frac{१४०५}{१३७२५}$ । अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह—'एवं खलु'इत्यादि, एतेनोपायेन यावच्छब्दात् 'पविसमाणे चन्दे तयाणन्तराओ मण्डलाओ तयणन्तरं मण्डल'मिति ग्राह्यं, संक्रामन् २ त्रीणि योजनानि षण्णवतिं च पञ्चपञ्चाशदधिकानि भागशतानि एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिं निवर्द्धयन् २ सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, उपपत्तिः पूर्ववत्, अत्र सर्वाभ्यन्तरसर्वबाह्यचन्द्रमण्डलयोर्दृष्टिपथप्राप्तता दर्शिता, शेषमण्डलेषु तु सा अत्र ग्रन्थे चन्द्रप्रज्ञप्तिबृहत्क्षेत्रसमासवृत्त्यादिषु च पूर्वैः क्वापि न दर्शिता तेनात्र न दर्श्यत इति । अथ नक्षत्राधिकारः, तत्राष्टौ द्वाराणि यथा मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणा १ मण्डलचारक्षेत्रप्ररूपणा २ अभ्यन्तरादिमण्डलास्थायिनामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां परस्परमन्तरनिरूपणा ३ नक्षत्रविमाननामायामादिनिरूपणं ४ नक्षत्रमण्डलानां मेरुतोऽबाधानिरूपणं ५ तेषामेवायामादिनिरूपणं ६ मुहूर्त्तगतिप्रमाणनिरूपणं ७ नक्षत्रमण्डलानां चन्द्रमण्डलैः समवतारनिरूपणं ८। तत्रादौ मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणाप्रश्नमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [२७६]

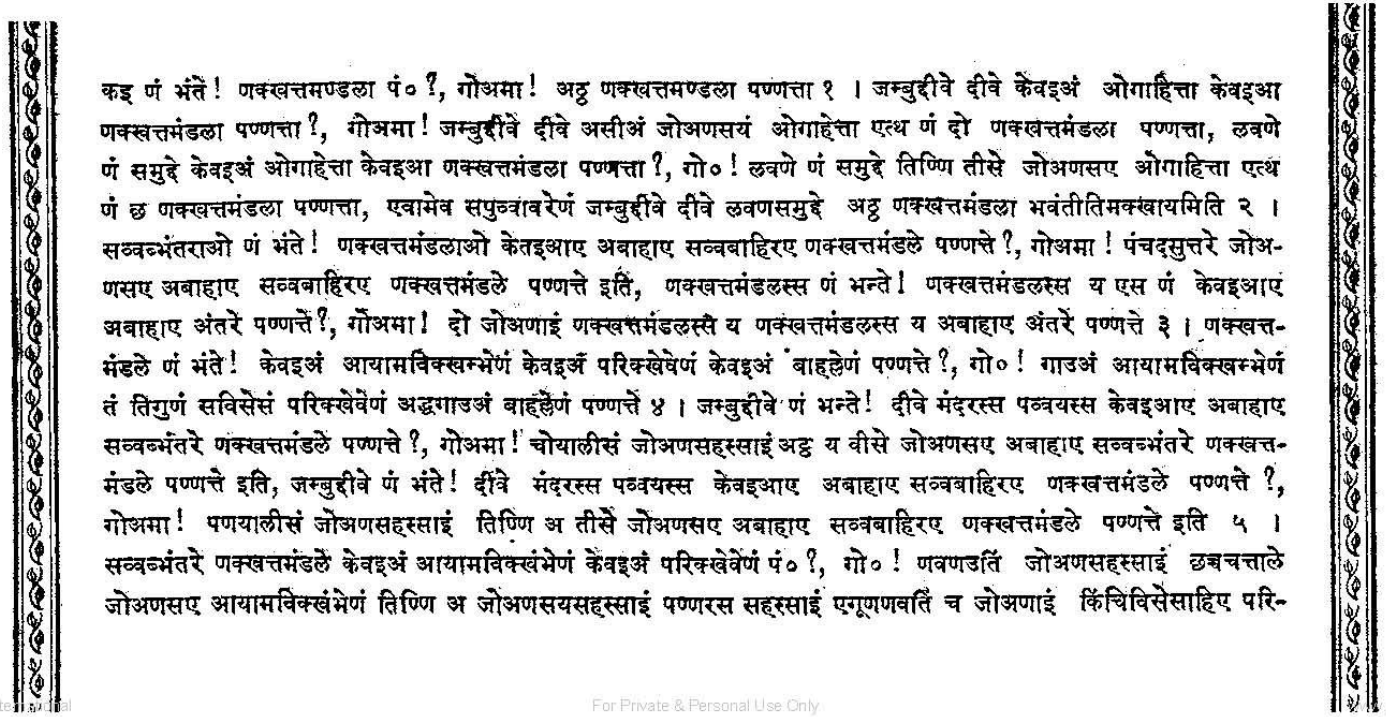

कइ णं भंते! णक्खत्तमण्डला पं०?, गोअमा! अट्ठ णक्खत्तमण्डला पण्णत्ता १ । जम्बुदीवे दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता?, गोअमा! जम्बुदीवे दीवे असीअं जोअणसयं ओगाहेत्ता एत्थ णं दो णक्खत्तमंडला पण्णत्ता, लवणे णं समुद्दे केवइअं ओगाहेत्ता केवइआ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता?, गो०! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं छ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं जम्बुदीवे दीवे लवणसमुद्दे अट्ठ णक्खत्तमंडला भवंतीतिमक्खायमिति २ । सव्वब्भंतराओ णं भंते! णक्खत्तमंडलाओ केतइआए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते?, गोअमा! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते इति, णक्खत्तमंडलस्स णं भन्ते! णक्खत्तमंडलस्स य एस णं केवइआए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?, गोअमा! दो जोअणाइं णक्खत्तमंडलस्स य णक्खत्तमंडलस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ३ । णक्खत्तमंडले णं भंते! केवइअं आयामविक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेणं केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गो०! गाउअं आयामविक्खम्भेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अद्धगाउअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ४ । जम्बुदीवे णं भन्ते! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले पण्णत्ते?, गोअमा! चोयालीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले पण्णत्ते इति, जम्बुदीवे णं भंते! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते?, गोअमा! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते इति ५ । सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पं०?, गो०! णवणउतिं जोअणसहस्साइं छच्चत्ताले जोअणसए आयामविक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस सहस्साइं एगूणणवतिं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिए परि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ नक्षत्र-मण्डलस्य संख्यादि प्ररुपणा क्रियते

क्खेवेणं पण्णत्ते, सव्वबाहिरए णं भंते! णक्खत्तमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोअमा! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयामविक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं, जया णं भंते! णक्खत्ते सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ?, गोअमा! पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि य पण्णट्ठे जोअणसए अट्ठारस य भागसहस्से दोण्णि अ तेवट्ठे भागसए गच्छइ मंडलं एक्कवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठेहिं सएहिं छेत्ता । जया णं भंते! णक्खत्ते सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ?, गोयमा! पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोअणसए सोलस य भागसहस्सेहिं तिण्णि अ पणट्ठे भागसए गच्छइ, मंडलं एगवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठेहिं सएहिं छेत्ता, एते णं भंते! अट्ठ णक्खत्तमंडला कतिहिं चंदमंडलेहिं समोअरंति?, गोअमा! अट्ठहिं चंदमंडलेहिं समोअरंति, तंजहा— पढमे चंदमंडले ततिए छट्ठे सत्तमे अट्ठमे दसमे इक्कारसमे पण्णरसमे चंदमंडले, एगमेगेणं भन्ते! मुहुत्तेणं केवइआइं भागसयाइं गच्छइ?, गो०! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स सत्तरस अट्ठे भागसए गच्छइ, मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइए अ सएहिं छेत्ता इति । एगमेगेणं भन्ते! मुहुत्तेणं सूरिए केवइआइं भागसयाइं गच्छइ?, गोअमा! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारसतीसे भागसए गच्छइ, मंडलं सयसहस्सेहिं अट्ठाणउतीए अ सएहिं छेत्ता, एगमेगेणं भंते! मुहुत्तेणं णक्खत्ते केवइआइं भागसयाइं गच्छइ?, गो०! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स तस्स मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारस पणतीसे भागसए गच्छइ मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउईए अ सएहिं छेत्ता । (सूत्रं १४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

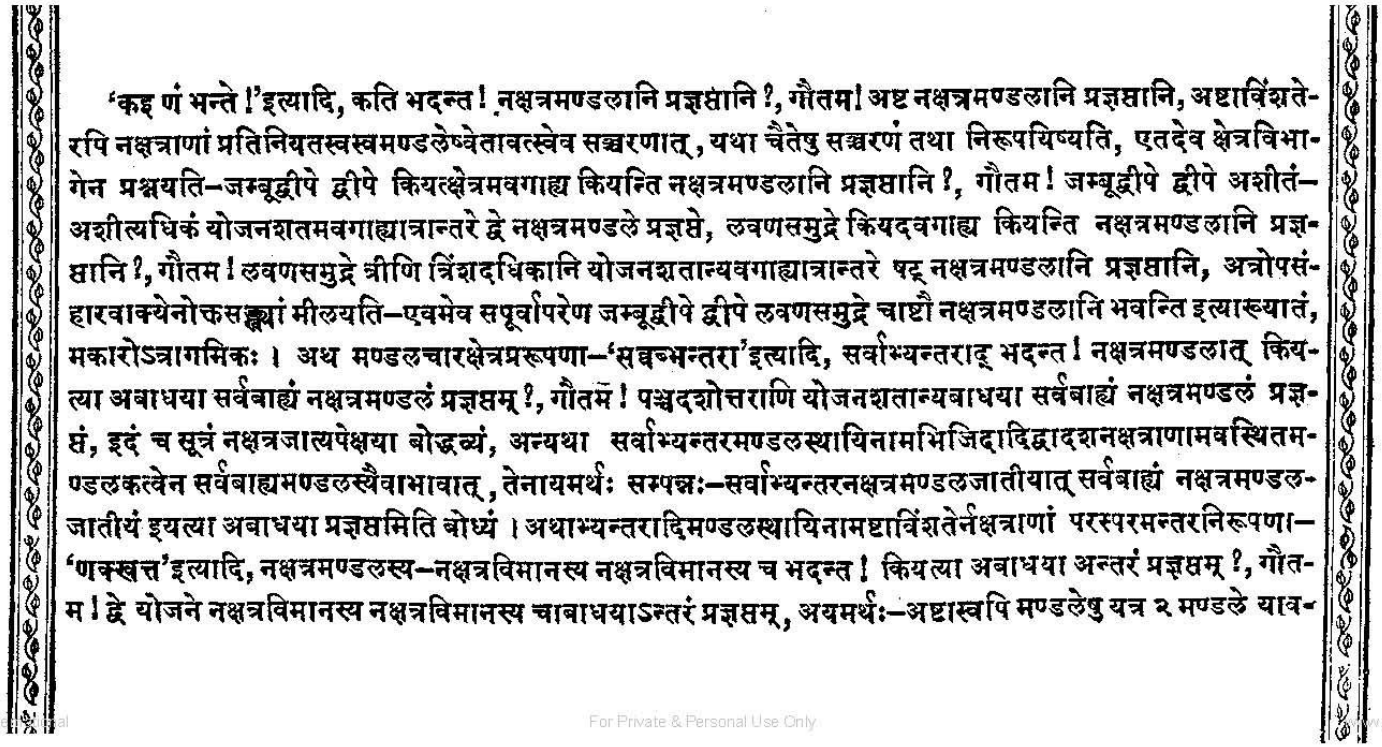

'कइ णं भन्ते !'इत्यादि, कति भदन्त ! नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम! अष्ट नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि, अष्टाविंशतेरपि नक्षत्राणां प्रतिनियतस्वस्वमण्डलेष्वेतावत्स्वेव सञ्चरणात्, यथा चैतेषु सञ्चरणं तथा निरूपयिष्यति, एतदेव क्षेत्रविभागेन प्रश्नयति–जम्बूद्वीपे द्वीपे कियत्क्षेत्रमवगाह्य कियन्ति नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे अशीतं–अशीत्यधिकं योजनशतमवगाह्यात्रान्तरे द्वे नक्षत्रमण्डले प्रज्ञप्ते, लवणसमुद्रे कियदवगाह्य कियन्ति नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम! लवणसमुद्रे त्रीणि त्रिंशदधिकानि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे षट् नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि, अत्रोपसंहारवाक्येनोक्तसङ्ख्यां मीलयति–एवमेव सपूर्वापरेण जम्बूद्वीपे द्वीपे लवणसमुद्रे चाष्टौ नक्षत्रमण्डलानि भवन्ति इत्याख्यातं, मकारोऽत्रागमिकः । अथ मण्डलचारक्षेत्रप्ररूपणा–'सव्वब्भन्तरा'इत्यादि, सर्वाभ्यन्तरात् भदन्त! नक्षत्रमण्डलात् कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम! पञ्चदशोत्तराणि योजनशतान्यबाधया सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तं, इदं च सूत्रं नक्षत्रजात्यपेक्षया बोद्धव्यं, अन्यथा सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्थायिनामभिजिदादिद्वादशनक्षत्राणामवस्थितमण्डलकत्वेन सर्वबाह्यमण्डलस्यैवाभावात्, तेनायमर्थः सम्पन्नः–सर्वाभ्यन्तरनक्षत्रमण्डलजातीयात् सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलजातीयं इयत्या अबाधया प्रज्ञप्तमिति बोध्यं । अथाभ्यन्तरादिमण्डलस्थायिनामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां परस्परमन्तरनिरूपणा–'णक्खत्त'इत्यादि, नक्षत्रमण्डलस्य–नक्षत्रविमानस्य नक्षत्रविमानस्य च भदन्त! कियत्या अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम! द्वे योजने नक्षत्रविमानस्य नक्षत्रविमानस्य चाबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्, अयमर्थः–अष्टास्वपि मण्डलेषु यत्र २ मण्डले याव-

श्रीजम्बू. ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [२७६]

न्ति नक्षत्राणां विमानानि तेषामन्तरबोधकमिदं सूत्रं, यथा अभिजिन्नक्षत्रविमानस्य श्रवणनक्षत्रविमानस्य च परस्परमन्तरं द्वे योजने, न तु नक्षत्रसत्कसर्वाभ्यन्तरादिमण्डलानामन्तरसूचकं, अन्यथा नक्षत्रमण्डलानां वक्ष्यमाणचन्द्रमण्डलसमवतारसूत्रेण सह विरोधात् । अथ नक्षत्रविमानानामायामादिप्ररूपणा—'णक्खत्त'इत्यादि, नक्षत्रमण्डलं भदन्त ! कियदायामविष्कम्भाभ्यां कियत् परिक्षेपेण कियद्बाहल्येन—उच्चैस्त्वेन प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! गव्यूतमायामविष्कम्भाभ्यां तत्त्रिगुणं सविशेषं परिक्षेपेण अर्द्धक्रोशं बाहल्येन प्रज्ञप्तमिति । सम्प्रत्येषामेव मेरुमधिकृत्याबाधाप्ररूपणा—'जम्बुद्दीवे'त्ति जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वाभ्यन्तरं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट च विंशत्यधिकानि योजनशतान्यबाधया सर्वाभ्यन्तरं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्, उपपत्तिस्तु सूर्याधिकारे निरूपिता, अथ बाह्यमण्डलाबाधां पृच्छति—'जम्बुद्दीवे'त्ति, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम! पंचचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि च त्रिंशदधिकानि योजनशतान्यबाधया सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्, उपपत्तिस्तु प्राग्वत् । अथ एतेषामेवायामादिनिरूपणम्—'सव्वब्भन्तरे ण'मित्यादि, प्राग्वत्, अथ सर्वबाह्यमण्डलं पृच्छति—'सव्वबाहिरए'इत्यादि, प्राग्वत्, मध्यमेषु षट्सु मंडलेषु तु चन्द्रमंडलानुसारेणायामविष्कम्भपरिक्षेपाः परिभाव्याः, अष्टावपि नक्षत्रमंडलानि चन्द्रमंडले समवतरन्तीति भणिष्यमाणत्वात् । अथ मुहूर्त्तगतिद्वारम्—'जया ण'मित्यादि, यदा भदन्त! नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरमंडलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदैकैकेन मुहूर्त्तेन कियत्क्षेत्रं गच्छति?, नक्षत्रमित्यत्र जात्यपेक्षयैकवचनं, अन्यथाऽभ्यन्तरमंडलगतिचिन्तायां द्वादशानामपि नक्षत्राणां संग्रहाय बहुवचनस्यौचित्यात्, गौतम! पञ्च योजनसहस्राणि द्वे च पञ्चषष्ट्यधिके योजनशते अष्टादश च भागसहस्राणि द्वे च त्रिषष्ट्यधिकभागशते गच्छति, मंडलमेकविंशत्या भागसहस्रैर्नवभिश्च षष्ट्यधिकैः शतैः छित्त्वा इति, अत्रोपपत्तिः–इह नक्षत्रमंडलकाल एकोनषष्टिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तषष्ट्यधिकत्रिंशतभागानां त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणीति ५९ $\frac{३०७}{३६७}$, अयं च नक्षत्राणां मुहूर्त्तभागो गत्यवसरे भावयिष्यते, इदानीमेतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिश्चिन्त्यते–तत्र रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ताः तेषु उपरितना एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः प्रक्षिप्यन्ते जाता एकोनषष्टिर्मुहूर्त्तानां, ततः सवर्णनार्थं त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्याऽधिकैः गुणयित्वा उपरितनानि त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि प्रक्षिप्यन्ते जातान्येकविंशतिसहस्राणि नव शतानि षष्ट्यधिकानि २१९६०, अयं च प्रतिमंडलं परिधेः छेदकराशिः, तत्र सर्वाभ्यन्तरमंडलपरिधिः ३१५०८९, अयं च योजनात्मको राशिर्भागात्मकेन राशिना भजनार्थं त्रिभिः सप्तषष्ट्यधिकैः शतैः ३६७ गुण्यते, जातं ११५६३७६६३, अस्य राशेरेकविंशत्या सहस्रैः नवभिः शतैः षष्ट्यधिकैर्भागे हृते लब्धानि ५२६५ शेषं $\frac{१८२६३}{२१९६०}$ भागाः, एतावती सर्वाभ्यन्तरमंडलेऽभिजिदादीनां द्वादशनक्षत्राणां मुहूर्त्तगतिः। अथ बाह्ये नक्षत्रमंडले मुहूर्त्तगतिं पृच्छति—'जया ण'मित्यादि, यदा भदन्त! नक्षत्रं सर्वबाह्यं मण्डलं उपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति?, अत्राप्येकवचनं प्राग्वत्, गौतम! पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [२७६]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४७६॥

चैकोनविंशत्यधिकानि योजनशतानि षोडश च भागसहस्राणि त्रीणि च पञ्चषष्ट्यधिकानि भागशतानि गच्छति मण्ड-लमेकविंशत्या भागसहस्रैर्नवभिश्च षष्ट्यधिकैः शतैः छित्त्वा इति, अत्रोपपत्तिः–अत्र मण्डले परिधिः ३१८३१५, अयं त्रिभिः सप्तषष्ट्यधिकैः शतैः ३६७ गुण्यते जातं ११६८२१६०५, अस्य राशेरेकविंशत्या सहस्रैर्नवभिः शतैः षष्ट्यधिकैः भागे लब्धानि ५३१९ योजनानि शेषं $\frac{१६३६५}{२१९६०}$ भागाः, एतावती सर्वबाह्ये नक्षत्रमण्डले मृगशीर्षप्रभृतीनामष्टानां नक्ष-त्राणां मुहूर्त्तगतिः, उक्ता तावत् सर्वाभ्यन्तरसर्वबाह्यमण्डलवर्त्तिनां नक्षत्राणां मुहूर्त्तगतिः, अथ नक्षत्रतारकाणामव-स्थितमण्डलकत्वेन प्रतिनियतगतिकत्वेन चावशिष्टेषु षट्सु मण्डलेषु मुहूर्त्तगतिपरिज्ञानं दुष्करमिति तत्कारणभूतं मण्ड-लपरिज्ञानं कर्त्तुं नक्षत्रमण्डलानां चन्द्रमण्डलेषु समवतारप्रश्नमाह—'एते ण'मित्यादि, एतानि भदन्त! अष्टौ नक्षत्र-मण्डलानि कतिषु चन्द्रमण्डलेषु समवतरन्ति–अन्तर्भवन्ति, चन्द्रनक्षत्राणां साधारणमण्डलानि कानीत्यर्थः, भगवा-नाह–गौतमाष्टासु चन्द्रमण्डलेषु समवतरन्ति, तद्यथा–प्रथमे चन्द्रमण्डले प्रथमं नक्षत्रमण्डलं, चारक्षेत्रसञ्चारिणा-मनवस्थितचारिणां च सर्वेषां ज्योतिष्काणां जम्बूद्वीपेऽशीत्यधिकयोजनशतमवगाह्यैव मण्डलप्रवर्त्तनात्, तृतीये चन्द्रम-ण्डले द्वितीयं, एते च द्वे जम्बूद्वीपे, षष्ठे लवणे भाविनि चन्द्रमण्डले तृतीयं, तत्रैव भाविनि सप्तमे चतुर्थं अष्टमे पञ्चमं दशमे षष्ठं एकादशे सप्तमं पञ्चदशेऽष्टमं शेषाणि तु द्वितीयादीनि सप्त चन्द्रमण्डलानि नक्षत्रैर्विरहितानि, तत्र प्रथमे चन्द्रमण्डले द्वादश नक्षत्राणि, तद्यथा–अभिजिच्छ्रवणो धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वभद्रपदा उत्तरभद्रपदा रेवती अश्विनी

७वक्षस्कारे नक्षत्रम-ण्डलादि सू. १४९

॥४७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरणी पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी स्वातिश्च, द्वितीये पुनर्वसु मघा च, तृतीये कृत्तिका, चतुर्थे रोहिणी चित्रा च, पञ्चमे विशाखा षष्ठे अनुराधा सप्तमे ज्येष्ठा अष्टमे मृगशिरः आर्द्रा पुष्यः अश्लेषा मूलो हस्तश्च, पूर्वाषाढोत्तराषाढयोर्द्वे द्वे तारे अभ्यन्तरतो द्वे द्वे बाह्यत इति, एवं स्वस्वमण्डलावतारसत्कचन्द्रमण्डलपरिध्यनुसारेण प्रागुक्तरीत्या द्वितीयादीनामपि नक्षत्रमण्डलानां मुहूर्त्तगतिः परिभावनीया, उक्ता प्रतिमण्डलं चन्द्रादीनां योजनात्मिका मुहूर्त्तगतिः, अथ तेषामेव प्रतिमण्डलं भागात्मिकां मुहूर्त्तगतिं प्रश्नयति–'एगमेगे ण'मित्यादि, एकैकेन भगवन्! मुहूर्त्तेन चन्द्रः कियन्ति भागशतानि गच्छति?, गौतम! यद्यन्मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तस्य तस्य मण्डलस्य सम्बन्धिनः परिक्षेपस्य सप्तदश शतान्यष्टषष्टिभागैरधिकानि गच्छति, मण्डलपरिक्षेपमेकेन लक्षेणाष्टनवत्या च शतैः छित्त्वा–विभज्य, इयमत्र भावना–इह प्रथमतश्चन्द्रस्य मंडलकालो निरूपणीयस्तदनन्तरं तदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं भावनीयं, तत्र मंडलकालनिरूपणार्थमिदं त्रैराशिकं–यदि सप्तदशभिः शतैरष्टषष्ट्यधिकैः सकलयुगवर्त्तिभिरर्द्धमंडलैश्चन्द्रद्वयापेक्षया तु पूर्णमंडलैरष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि रात्रिन्दिवानां लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यामर्द्धमंडलाभ्यामेकेन मण्डलेनेति भावः कति रात्रिन्दिवानि लभ्यन्ते?, राशित्रयस्थापना–१७६८। १८३०। २। अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यराशेर्गुणनं जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६० तेषामादिराशिना भागहरणं लब्धे द्वे रात्रिन्दिवे शेषं तिष्ठति चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४ तत्रैकस्मिन् रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति तस्य त्रिंशता गुणने जातानि सप्तत्रिंशच्छ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [२७६]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥४७७॥

तानि विंशत्यधिकानि ३७२० तेषां सप्तदशभिः शतैः अष्टषष्ट्यधिकैर्भागे हृते लब्धौ द्वौ मुहूर्त्तौ, ततः छेद्यच्छेदकराश्योरष्टकेनापवर्त्तना जातः छेद्यो राशिस्त्रयोविंशतिः छेदकराशिर्द्वे शते एकविंशत्यधिके आगतं मुहूर्त्तस्यैकविंशत्यधिकशतद्वयभागास्त्रयोविंशतिः २ २३/२२१, एतावता कालेन द्वे अर्द्धे मंडले परिपूर्णे चरति, किमुक्तं भवति?–एतावता कालेन परिपूर्णमेकं मंडलं चन्द्रश्चरति। तदेवं चन्द्रमण्डलकालप्ररूपणा, अथैतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिः, तत्र ये द्वे रात्रिन्दिवे ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्येते, जाताः षष्टिर्मुहूर्त्ताः ६० उपरितनयोर्द्वयोः क्षेपे जाता द्वाषष्टिः, एषां सवर्णनार्थं द्वाभ्यां शताभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां गुण्यते, गुणयित्वा चोपरितनांशत्रयोविंशतिः प्रक्षिप्यते, जातानि त्रयोदश सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चविंशत्यधिकानीति, एतदेकमण्डलकालगतमुहूर्त्तसत्कैकविंशत्यधिकशतद्वयभागानां परिमाणं, ततस्त्रैराशिककरणं, यदि त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैरेकविंशत्यधिकशतद्वयभागानां मंडलभागा एकं शतसहस्रमष्टानवतिशतानि लभ्यन्ते तत एकेन मुहूर्त्तेन किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना १३७२५। १०९८००। १। इहाद्यो राशिर्मुहूर्त्तगतैकविंशत्यधिकशतद्वयभागस्वरूपस्ततः सवर्णनार्थमन्त्यो राशिरेकलक्षणो द्वाभ्यां शताभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां गुण्यते, जाते द्वे शते एकविंशत्यधिके २२१, ताभ्यां मध्यो राशिर्गुण्यते, जाते द्वे कोट्यौ द्विचत्वारिंशल्लक्षाः पञ्चषष्टिः सहस्राण्यष्टौ शतानि २४२६५८००, तेषां त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागो ह्रियते, लब्धानि सप्तदश शतान्यष्टषष्ट्यधिकानि १७६८, एतावतो भागान् यत्र तत्र वा मण्डले चन्द्रौ

७वक्षस्कारे नक्षत्रमण्डलादि सू. १४९

॥४७७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

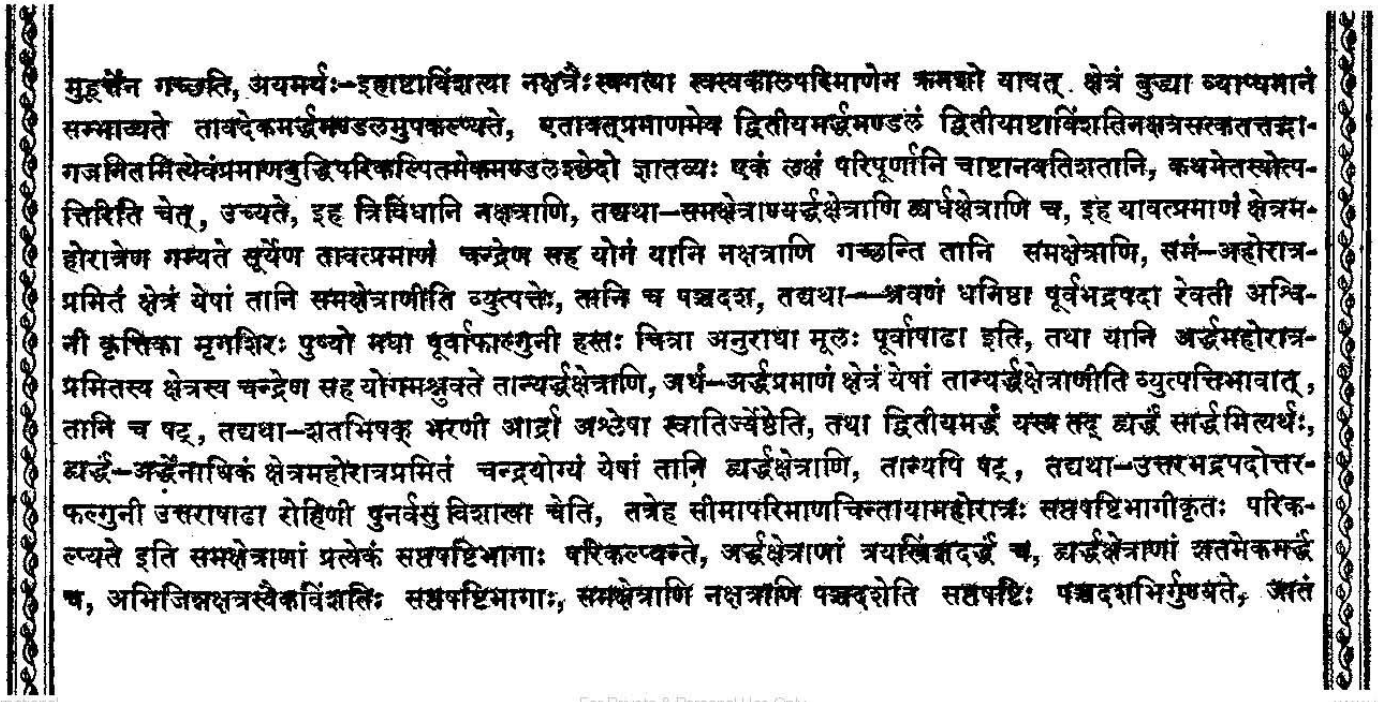

मुहूर्तेन गच्छति, अयमर्थः–इहाष्टाविंशत्या नक्षत्रैः स्वगत्या स्वस्वकालपरिमाणेन क्रमशो यावत् क्षेत्रं बुद्ध्या व्याप्यमानं सम्भाव्यते तावदेकमर्द्धमण्डलमुपकल्प्यते, एतावत्प्रमाणमेव द्वितीयमर्द्धमण्डलं द्वितीयाष्टाविंशतिनक्षत्रसत्कतत्तद्गगजमितमित्येवंप्रमाणबुद्धिपरिकल्पितमेकमण्डलक्षेत्रं ज्ञातव्यः एकं लक्षं परिपूर्णानि चाष्टानवतिशतानि, कथमेतत्स्योत्पत्तिरिति चेत्, उच्यते, इह त्रिविधानि नक्षत्राणि, तद्यथा–समक्षेत्राण्यर्द्धक्षेत्राणि व्यर्धक्षेत्राणि च, इह यावत्प्रमाणं क्षेत्रमहोरात्रेण गम्यते सूर्येण तावत्प्रमाणं चन्द्रेण सह योगं यानि नक्षत्राणि गच्छन्ति तानि समक्षेत्राणि, समं–अहोरात्रप्रमितं क्षेत्रं येषां तानि समक्षेत्राणीति व्युत्पत्तेः, तानि च पञ्चदश, तद्यथा––श्रवणं धनिष्ठा पूर्वभद्रपदा रेवती अश्विनी कृत्तिका मृगशिरः पुष्यो मघा पूर्वाफाल्गुनी हस्तः चित्रा अनुराधा मूलः पूर्वाषाढा इति, तथा यानि अर्द्धमहोरात्रप्रमितस्य क्षेत्रस्य चन्द्रेण सह योगमश्नुवते तान्यर्द्धक्षेत्राणि, अर्धं–अर्द्धप्रमाणं क्षेत्रं येषां तान्यर्द्धक्षेत्राणीति व्युत्पत्तिभावात्, तानि च षट्, तद्यथा–शतभिषक् भरणी आर्द्रा अश्लेषा स्वातिर्ज्येष्ठेति, तथा द्वितीयमर्द्धं यस्य तद् व्यर्द्धं सार्द्धमित्यर्थः, व्यर्द्धं–अर्द्धेनाधिकं क्षेत्रमहोरात्रप्रमितं चन्द्रयोग्यं येषां तानि व्यर्द्धक्षेत्राणि, तान्यपि षट्, तद्यथा–उत्तरभद्रपदोत्तरफल्गुनी उत्तराषाढा रोहिणी पुनर्वसु विशाखा चेति, तत्रेह सीमापरिमाणचिन्तायामहोरात्रः सप्तषष्टिभागीकृतः परिकल्प्यते इति समक्षेत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिभागाः परिकल्प्यन्ते, अर्द्धक्षेत्राणां त्रयस्त्रिंशदर्द्धं च, व्यर्द्धक्षेत्राणां शतमेकमर्द्धं च, अभिजिन्नक्षत्रस्यैकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, समक्षेत्राणि नक्षत्राणि पञ्चदशेति सप्तषष्टिः पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहस्रं पञ्चोत्तरं १००५, अर्द्धक्षेत्राणि षडिति सार्द्धास्त्रयस्त्रिंशत् षड्भिर्गुण्यते जाते द्वे शते एकोत्तरे २०१, द्व्यर्द्धक्षेत्राण्यपि षट् ततः शतमेकमर्द्धं च षड्भिर्गुणितं जातानि षट् शतानि त्र्युत्तराणि ६०३, अभिजिन्नक्षत्रैकविंशतिः, सर्वसङ्ख्यया जातान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, एतावद्भागपरिमाणमेकमर्द्धमंडलमेतावदेव द्वितीयमपीति त्रिंशदधिकान्यष्टादश शतानि द्वाभ्यां गुण्यन्ते जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६०, एकैकस्मिन्नहोरात्रे किल त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति प्रत्येकमेतेषु षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतसङ्ख्येषु भागेषु त्रिंशद्भागकल्पनायां त्रिंशता गुण्यन्ते, जातमेकशतसहस्रमष्टानवतिः शतानि १०९८००, तदेवं मंडलच्छेदपरिमाणमभिहितं, ननु यानि नक्षत्राणि यन्मण्डलस्थायीनि तेषां तन्मंडलेषु चन्द्रादियोगयोग्यमंडलभागस्थापनं युक्तिमत् न तु सर्वेष्वपि मंडलेषु सर्वेषां भागकल्पनमिति चेत्, उच्यते, नहि नक्षत्राणां चन्द्रादिभिर्योगो नियते दिने नियते देशे नियतवेलायामेव भवति किन्त्वनियतदिनादौ तेन तत्तन्मंडलेषु तत्तन्नक्षत्रसम्बन्धिसीमाविष्कम्भे चन्द्रादिप्राप्तौ सत्यां योगः सम्पद्यत इति, मंडलच्छेदश्च सीमाविष्कम्भादौ सप्तयोजनः, अथ सूर्यस्य भागात्मिकां गतिं प्रश्नयन्नाह—'एगमेगे णं भन्ते!' इत्यादि, एकैकेन भगवन्! मुहूर्त्तेन सूर्यः कियन्ति भागशतानि गच्छति?, गौतम! यद्यन्मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तस्य तस्य मंडलसम्बन्धिनः परिक्षेपस्याष्टादश भागशतानि त्रिंशदधिकानि गच्छति, मण्डलं शतसहस्रेणाष्टानवत्या च शतैः छित्त्वा, कथमेतदवसीयत इति चेत्?, उच्यते, त्रैराशिककरणात्, तथाहि—षष्ट्या मुहूर्त्तैरेकं शतसहस्रमष्टानवतिः शतानि मंडलभागाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [२७६]

लभ्यन्ते ततः एकेन मुहूर्त्तेन कति भागान् लभामहे, राशित्रयस्थापना–६० । १०९८०० । १ अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यस्य राशेर्गुणनं, जातः स तावानेव, एकेन गुणितं तदेव भवतीति वचनात्, ततस्तस्याद्येन राशिना षष्टिलक्षणेन भागो ह्रियते, लब्धान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, एतावतो भागान् मण्डलस्य सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, अथ नक्षत्राणां भागात्मिकां गतिं प्रश्नयन्नाह—'एगमेगे ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे तु गौतम! यद्यदात्मीयमात्मीयं प्रतिनियतं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तस्य तस्यात्मीयस्य मण्डलस्य सम्बन्धिनः परिक्षेपस्य–परिधेरष्टादशभागशतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि गच्छति, मण्डलं शतसहस्रेणाष्टनवत्या च शतैः छित्त्वा, इहापि प्रथमतो मण्डलकालो निरूपणीयस्ततस्तदनुसारेणैव मुहूर्त्तगतिपरिमाणभावना, तत्र मण्डलकालप्रमाणचिन्तायां इदं त्रैराशिकं–यद्यष्टादशभिः शतैः पञ्चत्रिंशदधिकैः सकलयुगवर्त्तिभिरर्द्धमण्डलैर्द्वितीयाष्टाविंशतिनक्षत्रापेक्षया तु पूर्णमण्डलैरित्यर्थः अष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि रात्रिन्दिवानां लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यामेकेन परिपूर्णेन मण्डलेनेति भावः किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना–१८३५। १८३०। २ अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनं जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६०, तत आद्येन राशिना १८३५ लक्षणेन भागहरणं लब्धमेकं रात्रिन्दिवं १, शेषाणि तिष्ठन्त्यष्टादश शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि १८२५, ततो मुहूर्त्तानयनार्थमेतानि त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चतुःपञ्चाशत्सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चाशदधिकानि ५४७५०, तेषामष्टादशभिः शतैः पञ्चत्रिंशदधिकैर्भागे हृते लब्धा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः २९, ततः शेषच्छेद्यच्छेदकराश्योः पञ्चकेनापवर्त्तना जात उपरितनो राशिस्त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि ३०७ छेदकराशिस्त्रीणि शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि ३६७, तत आगतमेकं रात्रिन्दिवमेकस्य च रात्रिन्दिवस्यैकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तषष्ट्यधिकत्रिंशतभागानां त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि १२९ ३०७/३६७ । इदानीमेतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं चिन्त्यते, तत्र रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ताः ३० तेषु उपरितना एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः प्रक्षिप्यन्ते जाता एकोनषष्टिर्मुहूर्त्तानां ततः सा सवर्णनार्थं त्रिभिः शतैः षष्ट्यधिकैर्गुण्यते, गुणयित्वा चोपरितनानि त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि प्रक्षिप्यन्ते जातान्येकविंशतिः सहस्राणि नव शतानि षष्ट्यधिकानि २१९६०, ततश्चैराशिकं–यदि मुहूर्त्तगतसप्तषष्ट्यधिकत्रिंशतभागानामेकविंशत्या सहस्रैः नवभिः शतैः षष्ट्यधिकैरेकं शतसहस्रमष्टानवतिः शतानि मण्डलभागानां लभ्यन्ते तत एकेन मुहूर्त्तेन किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना–२१९६० । १०९८०० । १ अन्त्यो राशिर्मुहूर्त्तगतसप्तषष्ट्यधिकत्रिंशतभागरूपस्ततोऽन्त्योऽपि राशिस्त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्यधिकैर्गुण्यते जातानि त्रीण्येव शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि ३६७ तैर्मध्यो राशिर्गुण्यते जाताश्चतस्रः कोटयो द्वे लक्षे षण्णवतिः सहस्राणि षट् शतानि ४०२९६६०० , तेपामाद्येन राशिना एकविंशतिसहस्राणि नव शतानि षष्ट्यधिकानि इत्येवंरूपेण भागो ह्रियते, लब्धान्यष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि १८३५, एतावती भागान्नक्षत्रं प्रतिमुहूर्त्तं गच्छति, इदं च भागात्मकं गतिविचारणं चन्द्रादित्रयस्य क्योत्तरं गतिशीघ्रत्वे सप्रयोजनं, तथाहि–सर्वेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि, मण्डलस्थोरुभागी-

॥४७९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [२७६]

कृतस्य पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादशशतभागानामेकैकस्मिन् मुहूर्ते आक्रमणात्, तेभ्यो मन्दगतयः सूर्याः, एकैकस्मिन् मुहूर्ते त्रिंशदधिकाष्टादशभागानामाक्रमणात्, तेभ्यश्चन्द्रा मन्दगतयः एकैकस्मिन् मुहूर्ते अष्टषष्ट्यधिकसप्तशतभागानामाक्रमणात्, ग्रहास्तु वक्रानुवक्रादिगतिभावतोऽनियतगतिकास्तेन न तेषां मण्डलादिचिन्ता नापि गतिप्ररूपणा, तारकाणामप्यवस्थितमण्डलकत्वाच्चन्द्रादिभिः सह योगाभावचिन्तनाच्च न मण्डलादिप्ररूपणा कृता । सम्प्रति सूर्यस्योद्गमनास्तमयने अधिकृत्य बहवो मिथ्याभिनिविष्टबुद्धयो विप्रतिपन्नास्तेन तद्विप्रतिपत्तिभपाकर्तुं प्रश्नमाह—

जम्बुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिआ उदीणपाईणमुग्गच्छ पाईणदाहिणमागच्छंति १ पाईणदाहिणमुग्गच्छ दाहिणपडीणमागच्छंति २ दाहिणपडीणमुग्गच्छ पडीणउदीणमागच्छंति ३ पडीणउदीणमुग्गच्छ उदीणपाईणमागच्छंति ४?, हंता गोअमा! जहा पंचमसए पढमे उद्देसे जाव णेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पं० समणाउसो!, इचेसा जम्बुद्दीवपण्णत्ती सूरपण्णत्ती वत्थुसमासेणं सम्मत्ता भवइ॥ जम्बुद्दीवे णं भंते! दीवे चंदिमा उदीणपाईणमुग्गच्छ पाईणदाहिणमागच्छंति जहा सूरवत्तव्वया जहा पंचमसयस्स दसमे उद्देसे जाव अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो!, इचेसा जम्बुद्दीवपण्णत्ती वत्थुसमासेणं सम्मत्ता भवइ । (सूत्रं १५०)

'जम्बुद्दीवे ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे द्वौ सूर्यौ जम्बूद्वीपे द्वयोरेव भावात्, उदीचीनप्राचीनं उदगेव उदीचीनं च तदुदीच्या आसन्नत्वात् प्राचीनं च प्राच्याः प्रत्यासन्नत्वादुदीचीनप्राचीनं, अत्र स्वार्थे इन् प्रत्ययः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगन्तरं क्षेत्रदिगपेक्षयोत्तरपूर्वस्यामीशानकोणे इत्यर्थः, अत्र प्राकृतत्वात् सप्तम्यर्थे द्वितीया, उद्गत्य–पूर्वविदेहापेक्षयोदयं प्राप्य प्राचीनदक्षिणे दिगन्तरे प्राग्दक्षिणस्यामाग्नेयकोणे इत्यर्थः आगच्छतः क्रमेणैवास्तं यात इत्यर्थः, इह चोद्गमनमस्तमयनं च द्रष्टृलोकविवक्षयाऽवसेयं, तथाहि–येषामदृश्यौ सन्तौ दृश्यौ तौ स्यातां, ते तयोरुदयं व्यवहरन्ति, येषां तु दृश्यौ सन्तावदृश्यौ तौ स्तस्ते तयोरस्तमयं व्यवहरन्तीत्यनियतावुदयास्तमयाविति, अत्र काकुपाठात् प्रश्नोऽवगन्तव्यः, ततो भरतादिक्षेत्रापेक्षया प्राग्दक्षिणस्यामुद्गत्य दक्षिणप्रतीच्यामागच्छतस्तत्रापि दक्षिणप्रतीच्यामपरविदेहापेक्षयोद्गत्य प्रतीचीनोदीचीने–वायव्यकोणे आगच्छतस्तत्रापि च वायव्यामैरावतादिक्षेत्रापेक्षयोद्गत्योदीचीनप्रतीचीने–ईशानकोणे आगच्छतः, एवं सामान्यतः सूर्ययोरुदयविधिः, विशेषतः पुनरेवं–यदैकः सूर्यः आग्नेयकोणे उद्गच्छति तत्रोद्गतश्च भरतादीनि मेरुदक्षिणदिग्वर्त्तीनि क्षेत्राणि प्रकाशयति तदा परोऽपि वायव्यकोणे उद्गतो मेरूत्तरदिग्भावीन्यैरावतादीनि क्षेत्राणि प्रकाशयति, भारतश्च सूर्यो मण्डलभ्राम्या भ्रमन् नैर्ऋतकोणे उद्गतः सन्नपरमहाविदेहान् प्रकाशयति, ऐरावतस्तु ऐशान्यामुद्गतः पूर्वविदेहान् प्रकाशयति, ततः एष पूर्वविदेहप्रकाशको दक्षिणपूर्वस्यां भरतादिक्षेत्रापेक्षयोदयमासादयति, अपरविदेहप्रकाशकस्त्वपरोत्तरस्यामैरवतादिक्षेत्रापेक्षयोदयमासादयति, अत्रैशान्यादिदिग्व्यवहारो मेरुतो बोध्यः, अन्यथा भरतादिजनानां स्वस्वसूर्योदयदिशि पूर्वदिक्त्वे आग्नेयादिकोणव्यवहारानुपपत्तेरिति, एवं प्रश्ने कृते भगवानाह—हन्तेत्यव्ययमभ्युपगमार्थे तेन हे गौतम! इत्थमेव यथा त्वं प्रश्नयसि तथैवेत्यर्थः, अनेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च सूर्यस्य तिर्यग्दिक्षु गतिरुक्ता, न तु 'तत्थ रवी दसजोअण'इत्यादिगाथोक्तस्वस्थानादूर्ध्वं नाप्यधः, तेन ये मन्यन्ते 'सूर्यः पश्चिमसमुद्रं प्रविश्य पातालेन गत्वा पुनः पूर्वसमुद्रे उदेती'त्यादि, तन्मतं निषिद्धमिति। अथ सूत्रकृद् ग्रन्थगौरवभयादतिदेशवाक्यमाह–यथा पञ्चमशते प्रथमे उद्देशके तथा भणितव्यं, कियत्पर्यन्तमित्याह–यावत् 'णेवऽत्थि उस्सप्पिणी नेवऽत्थि ओसप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते' इति सूत्रं, तद्यथा–'जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढेवि दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे भवइ तया णं जम्बुद्दीवे २ मन्दरस्स पवयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं राई भवइ?, हंता गोअमा! जया णं जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे जाव राई भवइ, जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पवयस्स पुरत्थिमेणं दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेणवि दिवसे भवइ, जया णं पच्चत्थिमे णं दिवसे भवइ तया णं जम्बुद्दीवे २ मन्दरस्स पवयस्स उत्तरदाहिणेणं राई भवइ?, हन्ता! गोअमा! जया णं जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पवयस्स पुरत्थिमेणं दिवसे जाव राई भवइ, जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढेवि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ?, हन्ता गोअमा! जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे जाव दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पवयस्स पुरत्थिमेणं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जाव तया णं जम्बुद्दीवे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५०]

दीप अनुक्रम [२७७]

२ दाहिणेणं जाव राई भवइ, जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं उत्त० अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ जया णं उत्तरड्ढे अट्ठार० भवइ तया णं जम्बुद्दीवे २ मंदर० पुरत्थिमेणं सातिरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ?, हंता! गोअमा! जया णं जम्बुद्दीवे २ जाव राई भवइ, जया णं भंते! जम्बुदीवे २ मंदरस्स पुरत्थिमेणं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थि०, जया णं पच्चत्थिमेणं तया णं जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स० उत्तरदाहिणेणं साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, एवं एतेणं कमेणं ऊसारेअव्वं, सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राई सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगतेरसमुहुत्ता राई सोलसमुहुत्ते दिवसे चोद्दसमुहुत्ता राई सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगा चोद्दसमुहुत्ता राई पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगपण्णरसमुहुत्ता राई चोद्दसमुहुत्ते दिवसे सोलसमुहुत्ता राई चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगसोलसमुहुत्ता राई भवइ तेरसमुहुत्ते दिवसे सत्तरसमुहुत्ता राई तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगसत्तरसमुहुत्ता राई, जया णं भंते! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढेवि, जया णं उत्तरड्ढे० तया णं जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं उक्कोसिआ अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ?, हंता! गोअमा! एवं चेव उच्चारेअव्वं जाव राई भवइ, जया णं भंते! जम्बुद्दीवे २ मंदरपुरत्थिमेणं जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेणवि० जया णं पच्चत्थिमेणवि० तया णं जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स उत्तरदाहिणेणं उक्कोसिआ अट्ठा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसमुहुत्ता राई भवइ?, हंता गोअमा! जाव राई भवइ, जया णं भंते! जम्बुद्दीवे २ दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, जया णं उत्तरड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं जम्बुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं अणंतरपुरेक्खडसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ?, हंता गोअमा! जया णं भंते! जम्बुद्दीवे २ दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तहेव जाव पडिवज्जइ, जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं पच्चत्थिमेणऽवि वासाणं पढमे समए, जया णं पच्चत्थिमेणं वासाणं पढमे समए तया णं जाव मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं अणंतरपच्छाकडसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवण्णे भवइ?, हंता! गोअमा! जया णं भंते! जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिमेणं एअं चेव सव्वं उच्चारेअव्वं जाव पडिवण्णे भवइ, एवं जहा समएणं अभिलावो भणिओ वासाणं तहा आवलिआएवि भणिअव्वो, आणापाणूवि थोवेणवि लवेणवि मुहुत्तेणवि अहोरत्तेणवि पक्खेणवि मासेणवि उऊणवि, एएसिं सव्वेसिं जहा समयस्स अभिलावो तहा भाणिअव्वो, जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे २ हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जइ, जहेव वासाणं अभिलावो तहेव हेमंताणवि गिम्हाणवि भाणिअव्वो, जाव उत्तर०, एवं एए तिण्णिवि, एतेसिं तीसं आलावगा भाणिअव्वा, जया णं भंते! जम्बुद्दीवे २ मंदरस्स दाहिणड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि पढमे अयणे पडिवज्जइ जहा समएणं अभिलावो तहेव अयणेणवि भाणिअव्वो जाव अणंतरपच्छाकडसमयंसि पढमे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयणे पडिवण्णे भवइ, जहा अयणेणं अभिलावो तहा संवच्छरेणवि भाणिअवो जुएणवि वाससएणवि वाससह-स्सेणवि वाससयसहस्सेणवि पुव्वंगेणवि पुव्वेणवि तुडिअंगेणवि तुडिएणवि, एवं पुव्वे २ तुडिए २ अडडे २ अववे २ हूहूए २ उप्पले २ पउमे २ णलिणे २ अत्थणिउरे २ अउए २ णउए अ २ पउए अ २ चूलिए अ २ सीसपहेलिए अ २ पलिओवमेणवि सागरोवमेणवि भाणिअवो, जया णं भन्ते! जम्बुदीवे दीवे दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, जया णं उत्तरड्ढे पढमा तया णं जम्बुदीवे दीवे मंदरस्स पवयस्स पुर-त्थिमपच्चत्थिमेणं–णेवत्थि ओसप्पिणी णेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो!, हंता गोअमा! तं चेव उच्चारेअवं जाव समणाउसो!, जहा ओसप्पिणीए आलावओ भणिओ एवं उस्सप्पिणीएवि भाणिअवो'त्ति अत्र व्याख्या—अथोक्तक्षेत्रविभागानुसारेण दिवसरात्रिविभागमाह–यदा भगवन्! जम्बूद्वीपे द्वीपे मेरुतो दक्षिणार्द्धे–दक्षिणभागे दिवसो भवति तदोत्तरार्द्धेऽपि दिवसो भवति, एकस्य सूर्यस्यैकदिशि मण्डलचारेऽपरस्य सूर्यस्य तत्सम्मु-खीनायामेवापरस्यां दिशि मण्डलचारसम्भवात्, इह यद्यपि यथा दक्षिणार्द्धे तथोत्तरार्द्धे इत्युक्तं तथापि दक्षिणभागे उत्तरभागे चेति बोध्यं, अर्द्धशब्दस्य भागमात्रार्थत्वात्, यतो यदि दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च समग्र एव दिवसः स्यात्तदा कथं पूर्वेणापरेण च रात्रिः स्यादिति वक्तुं युज्येत?, अर्द्धद्वयग्रहणेन सर्वक्षेत्रस्य गृहीतत्वात्, इतश्च दक्षिणार्द्धादिशब्देन दक्षिणादिभागमात्रमवसेयं, नत्वर्द्धं, तदा च जम्बूद्वीपे द्वीपे मंदरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यामपरस्यां च रात्रिर्भवति, तत्रैक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यापि सूर्यस्याभावात्, इत्येवं काक्वा प्रश्ने कृते भगवानाह–'हंता! गोअमे'त्यादि, यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे दिवसो यावद्रात्रिर्भवतीत्यन्तं प्रत्युच्चारणीयं। क्षेत्रपरावृत्त्या दिवसरात्रिविभागं पृच्छन्नाह–यदा भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वेण दिवसो भवति तदा पश्चिमायामपि दिवसो भवति, प्रागुक्तयुक्तेरेव, यदा च पश्चिमायां दिवसस्तदा मेरोर्दक्षिणोत्तरयो रात्रिः, प्रश्नसूत्रं चैतत्, 'हंता! गोअमे'त्यादि उत्तरसूत्रं तथैव, उक्तः सामान्यतो दिवसरात्रिविभागः, सम्प्रति तमेव विशेषत आह–यदा भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे उत्कर्षतोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवतीत्यादिकं सूत्रं प्रायो निगदसिद्धं, तथापि किञ्चिदेतद्वृत्त्यादिगतं लिख्यते–इह किल सूर्यस्य चतुरशीत्यधिकं मण्डलशतं भवति, तत्र किल जम्बूद्वीपमध्ये पञ्चषष्टिर्मण्डलानि भवन्ति, एकोनविंशत्यधिकं च शतं तेषां लवणसमुद्रमध्ये भवति, तत्र सर्वाभ्यन्तरे मण्डले यदा सूर्यो भवति तदाऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, यदा सर्वबाह्ये मण्डले सूर्यो भवति तदा सर्वजघन्यो द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, ततश्च द्वितीयमण्डलादारभ्य प्रतिमण्डलं द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां दिनस्य वृद्धौ त्र्यशीत्यधिकशततममण्डले षट् मुहूर्त्ता वर्द्धन्त इत्येवमष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, अत एव द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्य, 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे'त्ति यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरे मण्डले सूर्यो भवति तदा मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहीनोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स चाष्टादशमुहूर्त्तादिवसादनन्तरोऽष्टादशमुहूर्त्तानन्तर इति व्यपदिष्टः, 'सातिरेगा दुवालसमुहुत्ता राइ'त्ति तदा द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिका द्वादशमु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हूर्त्ता रात्रिर्भवति, यावता भागेन दिनं हीयते तावता रात्रिर्वर्द्धते, त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्येति, 'एवं एएणं कमेणं'ति एवमित्युपसंहारे एतेनानन्तरोक्तेनोपायेन 'जया णं भंते! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे' इत्येतेनेत्यर्थः, 'ऊसारेअव्वं'ति दिनमानं ह्रस्वीकार्यं, तदेव दर्शयति–'सत्तरसे'त्यादि, तत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरमण्डलादारभ्यैकत्रिंशत्तममण्डलार्द्धे यदा सूर्यस्तदा सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, पूर्वोक्तहानिक्रमेण त्रयोदशमुहूर्त्ता च रात्रिरिति, 'सत्तरसमुहुत्ताणंतरे'त्ति मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहीनसप्तदशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसोऽयं च द्वितीयादारभ्य द्वात्रिंशत्तममण्डलार्द्धे भवति, एवमनन्तरत्वमन्यत्राप्यूह्यं, 'सातिरेगतेरसमुहुत्ता राइ'त्ति मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयेन सातिरेकत्वं, एवं सर्वत्र, 'सोलसमुहुत्ते दिवसे'त्ति, द्वितीयादारभ्यैकषष्टितममण्डले षोडशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'पण्णरसमुहुत्ते दिवसे'त्ति द्विनवतितममण्डलार्द्धे वर्त्तमाने सूर्ये 'चोद्दसमुहुत्ते दिवसे'त्ति द्वाविंशत्युत्तरशततमे मण्डले 'तेरसमुहुत्ते दिवसे'त्ति सार्द्धद्विपञ्चाशदुत्तरशततमे मण्डले 'बारसमुहुत्ते दिवसे'त्ति त्र्यशीत्यधिकशततमे मण्डले सर्वबाह्ये इत्यर्थः! कालाधिकारादिदमाह–'जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे २ दाहिणड्ढे वासाण'मित्यादि, 'वासाण'मिति चतुर्मासप्रमाणवर्षाकालस्य सम्बन्धी प्रथमः–आद्यः समयः–क्षणः प्रतिपद्यते, सम्पद्यते भवतीत्यर्थः, तदोत्तरार्द्धेऽपि वर्षाणां प्रथमः समयो भवति, समकालनैयत्येन दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च सूर्ययोश्चारभावात्, यदा चोत्तरार्द्धे वर्षाकालस्य प्रथमः समयः तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वापरयोर्दिशोरनन्तरपुरस्कृते समये अनन्तरो–निर्व्यवधानो दक्षिणार्द्धवर्षाप्रथमतापेक्षया स चातीतोऽपि स्यादत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आह–पुरस्कृतः–पुरोवर्त्ती भविष्यन्नित्यर्थः समयः प्रतीतः ततः पदत्रयस्य कर्मधारयोऽतस्तत्र, तथा अनन्तरं पश्चात्कृते समये पूर्वापरविदेहवर्षाप्रथमसमयापेक्षया योऽनन्तरः पश्चात्कृतः–अतीतः समयस्तत्र दक्षिणोत्तरयोर्वर्षाकालप्रथमसमयो भवतीति, इह यस्मिन् समये दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च वर्षाकालस्य प्रथमः समयः तदनन्तरे अग्रेतने द्वितीये समये पूर्वपश्चिमयोर्वर्षाणां प्रथमः समयो भवतीत्येतावन्मात्रोक्तावपि यस्मिन् समये पूर्वपश्चिमयोः वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति ततोऽनन्तरे पश्चाद्भाविनि समये दक्षिणोत्तरार्द्धयोः वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवतीति गम्यते तत्किमर्थमस्योपादानं?, उच्यते, इह क्रमोत्क्रमाभ्यां अभिहितोऽर्थः प्रपञ्चितज्ञानां शिष्याणामतिसुनिश्चितो भवति ततस्तेषामनुग्रहायैतदुक्तमित्यदोषः। 'एवं जहा समएण'मित्यादि, एवं यथा समयेन वर्षाणामभिलापो भणितस्तथा आवलिकाया अपि भणितव्यः, स चैवं–'जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, जया णं उत्तरड्ढे वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ तया णं जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं अणंतरपुरेक्खडसमयंसि वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, तया णं जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं अणंतरपुरेक्खडसमयंसि वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ?, हंता गोअमा! जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ तहेव जाव पडिवज्जइ, जया णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं वासाणं पढमा आवलिआ पडि-

Jain Education Intern... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

वज्जइ, जया णं पञ्चत्थिमेणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, तया णं जम्बुदीवे २ मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं अणंतरपच्छाकडसमयंसि वासाणं पढमा आवलिआ पडिवण्णा भवइ?, हंता! गोअमे'त्यादि, तदेवोच्चारणीयमित्यर्थः, एवं आनप्राणादिपदेष्वपि, आवलिकाद्यर्थस्तु प्राग्वत्, 'हेमंताणं'ति शीतकालचतुर्मासानां, 'गिम्हाणं'ति ग्रीष्माणां चतुर्मासानां, 'पढमे अयणे'ति दक्षिणायनं श्रावणादित्वात् संवत्सरस्य 'जुएणवि'त्ति युगं पंचसंवत्सरमानं, अत्र च युगेन सहेत्यतिदेशकरणात् युगस्यापि दक्षिणोत्तरयोः पूर्वसमये प्रतिपत्तिः प्रागपरयोस्तु तदनन्तरे पुरोवर्तिनि समये प्रतिपत्तिः, ज्योतिष्करण्डे तु–'सावणबहुलपडिवए बालवकरणे अभीइणक्खत्ते । सव्वत्थ पढमसमए जुगस्स आइं विआणाहि ॥ १ ॥" इत्यस्या गाथाया व्याख्याने सर्वत्र भरते ऐरवते महाविदेहेषु च श्रावणमासे बहुलपक्षे-कृष्णपक्षे प्रतिपदि तिथौ बालवकरणे अभिजिन्नक्षत्रे प्रथमसमये युगस्यादिं विजानीहीतीदं वाचनान्तरं ज्ञेयं, यतो ज्यो-तिष्करण्डसूत्रकर्ता आचार्यो वालभ्यः एष भगवत्यादिसूत्रादर्शस्तु माथुरवाचनानुगत इति न किञ्चिदनुचितं, युक्त्या-नुकूल्यं तु न युगपत्प्रतिपत्तिसमये सम्भावयामः, तथाहि—'सव्वे कालविसेसा सूरपमाणेण हुंति नायव्वा' इति वच-

१ मासपक्षतिथिकरणादीनां सर्वेषामप्यनन्तरतया भवनात् तत्तत्क्षेत्रविवक्षया समयपरावृत्त्या मासादीनां भवनं सर्वत्र चोक्तेष्वेव मासादिषु युगादिरिति न कोऽपि वाचनान्तरताहेतुः, चन्द्रकर्मसंवत्सराणां प्रतिवर्षं समादिपर्यवसानते न स्तः किंतु युगाद्यन्तयोरेवेति वचनप्रयोजनं ज्ञायते ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाद् यदि सूर्यचारविशेषेण कालविशेषप्रतिपत्तिर्दक्षिणोत्तरयोराद्यसमये प्रागपरयोरुत्तरसमये तर्हि दक्षिणोत्तरप्रतिपत्तिसमये पूर्वकालस्यापर्यवसानं वाच्यं, पूर्वापरविदेहापेक्षयाऽस्त्येव तदिति चेत् सूर्ययोश्चीर्णचरणं अपरं वा सूर्यद्वयं वाच्यं, ययोश्चारविशेषाद्दक्षिणोत्तरप्रतिपत्तिसमयापेक्षयोत्तरसमये पूर्वापरयोः कालविशेषप्रतिपत्तिरित्यादिको भूयान् परवचनावकाश इत्यलं प्रसङ्गेन, 'पुव्वंगेणवि'त्ति पूर्वाङ्गं–चतुरशीतिवर्षलक्षप्रमाणं "पुव्वेणवि'त्ति पूर्वं–पूर्वाङ्गमेव चतुरशीतिवर्षलक्षगुणितं, एवं चतुरशीतिवर्षलक्षगुणितमुत्तरोत्तरं स्थानं भवति, चतुर्णवत्यधिकं चाङ्कशतमन्तिमे स्थाने भवतीति, 'पढमा ओस्सप्पिणी'ति अवसर्पिण्याः प्रथमो विभागः प्रथमाऽवसर्प्पिणी, 'जया णं भन्ते! दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि,' इत्यादि व्यक्तं, नवरं नैवास्त्यवसर्पिणी नैवास्त्युत्सर्पिणी, कुत इत्याह–अवस्थितः–सर्वथा एकस्वरूपस्तत्र कालः प्रज्ञप्तः हे श्रमण! हे आयुष्मन्! इति, अथ प्रस्तुताधिकारमुपसंहरन्नाह–'इचेसा जम्बुद्दीवे'इत्यादि, इत्येषा–अनन्तरोक्तस्वरूपा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः–आद्यद्वीपस्य यथावस्थितस्वरूपनिरूपिका ग्रन्थपद्धतिस्तस्यामस्मिन्नुपाङ्गे इत्यर्थः, सूत्रे च विभक्तिव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, सूर्यप्रज्ञप्तिः–सूर्याधिकारप्रतिबद्धा पदपद्धतिर्वस्तूनां–मण्डलसङ्ख्यादीनां समासः–सूर्यप्रज्ञप्त्यादिमहाग्रन्थापेक्षया संक्षेपस्तेन समाप्ता भवति । अथ चन्द्रवक्तव्यप्रश्नमाह—'जम्बुद्दीवे ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे चन्द्रावुदीचीनप्राचीनदिग्भागे उद्गत्य प्राचीनदक्षिणदिग्भागे आगच्छतः इत्यादि यथा सूरवक्तव्यता तथा चन्द्रवक्तव्यता, यथा वाशब्दोऽत्र गम्यः पञ्चमशतस्य दशमे उद्दे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०]

दीप अनुक्रम [२७७]

शके चन्द्रनाम्नि, कियत्पर्यन्तं सूत्रं ग्राह्यमित्याह—यावदवस्थितः तत्र कालः प्रज्ञप्तः हे श्रमण! हे आयुष्मन्! इति, अत्राप्युपसंजिहीर्षुराह–'इच्चेसा'इत्यादि, व्याख्यानं पूर्ववत्, परं सूर्यप्रज्ञप्तिस्थाने चन्द्रप्रज्ञप्तिर्वाच्या ॥ एतेषां ज्योतिष्काणां चारविशेषात् संवत्सरविशेषाः प्रवर्त्तन्त इति तद्भेदप्रश्नमाह—

कति णं भन्ते! संवच्छरा पण्णत्ता?, गो० ! पंच संवच्छरा पं०, तं०–णक्खत्तसंवच्छरे जुगसंवच्छरे पमाणसंवच्छरे लक्खणसंवच्छरे सणिच्छरसंवच्छरे। णक्खत्तसंवच्छरे णं भन्ते! कइविहे पण्णत्ते?, गोअमा! दुवालसविहे पं०, तं०–सावणे भद्दवए आसोए जाव आसाढे, जं वा विहप्फई महग्गहे दुवालसेहिं संवच्छरेहिं सव्वणक्खत्तमंडलं समाणेइ सेत्तं णक्खत्तसंवच्छरे। जुगसंवच्छरे णं भन्ते! कतिविहे पण्णत्ते?, गोअमा! पंचविहे पं०, तंजहा—चंदे चंदे अभिवद्धिए चंदे अभिवद्धिए चेवेति, पढमस्स णं भन्ते! चन्दसंवच्छरस्स कइ पव्वा पण्णत्ता?, गो० चोव्वीसं पव्वा पण्णत्ता, बितिअस्स णं भन्ते! चन्दसंवच्छरस्स कइ पव्वा पण्णत्ता?, गो० ! चउव्वीसं पव्वा पण्णत्ता, एवं पुच्छा ततिअस्स, गो० ! छव्वीसं पव्वा प०, चउत्थस्स चन्दसंवच्छरस्स चोव्वीसं पव्वा, पंचमस्स णं अहिवद्धिअस्स छव्वीसं पव्वा य पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं पंचसंवच्छरिए जुए एगे चउव्वीसे पव्वसए पण्णत्ते, सेत्तं जुगसंवच्छरे । पमाणसंवच्छरे णं भन्ते! कतिविहे पण्णत्ते?, गोअमा! पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—णक्खत्ते चन्दे उऊ आइच्चे अभिवद्धिए, सेत्तं पमाणसंवच्छरे इति। लक्खणसंवच्छरे णं भन्ते! कतिविहे पण्णत्ते?, गोअमा! पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—"समयं नक्खत्ता जोगं जोअंति समयं उऊ परिणामंति। णचुण्ह णाइसीओ बहूदओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ संवत्सराणां नक्षत्र-संवत्सर आदि पञ्चभेदानाम् प्ररुपणा क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

होइ णक्खत्ते ॥ १ ॥ ससि समगपुण्णमासिं जोएती विसमचारिणक्खत्ता । कडुओ बहुदओ आ तमाहु संवच्छरं चन्दं ॥ २ ॥ विसमं पवालिणो परिणमन्ति अणुऊसु दिंति पुप्फफलं । वासं न सम्म वासइ तमाहु संवच्छरं कम्मं ॥ ३ ॥ पुढविदगाणं च रसं पुप्फफलाणं च देइ आइच्चो । अप्पेणवि वासेणं सम्मं निप्फज्जए सस्सं ॥ ४ ॥ आइच्चतेअतविआ खणलवदिवसा उऊ परिणमन्ति । पूरेइ अ णिण्णथले तमाहु अभिवद्धिअं जाण ॥ ५ ॥ सणिच्छरसंवच्छरे णं भन्ते! कतिविहे पण्णत्ते?, गोअमा! अट्ठावीसइविहे पण्णत्ते, तंजहा—अभिई सवणे धणिट्ठा सयभिसया दो अ होंति भद्दवया । रेवइ अस्सिणि भरणी कत्तिअ तह रोहिणी चेव ॥ १ ॥ जाव उत्तराओ आसाढाओ जं वा सणिचरे महग्गहे तीसाए संवच्छरेहिं सव्वं णक्खत्तमण्डलं समाणेइ सेत्तं सणिच्चरसंवच्छरे (सूत्रं १५१) ।

तत्र नक्षत्रेषु भवो नाक्षत्रः, किमुक्तं भवति?—चन्द्रश्चारं चरन् यावता कालेनाभिजित आरभ्योत्तराषाढानक्षत्रपर्यन्तं गच्छति तत्प्रमाणो नाक्षत्रो मासः, यदिवा चन्द्रस्य नक्षत्रमण्डले परिवर्त्तनतानिष्पन्न इत्युपचारतो सासोऽपि नक्षत्रं, स च द्वादशगुणो नक्षत्रसंवत्सरः, तथा युगसंवत्सरः पञ्चसंवत्सरात्मकं युगं तदेकदेशभूतो वक्ष्यमाणलक्षणश्चन्द्रादिर्युगपूरकत्वाद्युगसंवत्सरः, प्रमाणं—परिमाणं दिवसादीनां तेनोपलक्षितो वक्ष्यमाण एव नक्षत्रसंवत्सरादिः प्रमाणसंवत्सरः, स एव लक्षणानां वक्ष्यमाणस्वरूपाणां प्रधानतया लक्षणसंवत्सरः, यावता कालेन शनैश्चरो नक्षत्रमेकमथवा द्वादशापि राशीन् भुङ्क्ते स शनैश्चरसंवत्सर इति । नामनिरुक्तमुक्त्वाऽथैतेषां भेदानाह—'णक्खत्त'इत्यादि, नक्षत्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४८६॥

संवत्सरो भगवन्! कतिविधः प्रज्ञप्त?, गौतम! द्वादशविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रावणः भाद्रपदः आश्विनः यावत्पदात् कार्त्तिकादिसंग्रहः, द्वादश आषाढः, अयं भावः–इह एकः समस्तनक्षत्रयोगपर्यायो द्वादशभिर्गुणितो नक्षत्रसंवत्सरः, ततो ये नक्षत्रसंवत्सरस्य पूरका द्वादशसमस्तनक्षत्रयोगपर्यायाः श्रावणभाद्रपदादिनामानस्तेऽप्यवयवे समुदायोपचारात् नक्षत्रसंवत्सरः, ततः श्रावणादिद्वादशविधो नक्षत्रसंवत्सरः, वा इति पक्षान्तरसूचने, अथवा बृहस्पतिर्महाग्रहो द्वादशभिः संवत्सरैः योगमधिकृत्य यत्सर्वं नक्षत्रमण्डलमभिजिदादीन्यष्टाविंशतिनक्षत्राणि परिसमापयति तावान् कालविशेषो द्वादशवर्षप्रमाणो नक्षत्रसंवत्सरः। अथ द्वितीयः 'जुगसंवच्छरे'इत्यादि, प्रश्नः प्रतीतः, उत्तरसूत्रे गौतम! युगसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तथाहि–चन्द्रश्चन्द्रोऽभिवर्धितश्चन्द्रोऽभिवर्द्धितश्च, चन्द्रे भवश्चान्द्रः, युगादौ श्रावणमासे बहुलपक्षप्रतिपदः आरभ्य यावत्पौर्णमासीपरिसमाप्तिस्तावत्कालप्रमाणश्चान्द्रो मासः, एकपूर्णिमासीपरावर्तश्चान्द्रो मास इतियावत्, अथवा चन्द्रनिष्पन्नत्वादुपचारतो मासोऽपि चन्द्रः, स च द्वादशगुणश्चन्द्रसंवत्सरः, चन्द्रमासनिष्पन्नत्वादिति, द्वितीयतुर्यावप्येवं व्युत्पत्तितोऽवगन्तव्यौ, तृतीयस्तु युगसंवत्सरोऽभिवर्द्धितो नाम मुख्यतस्त्रयोदशचन्द्रमासप्रमाणः संवत्सरो द्वादश[चन्द्र]मासप्रमाणः संवत्सर उपजायते, कियता कालेन सम्भवतीत्युच्यते–इह युगं चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभिवर्द्धितरूपपञ्चसंवत्सरात्मकं सूर्यसंवत्सरापेक्षया परिभाव्यमानमन्यूनातिरिक्तानि पंच वर्षाणि भवन्ति, सूर्यमासश्च सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणश्चन्द्रमासश्चैकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिर्भागा दिनस्य

७वक्षस्कारे संवत्सर-भेदाः सू. १५१

॥४८६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

श्रीजम्बू. ८२

ततो गणितसम्भावनया सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे एकश्चान्द्रमासोऽधिको लभ्यते, स च यथा लभ्यते तथा पूर्वाचार्यप्रदर्शितेयं करणगाथा "चंदस्स जो विसेसो आइच्चस्स य हविज्ज मासस्स । तीसइगुणिओ संतो हवइ हु अहिमासगो इक्को ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका–आदित्यसम्बन्धिनो मासस्य मध्यात् चन्द्रस्य–चन्द्रमासस्य यो भवति विश्लेषः, इह विश्लेषे कृते सति यदवशिष्यते तदप्युपचाराद्विश्लेषः, स त्रिंशता गुणितः सन् भवत्येकोऽधिकमासः, तत्र सूर्यमासपरिमाणात् सार्द्धत्रिंशदहोरात्ररूपाच्चन्द्रमासपरिमाणमेकोनत्रिंशदिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्येत्येवंरूपं शोध्यते ततः स्थितं पश्चाद्दिनमेकमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनं तच्च दिनं त्रिंशता गुण्यते जातानि त्रिंशद्दिनानि एकश्च द्वाषष्टिभागस्त्रिंशता गुणितो जाताः त्रिंशद् द्वाषष्टिभागास्ते त्रिंशद्दिनेभ्यः शोध्यन्ते ततः स्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य एतावत्परिमाणश्चन्द्रमास इति भवति सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिकमासो, युगे च सूर्यमासाः षष्टिः ततो भूयोऽपि सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे द्वितीयोऽधिकमासो भवति, उक्तं च–"सट्ठीए अइआए हवइ हु अहिमासगो जुगद्धंमि । बावीसे पवसए हवइ अ बीओ जुगंतंमि ॥ १ ॥" अस्याप्यक्षरगमनिका–एकस्मिन् युगे–अनन्तरोदितस्वरूपे पर्वणां–पक्षाणां षष्ठौ अतीतायां–षष्टिसङ्ख्येषु पक्षेष्वतिक्रान्तेषु इत्यर्थः एतस्मिन् अवसरे युगार्द्धे–युगार्द्धप्रमाणे एकोऽधिकमासो भवति, द्वितीयस्त्वधिकमासो द्वाविंशेद्वाविंशत्यधिके पर्वशते–पक्षशतेऽतिक्रान्ते युगस्यान्ते–युगस्य पर्यवसाने भवति, तेन युगमध्ये तृतीये संवत्सरेऽधिक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥४८७॥

मासः पञ्चमे वेति द्वौ युगेऽभिवर्द्धितसंवत्सरौ, यद्यपि सूर्यवर्षपंचकात्मके युगे चन्द्रमासद्वयवन्नक्षत्रमासाधिक्यसम्भवस्तथापि नक्षत्रमासस्य लोके व्यवहाराविषयत्वात्, कोऽर्थः?–यथा चन्द्रमासो लोके विशेषतो यवनादिभिश्च व्यवह्रियते तथा न नक्षत्रमास इति, एतेषां च नक्षत्रादिसंवत्सराणां मासदिनमानानयनादि प्रमाणसंवत्सराधिकारे वक्ष्यते। एते च चन्द्रादयः पञ्च युगसंवत्सराः पर्वभिः पूर्यन्ते इति तानि कति प्रतिवर्षं भवन्तीति पृच्छन्नाह—'पढमस्स ण'-मित्यादि, प्रथमस्य–युगादौ प्रवृत्तस्य भगवन्! चन्द्रसंवत्सरस्य कति पर्वाणि–पक्षरूपाणि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! चतुर्विंशतिः पर्वाणि, द्वादशमासात्मके(कत्वे)नास्य प्रतिमासं पर्वद्वयसम्भवात्, द्वितीयस्य चतुर्थस्य च प्रश्नसूत्रे एवमेव, अभिवर्धितसंवत्सरसूत्रे षड्विंशतिः पर्वाणि तस्य त्रयोदश चन्द्रमासात्मके(कत्वे)न प्रतिमासं पर्वद्वयसम्भवात्, एवमन्योऽभिवर्द्धितोऽपि, सर्वाग्रमाह–एवमेव पूर्वापरमीलनेन चतुर्विंशं पर्वशतं भवतीत्याख्यातम्। अथ तृतीयः–'पमाणसंवच्छरे'इत्यादि, प्रमाणसंवत्सरः कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम! पंचविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–नाक्षत्रं चान्द्रः ऋतुसंवत्सरः आदित्यः अभिवर्धितश्च, अत्र नक्षत्रचन्द्राभिवर्द्धिताख्याः स्वरूपतः प्रागभिहिताः, ऋतवो–लोकप्रसिद्धा वसन्तादयः तद्व्यवहारहेतुः संवत्सरः ऋतुसंवत्सरः, ग्रन्थान्तरे चास्य नाम सावनसंवत्सरः कर्मसंवत्सर इ(श्चे)ति, आदित्यचारेण दक्षिणोत्तरायणाभ्यां निष्पन्नः आदित्यसंवत्सरः। प्रमाणप्रधानत्वादस्य संवत्सरस्य प्रमाणमेवाभिधीयते, तस्य च मासप्रमाणाधीनत्वादादौ मासप्रमाणं, तथाहि–इह किल चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभिवर्द्धितनामकसंवत्सरपंचकप्रमाणे युगे

७वक्षस्कारे संवत्सर-भेदाः सू. १५१

॥४८७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहोरात्रराशिस्त्रिंशदधिकाष्टादशशतप्रमाणो भवति, कथमेतदवसीयते इति चेत्, उच्यते, इह सूर्यस्य दक्षिणमुत्तरं वाऽयनं त्र्यशीत्यधिकदिनशतात्मकं युगे च पंच दक्षिणायनानि पंच चोत्तरायणानि इति सर्वसङ्ख्यया दशायनानि, ततस्त्र्यशीत्यधिकं दिनशतं दशकेन गुण्यते इत्यागच्छति यथोक्तो दिनराशिः, एवंप्रमाणं दिनराशिं स्थापयित्वा नक्षत्र-चन्द्रऋत्वादिमासानां दिनानयनार्थं यथाक्रमं सप्तषष्ट्येकषष्टिषष्टिद्व्यषष्टिलक्षणैर्भागहारैर्भागं हरेत्, ततो यथोक्तं नक्षत्रादि-मासचतुष्कगतदिनपरिमाणमागच्छति, तथाहि–युगदिनराशि १८३० रूपः, अस्य सप्तषष्टिर्युगे मासा इति सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, यल्लब्धं तन्नक्षत्रमासमानं, तथाऽस्यैव युगदिनराशेः १८३० रूपस्य एकषष्टिर्युगे ऋतुमासा इति एकषष्ट्या भागहरणे लब्धं ऋतुमासमानं, तथा युगे सूर्यमासाः षष्टिरिति ध्रुवराशेः १८३० रूपस्य षष्ट्या भागहारे यल्लब्धं तत्सू-र्यमासमानं, तथाऽभिवर्द्धिते वर्षे तृतीये पंचमे वा त्रयोदश चन्द्रमासा भवन्ति तद्वर्षं द्वादशभागीक्रियते तत एकैको भागोऽभिवर्द्धितमास इत्युच्यते, इह किलाभिवर्द्धितसंवत्सरस्य त्रयोदशचन्द्रमासमानस्य दिनप्रमाणं त्र्यशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्व्यषष्टिभागाः, कथमिति चेत्, उच्यते–चन्द्रमासमानं दिन २९ $\frac{32}{62}$ एतद्रूपं त्रयोद-शभिर्गुण्यते जातानि सप्तसप्तत्युत्तराणि त्रीणि शतानि दिनानां, षोडशोत्तराणि चत्वारि शतानि चांशानां ते च दिनस्य द्व्यषष्टिभागास्ततो दिनानयनार्थं द्व्यषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धानि षड् दिनानि, तानि च पूर्वोक्तदिनेषु मील्यन्ते जातानि त्रीणि शतानि त्र्यशीत्यधिकानि दिनानां चतुश्चत्वारिंशच्च द्व्यषष्टिभागाः, ततो वर्षे द्वादश मासा (इति मासा) नयनाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

द्वादशभिर्भागो ह्रियते लब्धा एकत्रिंशदहोरात्राः, शेषास्तिष्ठन्त्यहोरात्रा एकादश, ते च द्वादशानां भागं न प्रयच्छन्ति तेन यदि एकादश चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागमीलनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते तदा पूर्णो राशिर्न त्रुट्यति शेषस्य विद्यमानत्वात्, तेन सूक्ष्मेक्षिकार्थं द्विगुणीकृतया द्वाषष्ट्या चतुर्विंशत्यधिकशतरूपया एकादश गुण्यन्ते जातं १३६४ चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा अपि सवर्णनार्थं द्विगुणीक्रियन्ते कृत्वा च मूलराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातं १४५२, एषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धमेकविंशत्युत्तरं शतं चतुर्विंशत्युत्तरशतभागानां, एतावदभिवर्द्धितमासप्रमाणं, एतेषां क्रमेणाङ्कस्थापना यथा—इदं च नाक्षत्रादिमासमानं, वर्षे द्वादश मासा इति द्वादशगुणं स्वस्ववर्षमानं जनयन्ति, स्थापना यथा—

दिन.	२७	२९	३०	३०	३१	दिन	३२७	३५४	३६०	३६६	३८३
भाग.	२१	३२	०	३०	१२१	भाग	५१	१२	०	०	४४
०	६२	६२	०	६०	१२४	०	६७	६७	०	०	६२
०	नक्षत्रः	चन्द्रः	ऋतुः	सूर्यः	अभिव०						

नाक्षत्रादिसंवत्सरमानं, स एष प्रमाणसंवत्सर इति निगमनवाक्यं, एषां च मध्ये ऋतुमासऋतुसंवत्सरावेव लोकैः पुत्रवृद्धिकलान्तरवृद्ध्यादिषु व्यवह्रियेते, निरंशकत्वेन सुबोधत्वात्, यदाह–"कम्मो निरंसयाए मासो ववहारकारगो

॥४८८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

लोए । सेसाउ संसयाए ववहारे दुक्करा घेत्तुं ॥ १ ॥" अत्र व्याख्या—आदित्यादिसंवत्सरमासानां मध्ये कर्मसंवत्सरसम्बन्धी मासो निरंशतया—पूर्णत्रिंशदहोरात्रप्रमाणतया लोकव्यवहारकारकः स्यात्, शेषास्तु सूर्यादयो व्यवहारे ग्रहीतुं दुष्कराः सांशतया न व्यवहारपथमवतरन्तीति, निरंशता चैवं—षष्टिः पलानि घटिका ते च द्वे मुहूर्त्तः ते च त्रिंशदहोरात्रः ते च पञ्चदश पक्षः तौ द्वौ मासः ते च द्वादश संवत्सर इति, शास्त्रवेदिभिस्तु सर्वेऽपि मासाः स्वस्वकार्येषु नियोजिताः, तथाहि—अत्र नक्षत्रमासप्रयोजनं सम्प्रदायगम्यं । "वैशाखे श्रावणे मार्गे, पौषे फाल्गुन एव हि । कुर्वीत वास्तुप्रारम्भं, न तु शेषेषु सप्तसु ॥ १ ॥" इत्यादौ चन्द्रमासस्य प्रयोजनं, ऋतुमासस्य तु पूर्वमुक्तं, 'जीवे सिंहस्थे धन्विमीनस्थितेऽर्के, विष्णौ निद्राणे चाधिमासे न लग्नं' इत्यादौ तु सूर्यमासाभिवर्द्धितमासयोरिति, पूर्वं नक्षत्रसंवत्सरादयः स्वरूपतो निरूपिताः अत्र तु दिनमानानयनादिप्रमाणकरणेन विशेषेण निरूपिता इति न पौनरुक्त्यं विभाव्यम्, निशीथभाष्यकाराशयेन 'नक्षत्रचन्द्रर्तुसूर्याभिवर्द्धितरूपकं मासपञ्चकं तद्द्वादशगुणः संवत्सर'इति संवत्सरपञ्चकमेव युक्तिमत्, अन्यथा उद्देशाधिकारे नक्षत्रसंवत्सरोद्देशकरणं युगसंवत्सराधिकारे चन्द्राभिवर्द्धितयोरुद्देशकरणं पुनः प्रमाणसंवत्सराधिकारे तेषामेव प्रमाणकरणमित्यादिकं गुरवे गौरवाय भवति, यत्तु स्थानाङ्गचन्द्रप्रज्ञप्त्यादावत्र चोपाङ्गे इत्थं संवत्सरपञ्चकवर्णनं तद् बहुश्रुतगम्यम्, अथ लक्षणसंवत्सरप्रश्नमाह—'लक्खणसंवच्छरे णं भन्ते !' इत्यादि, लक्षणसंवत्सरो भदन्त ! कतिविधः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! पंचविधः प्रज्ञप्तः, नक्षत्रादिभेदात्, तद्यथा—समकं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥४८९॥

समतया नक्षत्राणि–कृत्तिकादीनि योगं–कार्त्तिकीपूर्णिमास्यादितिथिभिः सह सम्बन्धं योजयन्ति कुर्वन्तीत्यर्थः, इदमुक्तं भवति–यानि नक्षत्राणि यासु तिथिषूत्सर्गतो भवन्ति–यथा कार्तिक्या कृत्तिकास्तानि तास्वेव यत्र भवन्ति, यथोक्तम्– "जेट्ठो वच्चइ मूलेण, सावणो धणिट्ठाहिं । अद्दासु अ मग्गसिरो, सेसा नक्खत्तनामिआ मास ॥ १ ॥"त्ति, तथा यत्र समतयैव ऋतवः परिणमन्ति न विषमतया, कार्त्तिक्या अनन्तरं हेमन्तर्तुः पौष्याः अनन्तरं शिशिरर्तुरित्येवमवतरन्तीति भावः, यश्च संवत्सरो नात्युष्णः नातिशीतः तथा च बहूदकः स च भवति लक्षणतो निष्पन्न इति नक्षत्रचारलक्षणलक्षितत्वात् नक्षत्रसंवत्सर इति, अत्र गाथाच्छन्दसि प्रथमार्द्धे मात्राया आधिक्यमप्यार्षत्वादस्य न दुष्टं, न ह्यार्षाणि छन्दांसि सर्वाणि व्यक्त्या वक्तुं शक्यानि, किञ्च यथादर्शनमनुसर्त्तव्यानि, एवमन्यत्रापि ज्ञेयमिति। अथ चन्द्रः-'ससि समग'इत्यादि, विभक्तिलोपात् शशिना समकं योगमुपगतानि विषमचारीणि–मासविसदृशनामकानि नक्षत्राणि तां तां पौर्णमासीं–मासान्ततिथिं योजयन्ति–परिसमापयन्ति यस्मिन्निति गम्यं, यश्च कटुकः–शीतातपरोगादिदोषबहुलतया परिणामदारुणो बहूदकः, चस्य दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, तमाहुर्महर्षयश्चान्द्रं–चन्द्रसम्बन्धिनं चन्द्रानुरोधात् तत्र मासानां परिसमाप्तेः, न माससदृशनामकनक्षत्रानुरोधतः । अथ कर्मोख्यः–'विसम'मित्यादि, यस्मिन् संवत्सरे वनस्पतयो विषमं–विषमकालं प्रवालिनः परिणमन्ति–प्रवालाः–पल्लवाङ्कुरास्तद्युक्तया परिणमन्ति, तथा अनृतुष्वपि–स्वस्वऋत्वभावेऽपि पुष्पं च फलं च ददति, अकाले पल्लवान् अकाले पुष्पफलानि दधते इत्यर्थः तथा वर्षे–वृष्टिं न

७वक्षस्कारे संवत्सर-भेदाः सू. १५१

॥४८९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

सम्यग् वर्षति–करोति मेघ इति तमाहुः–संवत्सरं कर्माख्यं । अथ सौरः–'पुढवि'इत्यादि, पृथिव्या उदकस्य च तथा पुष्पाणां फलानां च रसमादित्यः–आदित्यसंवत्सरो ददाति, तथा अल्पेनापि–स्तोकेनापि वर्षेण–वृष्ट्या शस्यं निष्पद्यते-अन्तर्भूतण्यर्थत्वात् शस्यं निष्पादयति, किमुक्तं भवति?–यस्मिन् संवत्सरे पृथिवी तथाविधोदकसम्पर्कादतीव सरसा भवति उदकमपि परिणामसुन्दररसोपेतं परिणमति पुष्पानां च–मधूकादिसम्बन्धिनां फलानां च–आम्रफलादीनां रसः प्रचुरो भवति, स्तोकेनापि वर्षेण धान्यं सर्वत्र सम्यक् निष्पद्यते तमादित्यसंवत्सरं पूर्वषय उपदिशन्ति । अथाभिवर्द्धितः–'आइच्च'इत्यादि, यस्मिन् संवत्सरे क्षणलवदिवसा ऋतव आदित्यतेजसा कृत्वा अतीवतप्ताः परिणमन्ति, यश्च सर्वाण्यपि निम्नस्थानानि स्थलानि च जलेन पूरयति तं संवत्सरं जानीहि यथा तं संवत्सरमभिवर्द्धितमाहुः पूर्वषय इति । सम्प्रति शनैश्चरसंवत्सरप्रश्नमाह—'सणिच्छर'इत्यादि, शनैश्चरसंवत्सरो भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम! अष्टाविंशतिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अभिजिच्छनैश्चरसंवत्सरः श्रवणशनैश्चरसंवत्सरः धनिष्ठाशनैश्चरसंवत्सरः शतभिषक्शनैश्चरसंवत्सरः पूर्वभद्रपदाश०सं० उत्तरभद्रपदाशनैश्चरसंवत्सरः रेवतीशनैश्चरसं० अश्विनीशनैश्चरसंवत्सरः भरणीशनैश्चरसंवत्सरः कृत्तिकाशनैश्चरसंवत्सरः रोहिणीश०सं० यावत्पदात् मृगशिरःशनैश्चरसंवत्सर इत्यादि ग्राह्यं, अन्ते चोत्तराषाढाशनैश्चरसंवत्सरः, तत्र यस्मिन् संवत्सरे अभिजिता नक्षत्रेण सह शनैश्चरो योगमुपादत्ते सोऽभिजिच्छनैश्चरसंवत्सरः श्रवणेन सह यस्मिन् संवत्सरे योगमुपादत्ते स श्रवणशनैश्चरसंवत्सरः, एवं सर्वत्र भावनीयं, अथवा शनै-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५१] + गाथा: दीप अनुक्रम [२७८--२८४]

श्वरो महाग्रहत्रिंशता संवत्सरैः सर्वनक्षत्रमण्डलमभिजिदादिकं समापयति एतावान् कालविशेषः त्रिंशद्वर्षप्रमाणः श्चनैश्चरसंवत्सर इति । उक्ताः संवत्सराः, अथैतेषु कति मासा भवन्तीति पृच्छन्नाह—

एगमेगस्स णं भन्ते! संवच्छरस्स कइ मासा पण्णत्ता?, गोअमा! दुवालस मासा पण्णत्ता, तेसि णं दुविहा णामधेज्जा पं० तं०—लोइआ लोउत्तरिआ य, तत्थ लोइआ णामा इमे, तं०—सावणे भद्दवए जाव आसाढे, लोउत्तरिआ णामा इमे, तंजहा—अभिणंदिए पइट्ठे अ, विजए पीइवद्धणे । सेअंसे य सिवे चेव, सिसिरे अ सहेमवं ॥ १ ॥ णवमे वसंतमासे, दसमे कुसुमसंभवे । एक्कारसे निदाहे अ, वणविरोहे अ बारसमे ॥ २ ॥ एगमेगस्स णं भन्ते! मासस्स कति पक्खा पण्णत्ता?, गोअमा! दो पक्खा पण्णत्ता, तं०—बहुलपक्खे अ सुक्कपक्खे अ। एगमेगस्स णं भन्ते! पक्खस्स कइ दिवसा पण्णत्ता?, गोअमा! पण्णरस दिवसा पण्णत्ता, तं०—पडिवादिवसे बितिआदिवसे जाव पण्णरसीदिवसे, एतेसि णं भंते! पण्णरसण्हं दिवसाणं कइ णामधेज्जा पण्णत्ता?, गोअमा! पण्णरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं०—पुव्वंगे सिद्धमणोरमे अ तत्तो मणोरहे चेव। जसभद्दे अ जसधरे छट्ठे सव्वकामसमिद्धे अ ॥ १ ॥ इंदमुद्धाभिसित्ते अ सोमणस धणंजए अ बोद्धव्वे ॥ अत्थसिद्धे अभिजाए अत्तसणे सयंजए चेव ॥ २ ॥ अग्गिवेसे उवसमे दिवसाणं होंति णामधेज्जा ॥ एतेसि णं भंते! पण्णरसण्हं दिवसाणं कति तिही पण्णत्ता?, गो०! पण्णरस तिही पण्णत्ता, तं०—नंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पंचमी। पुणरवि णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स दसमी। पुणरवि णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पण्णरसी, एवं ते तिगुणा तिहीओ सव्वेसिं दिवसाणंति । एगमेगस्स णं भंते! पक्खस्स कइ राईओ पण्णत्ताओ?, गोअमा! पण्णरस राईओ पण्णत्ताओ, तं०—पडिवाराई जाव पण्णरसीराई, एआसि णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ संवत्सरस्य मास-पक्ष-दिनानाम् नामानि प्रदर्श्यते

भंते ! पण्णरसण्हं राईणं कइ णामधेज्जा पण्णत्ता ?, गो० ! पण्णरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा—उत्तमा य सुणक्खत्ता, एलावच्चा जसोहरा । सोमणसा चेव तहा, सिरिसंभूआ य बोद्धव्वा ॥ १ ॥ विजया य वेजयन्ति जयंति अपराजिआ य इच्छा य । समाहारा चेव तहा तेआ य तहा अईतेआ ॥ २ ॥ देवाणंदा णिरई रयणीणं णामधिज्जाइं ॥ एयासि णं भंते ! पण्णरसण्हं राईणं कइ तिही पं० ?, गो० ! पण्णरस तिही पं०, तं०—उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा, पुणरवि उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा, पुणरवि उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा, एवं तिगुणा एते तिहीओ सव्वेसिं राईणं, एगमेगस्स णं भंते ! अहोरत्तस्स कइ मुहुत्ता पण्णत्ता ?, गोअमा ! तीसं मुहुत्ता पं०, तं०—रुद्दे सेए मित्ते वाउ सुवीए तहेव अभिचंदे । माहिंद बलव बंभे बहुसचे चेव ईसाणे ॥१॥ तट्ठे अ भाविअप्पा वेसमणे वारुणे अ आणंदे । विजए अ वीससेणे पायावच्चे उवसमे अ ॥ २ ॥ गंधव्व अग्गिवेसे सयवसहे आयवे य अममे अ । अणवं भोमे वसहे सव्वट्ठे रक्खसे चेव ॥३॥ (सूत्रं १५२)

एकैकस्य भदन्त ! संवत्सरस्य कति मासाः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! द्वादश मासाः प्रज्ञप्ताः, तेषां द्विविधानि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—लौकिकानि लोकोत्तराणि च, तत्र लोकः—प्रवचनबाह्यो जनस्तेषु प्रसिद्धत्वेन तत्सम्बन्धीनि लौकिकानि लोकः प्रागुक्त एव तस्मात्सम्यग्ज्ञानादिगुणयुक्तत्वेन उत्तराः—प्रधानाः लोकोत्तराः—जैनास्तेषु प्रसिद्धत्वेन तत्सम्बन्धीनि लोकोत्तराणि, अत्र बुद्धिविधानस्य वैकल्पिकत्वेन यथाश्रुतरूपसिद्धिः, तत्र लौकिकानि नामान्यमूनि, तद्यथा—श्रावणो भाद्रपदः यावत्करणात् आश्वयुजः कार्त्तिको मार्गशीर्षः पौषो माघः फाल्गुनश्चैत्रः वैशाखो ज्येष्ठ आषाढ इति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा: दीप अनुक्रम [२८५--२९८]

लोकोत्तराणि नामान्यमूनि, तद्यथा–प्रथमः श्रावणोऽभिनन्दितो द्वितीयः प्रतिष्ठितस्तृतीयो विजयः चतुर्थः प्रीतिवर्द्धनः पञ्चमः श्रेयान् षष्ठः शिवः सप्तमः शिशिरः अष्टमः हिमवान्, सूत्रे च पदपूरणाय सहशब्देन समासः तेन हिमवता सह शिशिर इत्यागतं शिशिरः हिमवांश्चेति नवमो वसन्तमासः दशमः कुसुमसम्भवः एकादशो निदाघः द्वादशो वनविरोह इति, अत्र सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ अभिनन्दितस्थाने अभिनन्दः वनविरोहस्थाने तु वनविरोधी इति। अथ प्रतिमासं कति पक्षा इति प्रश्नयन्नाह—'एगमेगस्स'इत्यादि, एकैकस्य भदन्त! मासस्य कति पक्षाः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! द्वौ पक्षौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा–कृष्णपक्षो यत्र ध्रुवराहुः स्वविमानेन चन्द्रविमानमावृणोति तेन योऽन्धकारबहुलः पक्षः स बहुलपक्षः शुक्लपक्षो यत्र स एव चन्द्रविमानमावृत्तं मुञ्चति तेन ज्योत्स्नाधवलिततया शुक्लः पक्षः स शुक्लपक्षः, द्वौ चकारौ तुल्यताद्योतनार्थं तेन द्वावपि पक्षौ सदृशतिथिनामकौ सदृशसङ्ख्याकौ भवत इति। अथानयोर्दिवससङ्ख्यां पृच्छन्नाचष्टे–'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य पक्षस्य कृष्णशुक्लान्यतरस्य भदन्त! कति दिवसाः प्रज्ञप्ताः?, यद्यपि दिवसशब्दोऽहोरात्रे रूढस्तथापि सूर्यप्रकाशवतः कालविशेषस्यात्र ग्रहणं, रात्रिविभागप्रश्नसूत्रस्याग्रे विधास्यमानत्वात्, गौतम! पञ्चदश दिवसाः प्रज्ञप्ताः, एतच्च कर्ममासापेक्षया द्रष्टव्यं, तत्रैव पूर्णाना पञ्चदशानामहोरात्राणां सम्भवात्तद्यथा–प्रतिपद्दिवसः प्रतिपद्यते पक्षस्यादयतया इति प्रतिपत् प्रथमो दिवस इत्यर्थः, तथा द्वितीया द्वितीयो दिवसो यावत्करणात् तृतीया तृतीयो दिवस इत्यादिग्रहः अन्ते पञ्चदशी पञ्चदशो दिवसः, एतेषां भदन्त! पञ्चदशानां दिवसानां कति! नामधेयानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा: दीप अनुक्रम [२८५--२९८]

प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! पञ्चदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–प्रथमः पूर्वाङ्गो द्वितीयः सिद्धमनोरमस्तृतीयः मनोहरः चतुर्थो यशोभद्रः पञ्चमो यशोधरः षष्ठः सर्वकामसमृद्धः सप्तम इन्द्रमूर्द्धाभिषिक्तोऽष्टमः सौमनसो नवमो धनञ्जयः दशमोऽर्थसिद्धः एकादशोऽभिजातो द्वादशोऽत्यशनः त्रयोदशः शतञ्जयः चतुर्दशोऽग्निवेश्म पञ्चदश उपशम इति दिवसानां भवन्ति नामधेयानि इति। सम्प्रत्येषां दिवसानां पञ्चदश तिथीः पिपृच्छिषुराह–'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषां–अनन्तरोक्तानां पञ्चदशानां दिवसानां भदन्त ! कति तिथयः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! पञ्चदश तिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नन्दो भद्रो जयस्तुच्छोऽन्यत्र रिक्तः पूर्णः, अत्र तिथिशब्दस्य पुंसि निर्दिष्टतया नन्दादिशब्दानामपि पुंसि निर्देशः, ज्योतिष्करण्डकसूर्यप्रज्ञप्तिवृत्त्यादौ तु नन्दा भद्रा जया इत्यादिस्त्रीलिङ्गनिर्देशेन संस्कारो दृश्यते, स च पूर्णः पञ्चदश तिथ्यात्मकस्य पक्षस्य पञ्चमी इति रूढः, एतेन पञ्चमीतः परेषां षष्ठ्यादितिथीना नन्दादिक्रमेणैव पुनरावृत्तिर्दर्शिता, तथैव सूत्रे आह–पुनरपि नन्दः भद्रः जयः तुच्छः पूर्णः, स च पक्षस्य दशमी, अनेन द्वितीया आवृत्तिः पर्यवसिता, पुनरपि नन्दः भद्रः जयः तुच्छः पूर्णः, स च पक्षस्य पञ्चदशी, उक्तमर्थं निगमयति–एवमुक्तरीत्या आवृत्तित्रयरूपया एते अनन्तरोक्ता नन्दाद्याः पंच त्रिगुणाः पञ्चदशसंख्याकास्तिथयः सर्वेषां–पञ्चदशानामपि दिवसानां भवन्ति, एताश्च दिवसतिथय उच्यन्ते, आह–दिवसतिथ्योः कः प्रतिविशेषो येन तिथिप्रश्नसूत्रस्य पृथग्विधानं ?, उच्यते, सूर्यचारकृतो दिवसः स च प्रत्यक्षसिद्ध एव, चन्द्रचारकृता तिथिः, कथमिति चेत् ?, उच्यते, पूर्वपूर्णिमापर्यवसानं प्रारभ्य द्वाष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा: दीप अनुक्रम [२८५--२९८]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥४९२॥

ष्टिभागीकृतस्य चन्द्रमण्डलस्य सदानावरणीयौ द्वौ भागौ वर्जयित्वा शेषस्य षष्टिभागात्मकस्य चतुर्भागात्मकः पंचदशो भागो यावता कालेन ध्रुवराहुविमानेन आवृतो भवति अमावास्यान्ते च स एव प्रकटितो भवति तावान् कालविशेषस्तिथिः। अथ रात्रिवक्तव्यप्रश्नमाह—'एगमेगस्स'इत्यादि, एकैकस्य भदन्त! पक्षस्य कति रात्रयोऽनन्तरोक्तदिवसानामेव चरमांशरूपाः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! पञ्चदश रात्रयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–प्रतिपद्रात्रिः यावत्करणाद् द्वितीयादिरात्रिपरिग्रहः, एवं पंचदशीरात्रिरिति। 'एआसि ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे गौतम! पञ्चदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–उत्तमा प्रतिपद्रात्रिः सुनक्षत्रा द्वितीयारात्रिः एलापत्या तृतीया यशोधरा चतुर्थी सौमनसा पञ्चमी श्रीसम्भूता षष्ठी विजया सप्तमी वैजयन्ती अष्टमी जयन्ती नवमी अपराजिता दशमी इच्छा एकादशी समाहारा द्वादशी तेजास्त्रयोदशी अतितेजाश्चतुर्दशी देवानन्दा पंचदशी निरत्यपि पंचदश्या नामान्तरं, इमानि रजनीनां नामधेयानि। यथा अहोरात्राणां दिवसरात्रिविभागेन संज्ञान्तराणि कथितानि तथा दिवसतिथिसंज्ञान्तराणि प्रागुक्तानि, अथ रात्रितिथिसंज्ञान्तराणि प्रश्नयन्नाह—'एतासि णं'इत्यादि, एतासां भदन्त! पञ्चदशानां रात्रीणां कति तिथयः प्रज्ञप्ताः? गौतम! पञ्च तिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–प्रथमा उग्रवती नन्दातिथिरात्रिः, द्वितीया भोगवती भद्रातिथिरात्रिः तृतीया यशोमती जयातिथिरात्रिः चतुर्थी सर्वसिद्धा तुच्छातिथिरात्रिः, पञ्चमी शुभनामा पूर्णतिथिरात्रिः, पुनरपि षष्ठी उग्रवती नन्दातिथिरात्रिः भोगवती भद्रातिथिः सप्तमी रात्रिः यशोमती जयातिथिरष्टमी रात्रिः सर्वसिद्धा तुच्छा-

७वक्षस्कारे मासपक्षादिनामानि सू. १५२

॥४९२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा: दीप अनुक्रम [२८५--२९८]

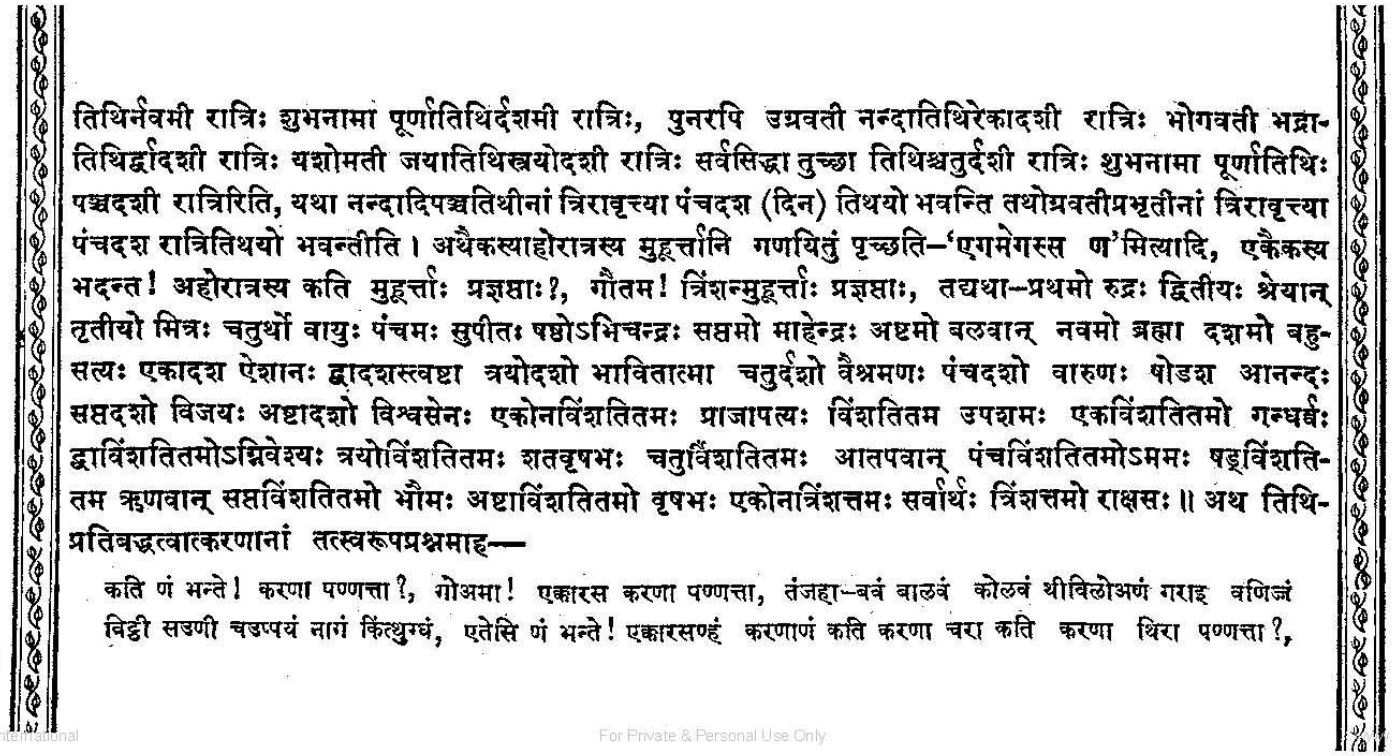

तिथिर्नवमी रात्रिः शुभनामा पूर्णातिथिर्दशमी रात्रिः, पुनरपि उग्रवती नन्दातिथिरेकादशी रात्रिः भोगवती भद्रातिथिर्द्वादशी रात्रिः यशोमती जयातिथिस्त्रयोदशी रात्रिः सर्वसिद्धा तुच्छा तिथिश्चतुर्दशी रात्रिः शुभनामा पूर्णातिथिः पञ्चदशी रात्रिरिति, यथा नन्दादिपञ्चतिथीनां त्रिरावृत्त्या पंचदश (दिन) तिथयो भवन्ति तथोग्रवतीप्रभृतीनां त्रिरावृत्त्या पंचदश रात्रितिथयो भवन्तीति। अथैकस्याहोरात्रस्य मुहूर्त्तानि गणयितुं पृच्छति–'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य भदन्त! अहोरात्रस्य कति मुहूर्त्ताः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! त्रिंशन्मुहूर्त्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–प्रथमो रुद्रः द्वितीयः श्रेयान् तृतीयो मित्रः चतुर्थो वायुः पंचमः सुपीतः षष्ठोऽभिचन्द्रः सप्तमो माहेन्द्रः अष्टमो बलवान् नवमो ब्रह्मा दशमो बहुसत्यः एकादश ऐशानः द्वादशस्त्वष्टा त्रयोदशो भावितात्मा चतुर्दशो वैश्रमणः पंचदशो वारुणः षोडश आनन्दः सप्तदशो विजयः अष्टादशो विश्वसेनः एकोनविंशतितमः प्राजापत्यः विंशतितम उपशमः एकविंशतितमो गन्धर्वः द्वाविंशतितमोऽग्निवेश्यः त्रयोविंशतितमः शतवृषभः चतुर्विंशतितमः आतपवान् पंचविंशतितमोऽममः षड्विंशतितम ऋणवान् सप्तविंशतितमो भौमः अष्टाविंशतितमो वृषभः एकोनत्रिंशत्तमः सर्वार्थः त्रिंशत्तमो राक्षसः॥ अथ तिथिप्रतिबद्धत्वात्करणानां तत्स्वरूपप्रश्नमाह—

कति णं भन्ते! करणा पण्णत्ता?, गोअमा! एक्कारस करणा पण्णत्ता, तंजहा–बवं बालवं कोलवं थीविलोअणं गराइ वणिजं विट्ठी सउणी चउप्पयं नागं किंथुग्घं, एतेसि णं भन्ते! एक्कारसण्हं करणाणं कति करणा चरा कति करणा थिरा पण्णत्ता?,

श्रीजम्बू. ८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'करण' संबंधी वक्तव्यता प्रस्तूयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५३]

दीप अनुक्रम [२९९]

गो० ! सत्त करणा चरा चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता, तंजहा—बवं बालवं कोलवं थिविलोअणं गरादि वणिजं विट्ठी, एते णं सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पं०, तं०—सउणी चउप्पयं णागं किंत्थुग्घं, एते णं चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता, एते णं भन्ते! चरा थिरा वा कया भवन्ति?, गोअमा! सुक्कपक्खस्स पडिवाए राओ बवे करणे भवइ, बितियाए दिवा बालवे करणे भवइ, राओ कोलवे करणे भवइ, ततिआए दिवा थीविलोअणं करणं भवइ, राओ गराइ करणं भवइ, चउत्थीए दिवा वणिजं राओ विट्ठी, पंचमीए दिवा ववं राओ बालवं, छट्ठीए दिवा कोलवं राओ थीविलोअणं, सत्तमीए दिवा गराइ राओ वणिज्जं अट्ठमीए दिवा विट्ठी राओ बवं नवमीए दिवा बालवं राओ कोलवं दसमीए दिवा थीविलोअणं राओ गराइं एक्कारसीए दिवा वणिज्जं राओ विट्ठी बारसीए दिवा बवं राओ बालवं तेरसीए दिवा कोलवं राओ थीविलोअणं चउद्दसीए दिवा गरातिं करणं राओ वणिज्जं पुण्णिमाए दिवा विट्ठीकरणं राओ बवं करणं भवइ, बहुलपक्खस्स पडिवाए दिवा बालवं राओ कोलवं बितिआए दिवा थीविलोअणं राओ गरादिं ततिआए दिवा वणिज्जं राओ विट्ठी चउत्थीए दिवा बवं राओ बालवं पंचमीए दिवा कोलवं राओ थीविलोअणं छट्ठीए दिवा गराइं राओ वणिज्जं सत्तमीए दिवा विट्ठी राओ बवं अट्ठमीए दिवा बालवं राओ कोलवं णवमीए दिवा थीविलोअणं राओ गराइं दसमीए दिवा वणिज्जं राओ विट्ठी एक्कारसीए दिवा बवं राओ बालवं बारसीए दिवा कोलवं राओ थीविलोअणं तेरसीए दिवा गराइं राओ वणिज्जं चउद्दसीए दिवा विट्ठी राओ सउणी अमावासाए दिवा चउप्पयं राओ णागं सुक्कपक्खस्स पाडिवए दिवा किंत्थुग्घं करणं भवइ (सूत्रं १५३)

'कति णं भन्ते!'इत्यादि, कति भदन्त! करणानि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! एकादश करणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—बवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालवं कौलवं स्त्रीविलोचनं अन्यत्रास्य स्थाने तैतिलमिति गरादि अन्यत्र गरं वणिजं विष्टिः शकुनिः चतुष्पदं नागं किंस्तुघ्नमिति। एतेषां च चरस्थिरत्वादिव्यक्तिप्रश्नमाह–'एतेसि णं'इत्यादि, एतेषां भदन्त! एकादशानां करणानां मध्ये कति करणानि चराणि कति करणानि स्थिराणि प्रज्ञप्तानि ?, चकारोऽत्र गम्यः, भगवानाह—गौतम! सप्त करणानि चराणि अनियततिथिभावित्वात् चत्वारि करणानि स्थिराणि नियततिथिभावित्वात्, तद्यथा—बवादीनि सूत्रोक्तानि ज्ञेयानि, एतानि सप्त करणानि चराणि इत्येतन्निगमनवाक्यं, चत्वारि करणानि स्थिराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–शकुन्यादीनि सूत्रोक्तानि, एतानि चत्वारि करणानि स्थिराणि प्रज्ञप्तानि इति तु निगमनवाक्यं, प्रारम्भकनिगमनवाक्यद्वयभेदेन नात्र पुनरुक्तिः ॥ एतेषां स्थाननियमं प्रष्टुमाह—'एतेसि ण'मित्यादि, सर्वं चैतन्निगदसिद्धम्, नवरं दिनरात्रिविभागेन यत्पृथक्कथनं तत्करणानां तिथ्यर्द्धप्रमाणत्वात्, कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ शकुनिः अमावास्यायां दिवा चतुष्पदं रात्रौ नागं शुक्लपक्षप्रतिपदि दिवा किंस्तुघ्नं चेति चत्वारि स्थिराणि, आस्वेव तिथिषु भवन्तीत्यर्थः। अथ यद्यपि सर्वस्यापि कालस्य सदा परिवर्त्तनस्वभावत्वेनाद्यन्ताभावाद्वक्ष्यमाणसूत्रारम्भोऽनुपपन्नस्तथाप्यस्त्येव कालविशेषस्याद्यन्तविचारः अतीतः पूर्वः संवत्सरः सम्प्रतिपन्नश्चोत्तरः संवत्सर इत्यादिव्यवहारस्याध्यक्षसिद्धत्वात्, तेन कालविशेषाणामादिं पृच्छति—

किमाइआ णं भन्ते! संवच्छरा किमाइआ अयणा किमाइआ उऊ किमाइआ मासा किमाइआ पक्खा किमाइआ अहोरत्ता किमाइआ मुहुत्ता किमाइआ करणा किमाइआ णक्खत्ता पण्णत्ता ?, गोअमा! चंदाइआ संवच्छरा दक्खिणाइया अयणा पाउसाइआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उऊ सावणाइआ मासा बहुलाइआ पक्खा दिवसाइआ अहोरत्ता रोहाइआ मुहुत्ता बालवाइआ करणा अभिजिआइआ णक्खत्ता पण्णत्ता समणाउसो! इति। पंचसंवच्छरिए णं भन्ते! जुगे केवइआ अयणा केवइआ उऊ एवं मासा पक्खा अहोरत्ता केवइआ मुहुत्ता पण्णत्ता?, गो०! पंचसंवच्छरिए णं जुगे दस अयणा तीसं उऊ सट्ठी मासा एगे वीसुत्तरे पक्खसए अट्ठारसतीसा अहोरत्तसया चउप्पण्णं मुहुत्तसहस्सा णव सया पण्णत्ता (सूत्रं १५४)

'किमाइआ ण'मित्यादि, कश्चन्द्रादिपंचकान्तर्वर्त्ती आदिः–प्रथमो येषां ते किमादिकाः संवत्सराः, इदं च प्रश्नसूत्रं चन्द्रादिसंवत्सरापेक्षया ज्ञेयं, अन्यथा परिपूर्णसूर्यसंवत्सरपंचकात्मकस्य युगस्य कः आदिः कश्चरम इति प्रश्नावकाशोऽपि न स्यात्, किं–दक्षिणोत्तरायणयोरन्यतरदादिर्ययोस्ते किमादिके अयने, बहुवचनं च सूत्रे प्राकृतत्वात्, कः प्रावृडादीनामन्यतर आदौ येषां ते किमादिकाः ऋतवः, कः श्रावणादिमध्यवर्त्ती आदिर्येषां ते किमादिका मासाः, एवं किमादिकौ पक्षौ किमादिका अहोरात्राः किमादिकानि करणानि किमादिकानि नक्षत्राणि प्रज्ञप्तानीति प्रश्नसूत्रं, भगवानाह–गौतम! चन्द्र आदिर्येषां ते चन्द्रादिकाः संवत्सराः, चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितचन्द्राभिवर्द्धितनामकसंवत्सरपंचकात्मकस्य युगस्य प्रवृत्तौ प्रथमतोऽस्यैव प्रवर्त्तनात्, न त्वभिवर्द्धितस्य, तस्य युगे त्रिंशन्मासातिक्रमे सद्भावादिति, ननु युगस्यादौ वर्त्तमानत्वात् चन्द्रसंवत्सरः संवत्सराणामादिरुक्तस्तर्हि युगस्यादित्वं कथं?, उच्यते, युगे प्रतिपद्यमाने सर्वे कालविशेषाः सुषमसुषमादयः प्रतिपद्यन्ते युगे पर्यवस्यति ते पर्यवस्यन्ति, अन्यच्च सकलज्योतिश्चारमूलस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यदक्षिणायनस्य चन्द्रोत्तरायणस्य च युगपत् प्रवृत्तिर्युगस्यादावेव सोऽपि चन्द्रायणस्याभिजिद्योगप्रथमसमय एव सूरायणस्य तु पुष्यस्य त्रयोविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु व्यतीतेषु तेन सिद्धं युगस्यादित्वमिति, तथा दक्षिणायनं–संवत्सरस्य प्रथमे षण्मासास्तदादिर्ययोस्ते तथा, आदित्वं चास्य युगप्रारम्भे प्रथमतः प्रवृत्तत्वात्, एतच्च सूर्यायनापेक्षं वचनं, चन्द्रायनापेक्षया तु उत्तरायणस्यादिता वक्तव्या स्यात्, युगारम्भे चन्द्रस्योत्तरायणप्रवृत्तत्वात्, प्रावृड्ऋतुः–आषाढश्रावणरूपमासद्वयात्मक आदिर्येषां ते प्रावृडादिका ऋतवः, युगादौ ऋत्वेकदेशस्य श्रावणमासस्य प्रवर्त्तमानत्वात्, एवं श्रावणादिका मासाः प्रागुक्तहेतोरेव, बहुलपक्षादिकौ पक्षौ श्रावणबहुलपक्ष एव युगादिप्रवृत्तेः, दिवसादिका अहोरात्राः, मेरुतो दक्षिणोत्तरयोः सूर्योदय एव युगप्रतिपत्तेः, भरतैरवतापेक्षया इदं वचनं, विदेहापेक्षया तु रात्रौ तत्प्रवृत्तेः, तथा रुद्रस्त्रिंशतो मुहूर्त्तानां मध्ये प्रथमः स आदिर्येषां ते तथा प्रातस्तस्यैव प्रवृत्तेः, तथा बालवादिकानि करणानि, बहुलप्रतिपद्दिवसे तस्यैव सम्भवात्, तथाऽभिजिदादिकानि नक्षत्राणि, तत एवारभ्य नक्षत्राणां क्रमेण युगे प्रवर्त्तमानत्वात्, तथाहि–उत्तराषाढानक्षत्रचरमसमयपार्श्वात्ये युगस्यान्तः ततोऽभिनवयुगस्यादिनक्षत्रमभिजिदेवेति, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, अन्ते च सम्बोधनं शिष्यस्य पुनः प्रश्नविषयकौद्यमविधापनार्थं अत एवोल्लसन्मना युगे युगेऽयनादिप्रमाणं पृच्छति–'पंचसंवच्छरिए णं भन्ते! जुगे'इत्यादि, पञ्च संवत्सरा सौरा मानमस्येति पञ्चसंवत्सरिकं युगं, अनेन नोत्तरसूत्रेण दश अयना इत्यादिकेन विरोधः, चन्द्रसंवत्सरोपयोगिनां चन्द्रायणानां तु चतुस्त्रिंशदधिकशतस्य सम्भवात्, तत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५४]

दीप अनुक्रम [३००]

॥४९५॥

भदन्त! कत्ययनानि प्रज्ञप्तानि?, कियन्त ऋतवः, एवमिति सौत्रं पदं एवं सर्वत्र योजना कार्येत्यर्थाभिव्यञ्जकं, तेन कियन्तो मासाः पक्षाः अहोरात्राः कियन्तो मुहूर्त्ता प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! पञ्चसंवत्सरिके युगे दश अयनानि, प्रतिवर्षमयनद्वयसम्भवात्, एवं त्रिंशदृतवः प्रत्ययनं ऋतुत्रयसम्भवात्, अत्र सूर्यसंवत्सरषष्ठांश एकषष्टिदिनमानः सूर्यऋतुरेव, न तु ऋतुसंवत्सरषष्ठांशः षष्टिदिनप्रमाणो लौकिकर्त्तुः, तथा च सति षष्टिर्मासा इत्युत्तरसूत्रं विरुणद्धि, तथा षष्टिर्मासाः सौराः प्रतिऋतु मासद्वयसम्भवात्, एकविंशत्युत्तरं पक्षशतं, प्रतिमासं पक्षद्वयसम्भवात्, अष्टादश शतानि त्रिंशदधिकान्यहोरात्राणां प्रत्ययनं १८३ अहोरात्रास्ते च दशगुणाः १८३०, मुहूर्त्ताश्च चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि नव च शतानि प्रत्यहोरात्रं त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति युगाहोरात्राणां १८३० सङ्ख्याङ्कानां त्रिंशता गुणने उक्तसङ्ख्यासम्भवात्॥ उक्तं चन्द्रसूर्यादीनां गत्यादिस्वरूपम्, अथ योगादीन् दशार्थान् विवक्षुर्द्वारगाथामाह—

जोगा १ देवय २ तारग ३ गोत्त ४ संठाण ५ चंदरविजोगा ६। कुल ७ पुण्णिम अवमंसा य ८ सण्णिवाए ९ अ णेता य १०॥१॥ कति णं भन्ते! णक्खत्ता पं०?, गो०! अट्ठावीसं णक्खत्ता पं०, तं०–अभिई १ सवणो २ धणिट्ठा ३ सयभिसया ४ पुव्वभद्दवया ५ उत्तरभद्दवया ६ रेवई ७ अस्सिणी ८ भरणी ९ कत्तिआ १० रोहिणी ११ मिअसिर १२ अद्दा १३ पुणव्वसू १४ पूसो १५ अस्सेसा १६ मघा १७ पुव्वफग्गुणि १८ उत्तरफग्गुणि १९ हत्थो २० चित्ता २१ साई २२ विसाहा २३ अणुराहा २४ जिट्ठा २५ मूलं २६ पुव्वासाढा २७ उत्तरासाढा २८ इति। (सूत्रं १५५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग एवं करणस्य नामानि प्रदर्श्यते

'जोगो देवय' इत्यादि, योगोऽष्टाविंशतेर्नक्षत्राणा किं नक्षत्रं चन्द्रेण सह दक्षिणयोगि किं नक्षत्रमुत्तरयोगि इत्यादिको दिग्योगः १ देवताः–नक्षत्रदेवताः २ ताराग्रं–नक्षत्राणां तारापरिमाणं ३ गोत्राणि नक्षत्राणां ४ संस्थानानि नक्षत्राणा ५ चन्द्ररवियोगो–नक्षत्राणां चन्द्रेण रविणा च सह योगः ६, कुलानि–कुलसंज्ञकानि नक्षत्राणि उपलक्षणादुपकुलानि कुलोपकुलानि च ७ कति पूर्णिमाः कति अमावास्याश्च ८ सन्निपातः–एतासामेव पूर्णिमामावास्यानां परस्परापेक्षया नक्षत्राणां सम्बन्धः ९, चः समुच्चये, नेता–मासस्य परिसमापकस्त्रिचतुरादिनक्षत्रगणः १०, चः समुच्चये, छायाद्वारं तु नेतृद्वारानुयायित्वेन न पृथक्कृतमिति॥ अथ चन्द्रस्य नक्षत्रैः सह दक्षिणादिदिग्योगो भवति तेन प्रथमतो नक्षत्रपरिपाटीमाह—'कति णं भन्ते !'इत्यादि, अत्र शब्दसंस्कारा इमे, अभिजित् १ श्रवणः २ धनिष्ठा ३ शतभिषक् ४ पूर्वभद्रपदा ५ उत्तरभद्रपदा ६ रेवती ७ अश्विनी ८ भरणी ९ कृत्तिका १० रोहिणी ११ मृगशिरः १२ आर्द्रा १३ पुनर्वसु १४ पुष्यः १५ अश्लेषा १६ मघा १७ पूर्वाफाल्गुनी १८ उत्तराफाल्गुनी १९ हस्तः २० चित्रा २१ स्वातिः २२ विशाखा २३ अनुराधा २४ ज्येष्ठा २५ मूलं २६ पूर्वाषाढा २७ उत्तराषाढा २८, अयं च नक्षत्रावलिकाक्रमोऽश्विन्यादिकं कृत्तिकादिकं वा लौकिकं क्रममुल्लङ्घ्य यज्जिनप्रवचने दर्शितः स युगादौ चन्द्रेण सहाभिजिद्योगस्य प्रथमं प्रवृत्तत्वात्, न चात्र 'बहि मूलोऽभंतरे अभिई' इति वचनादभिजितः सर्वतोऽभ्यन्तरस्थायित्वेन नक्षत्रावलिकाक्रमेण पूर्वमुपन्यास इति वाच्यं, नक्षत्रक्रमनियमे चन्द्रयोगक्रमस्यैव कारणत्वात् न तु सर्वाभ्यन्तरादिमण्डलस्थायित्वस्य अन्यथा षष्ठादिमण्ड-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लस्थायिनां कृत्तिकादीनां भरण्यनन्तरमुपन्यासो न स्यात्, अथ यद्यभिजितः प्रारभ्य नक्षत्रावलिकाक्रमः क्रियते तर्हि सप्तविंशतिनक्षत्राणामिव कथमस्य व्यवहारासिद्धत्वं?, उच्यते, अस्य चन्द्रेण सह योगकालस्याल्पीयस्त्वेन नक्षत्रान्तरानुप्रविष्टतया विवक्षणात्, यदुक्तं समवायाङ्गे सप्तविंशतितमे समवाये–"जम्बुद्दीवे दीवे अभिईवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्ताहिं सैंववहारे वट्टइ" एतद्वृत्तिर्यथा–"जम्बूद्वीपे न धातकीखण्डादौ अभिजिद्वर्जैः सप्तविंशत्या नक्षत्रैः व्यवहारः प्रवर्त्तते, अभिजिन्नक्षत्रस्योत्तराषाढाचतुर्थपादानुप्रवेशनादिति," ॥ अथ प्रथमोद्दिष्टं योगद्वारमाह—

एतेसि णं भन्ते! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं सया चन्दस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेणं जोअं जोएंति कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणंवि उत्तरेणवि पमद्दंपि जोगं जोएंति कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणंपि पमद्दंपि जोअं जोएंति कयरे णक्खत्ता जे णं सया चन्दस्स पमद्दं जोअं जोएंति?, गो० ! एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति ते णं छ, तंजहा–संठाण १ अद्द २ पुस्सो ३ ऽसिलेस ४ हत्थो ५ तहेव मूलो अ ६ । बाहिरओ बाहिरमंडलस्स छप्पेत णक्खत्ता ॥ १ ॥ तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चन्दस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति ते णं बारस, तं०–अभिई सवणो धणिट्ठा सयभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया रेवइ अस्सिणी भरणी पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी साई, तत्थ णं जे ते नक्खत्ता जे णं सया चन्दस्स दाहिणओवि उत्तरओवि पमद्दंपि जोगं जोएंति ते णं सत्त, तंजहा–कत्तिआ रोहिणी पुणव्वसू मघा चित्ता विसाहा अणुराहा, तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चन्दस्स दाहिणओवि पम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंपि जोगं जोएंति, ताओ णं दुवे आसाढाओ सव्वबाहिरए मंडले जोगं जोअंसु वा ३, तत्थ णं जे से णक्खत्ते जे णं सया चन्दस्स पमद्दं जोएइ सा णं एगा जेट्ठा इति । (सूत्रं १५६)

'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषां भदन्त ! अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये कतराणि नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्य दक्षिणेन-दक्षिणस्यां दिशि व्यवस्थितानि योगं योजयन्ति ?-सम्बन्धं कुर्वन्ति १ तथा कतराणि नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्योत्तरस्यां दिशि व्यवस्थितानि योगं योजयन्ति २ तथा कतराणि नक्षत्राणि यानि चन्द्रस्य दक्षिणस्यामप्युत्तरस्यामपि प्रमर्दमपि-नक्षत्रविमानानि विभिद्य मध्ये गमनरूपं योगं योजयन्ति, केषां नक्षत्रविमानानां मध्येन चन्द्रो गच्छतीत्यर्थः ३ तथा कतराणि नक्षत्राणि यानि चन्द्रस्य दक्षिणस्यामपि प्रमर्दमपि योगं योजयन्ति ४ तथा कतरन्नक्षत्रं यत् सदा चन्द्रस्य प्रमर्दं योगं योजयति ? ५, भगवानाह-गौतम ! एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां दिग्विचारं ब्रूम इति शेषः, तत्र यानि तानीति भाषामात्रे नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्य दक्षिणस्यां योगं योजयन्ति तानि षट्, तद्यथा—संस्थानं-मृगशिरः १ आर्द्रा २ पुष्यः ३ अश्लेषा ४ हस्तः ५ तथैव मूलश्च ६ बहिस्तात् बाह्यमण्डलस्य-चंद्रसत्कपञ्चदशम-ण्डलस्य भवन्ति, कोऽर्थः ?-समग्रचारक्षेत्रप्रान्तवर्तित्वादिमानि दक्षिणदिग्व्यवस्थायीनि चंद्रश्च द्वीपतो मण्डलेषु चरन् २ तेषामुत्तरस्थायीति दक्षिणदिग्योगः, ननु 'बहिं मूलोऽब्भंतरे अभिई' इति वचनात् मूलस्यैव बहिश्चरत्वं तथाऽभिजित एवाभ्यन्तरचरत्वं तर्हि कथमत्र षडित्युक्तानि, वक्ष्यमाणेऽनन्तरसूत्रे च द्वादशाभ्यन्तरत इति वक्ष्यते ?, उच्यते, मृगशिर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा

दीप अनुक्रम [३०३--३०५]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥४९७॥

आदीनां षण्णां समानेऽपि बहिश्चारित्वे मूलस्यैव सर्वतो बहिश्चरत्वं, तेन बहिर्मूलो इत्युक्तं, तथा अनन्तरोत्तरसूत्रे वक्ष्यमा-णानां द्वादशानामप्यभ्यन्तरमण्डलचारित्वे समानेऽपि अभिजित एव सर्वतोऽभ्यन्तरवर्तित्वात् 'अब्भंतरे अभिई'इति, तत्र यानि तानीति प्राग्वत् नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्योत्तरस्यां योगं योजयन्ति तानि द्वादश, तद्यथा–अभिजित् श्रवणो धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वभद्रपदा उत्तरभद्रपदा रेवती अश्विनी भरणी पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी स्वातिः, यदा चैतैः सह चंद्रस्य योगस्तदा स्वभावाच्चन्द्रः शेषेष्वेव मण्डलेषु स्यात्, यथा च भिन्नमण्डलस्थायिना चन्द्रेण सह भिन्न-मण्डलस्थायिनक्षत्राणां योगस्तथा मण्डलविभागकरणाधिकारे प्रतिपादितं, यतः सदैवैतान्युत्तरदिगवस्थितान्येव चन्द्रेण सह योगमायान्तीति, यत्तु समवायाङ्गे 'अभिजिआइआ णं णव णक्खत्ता चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति, अभिई सवणो जाव भरणी' इत्युक्तं तन्नवमसमवायानुरोधेनाभिजिन्नक्षत्रमादौ कृत्वा निरन्तरयोगित्वेन नवानामेव विवक्षि-तत्वात्, उत्तरयोगिनामपि पूर्वफाल्गुन्युत्तरफाल्गुनीस्वातीनां कृत्तिकारोहिणीमृगशिरःप्रमुखनक्षत्रयोगानन्तरमेव योगसम्भवात्, तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्य दक्षिणेनापि उत्तरेणापि प्रमर्दमपि योगं योजयन्ति अपिः सर्वत्र परस्परसमुच्चयार्थः तानि सप्त, तद्यथा–कृत्तिका रोहिणी पुनर्वसु मघा चित्रा विशाखा अनुराधा, एतेषां च त्रिधापि योग इत्यर्थः, यत्तु स्थानाङ्गेऽष्टमाध्ययने समवायाङ्गेऽष्टमसमवाये च–'अट्ठ णक्खत्ता चंदेण सद्धिं पमद्दं जोगं जोएंति कत्तिआ रोहिणी पुनवसु महा चित्ता विसाहा अणुराहा जेट्ठा"इति, तत्राष्टसङ्ख्यानुरोधेनैकस्यैव प्रमर्दयोगस्य

७वक्षस्कारे दक्षिणादि-योगाधि-कारः सू. १५६

॥४९७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५६] + गाथा

दीप अनुक्रम [३०३--३०५]

विवक्षितत्वेन ज्येष्ठापि सङ्गृहीता, यत्तु लोकश्रीटीकाकृता उभययोगीतिपदं व्याख्यानयता एतानि नक्षत्राण्युभययोगीनि चन्द्रस्योत्तरेण दक्षिणेन च युज्यन्ते कदाचिद्भेदमपि उपयान्तीति, तच्च वक्ष्यमाणज्येष्ठासूत्रेण सह विरोधीति न प्रमाणं, तथा तत्र ये ते नक्षत्रे सदा चन्द्रस्य दक्षिणतोऽपि प्रमर्दमपि च योगं योजयतस्ते द्वे आषाढे–पूर्वाषाढोत्तराषाढारूपे, ते हि प्रत्येकं चतुस्तारे, तत्र द्वे द्वे तारे सर्वबाह्यस्य पञ्चदशस्य मण्डलस्याभ्यन्तरतो द्वे द्वे बहिः, ततो ये द्वे द्वे तारे अभ्यन्तरतस्तयोर्मध्येन चन्द्रो गच्छति इति तदपेक्षया प्रमर्दं योगं युंक्त इत्युच्यते, ये तु द्वे द्वे तारे बहिस्ते चन्द्रस्य पञ्चदशेऽपि मण्डले चारं चरतः सदा दक्षिणदिग्व्यवस्थिते ततस्तदपेक्षया दक्षिणेन योगं युंक्त इत्युक्तं, अनेन चाषाढाद्वयमपि प्रमर्दयोगिनक्षत्रगणमध्ये कथं नोक्तमिति वदतो निरासः, अनयोर्दक्षिणदिग्योगविशिष्टप्रमर्दयोगस्य सम्भवादिति, सम्प्रत्येतयोरेव प्रमर्दयोगभावनार्थं किञ्चिदाह–ते च नक्षत्रे सदा सर्वबाह्ये मण्डले व्यवस्थिते चन्द्रेण सह सह योगमयुंक्तां युंक्तो योक्ष्यते इति, तथा यत्तन्नक्षत्रं यत् सदा चन्द्रस्य प्रमर्दं–प्रमर्दरूपं योगं युनक्ति एका सा ज्येष्ठा। अथ देवताद्वारमाह—

एतेसि णं भन्ते! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंदेवयाए पण्णत्ते?, गो०! बम्हदेवया पण्णत्ते, सवणे णक्खत्ते विण्हुदेवयाए पण्णत्ते, धणिट्ठा वसुदेवया पण्णत्ता, एए णं कमेणं णेअव्वा अणुपरिवाडी इमाओ देवयाओ–बम्हा विण्हु वसू वरुणे अय अभिवद्धी पूसे आसे जमे अग्गी पयावई सोमे रुद्दे अदिती बहस्सई सप्पे पिउ भगे अजम सविआ तट्ठा वाउ इंदग्गी मित्तो इंदे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ अष्टाविंशति-नक्षत्राण्याः देवतायाः नामानि प्रदर्श्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५७--१५८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०६--३०९]

निरई आउ विस्सा य, एवं णक्खत्ताणं एआ परिवाडी णेअव्वा जाव उत्तरासाढा किंदेवया पण्णत्ता ?, गोअमा ! विस्सदेवया पण्णत्ता (सूत्रं १५७) एतेसि णं भन्ते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?, गोअमा ! तितारे पं०, एवं णेअव्वा जस्स जइआओ ताराओ, इमं च तं तारग्गं–तिगतिगपंचगसयदुग दुगबत्तीसगतिगं तह तिगं च । छप्पंचगतिगएक्कगपंचगतिग छक्कगं चेव ॥१॥ सत्तगदुगदुग पंचग एक्केक्कग पंच चउतिगं चेव । एक्कारसग चउक्कं चउक्कगं चेव तारग्गं ॥२॥ इति (सूत्रं १५८)

'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये भदन्त ! अभिजिन्नक्षत्रं को देवताऽस्येति किंदेवताकं प्रज्ञप्तम् ?, अत्र बहुव्रीहौ कः प्रत्ययः, देवता चात्र स्वामी अधिप इतियावत् यत् तुष्ट्या नक्षत्रं तुष्टं भवति अतुष्ट्या चातुष्टं, एवमग्रेऽपि ज्ञेयं, ननु नक्षत्राण्येव देवरूपाणि तर्हि किं तेषु देवानामाधिपत्यं ?, उच्यते, पूर्वभवार्जिततपस्तारतम्येन तत्फलस्यापि तारतम्यदर्शनात्, मनुष्येष्विव देवेष्वपि सेव्यसेवकभावस्य स्पष्टमुपलभ्यमानत्वात्, यदाह–"सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो इमे देवा आणाउववायवयणणिद्देसे चिट्ठंति, तंजहा–सोमकाइआ सोमदेवकाइआ विज्जुकुमारा विज्जुकुमारीओ अग्गिकुमारा अग्गिकुमारीओ वाउकुमारा वाउकुमारीओ चंदा सूरा गहा णक्खत्ता तारारूवा जे आवण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिआ तब्भारिआ सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो आणावयणणिद्देसे चिट्ठंती" ति, भगवानाह—गौतम ! ब्रह्मदेवताकं प्रज्ञप्तम्, अत्राशयज्ञो गुरुः सूत्रेऽदृश्यमानत्वात् गूढान्यपि शिष्यप्रश्नानि निर्वचनसूत्रेणैव समाधत्ते, श्रवणं नक्षत्रं विष्णुदेवताकं प्रज्ञप्तं, धनिष्ठा वसुदेवता प्रज्ञप्ता, एतेनोक्तवक्ष्यमाणेन क्रमेण नेतव्या–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५७--१५८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०६--३०९]

पाठं प्रापणीया भणितव्या इत्यर्थः अनुपरिपाटि–अभिजिदादिनक्षत्रपरिपाट्यनुसारेण देवतानान्नामावलिका, इमाश्च देवतास्ताः–ब्रह्मा १ विष्णुः २ वसुः ३ वरुणः ४ अजः ५ अभिवृद्धिः ६ अन्यत्राहिर्बुध्न्य इति, पूषा–पूषनामको देवो न तु सूर्यपर्यायस्तेन रेवत्येव पौष्णमिति प्रसिद्धं, अश्वनामको देवविशेषः ८ यमः ९ अग्निः १० प्रजापतिरिति ब्रह्मनामको देवः, अयं च ब्रह्मणः पर्यायान् सहते, तेन ब्राह्मयमित्यादि प्रसिद्धम् ११ सोमः–चन्द्रस्तेन सौम्यं चान्द्रमसमित्यादि प्रसिद्धम् १२ रुद्रः–शिवस्तेन रौद्री कालिनीति प्रसिद्धं १३ अदितिः देवविशेषः १४ बृहस्पतिः प्रसिद्धः १५ सर्पः १६ पितृनामा १७ भगनामा देवविशेषः १८ अर्यमा–अर्यमनामको देवविशेषः १९ सविता–सूर्यः २० त्वष्टा–त्वष्टृनामको देवस्तेन त्वाष्ट्री चित्रा इति प्रसिद्धं २१ वायुः २२ इन्द्राग्नी २३ तेन विशाखा द्विदैवतमिति प्रसिद्धं, मित्रो–मित्रनामको देवः २४ इन्द्रः २५ नैर्ऋतः–राक्षसस्तेन मूलः आस्रप इति प्रसिद्धं २६ आपो–जलनामा देवस्तेन पूर्वाषाढा तोयमिति प्रसिद्धं २७ विश्वे देवास्त्रयोदश २८, सूत्रालापकान्तस्थितश्चकारः समुच्चये, एवमभिजित्सूत्रदर्शितप्रश्नोत्तररीत्या नक्षत्राणां देवा इत्यधिकारतो गम्यम्। एतया–ब्रह्मविष्णुवरुणादिरूपया परिपाट्या न तु परतीर्थिकप्रयुक्तअश्वयमदहनकमलजादिरूपया नेतव्या–परिसमाप्तिं प्रापणीया यावदुत्तराषाढा किंदेवता प्रज्ञप्ता?, गौतम! विश्वदेवता प्रज्ञप्तेति। अथ तारासङ्ख्याद्वारमाह—'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषां भदन्त! अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्येऽभिजिन्नक्षत्रं कति तारा अस्येति कतितारं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! तिस्रस्तारा अस्येति त्रितारं प्रज्ञप्तम्, तारा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५७--१५८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०६--३०९]

श्चात्र ज्योतिष्कविमानानि, अधिकारान्नक्षत्रजातीयज्योतिष्कानां विमानानीत्यर्थः, न तु पञ्चमजातीयज्योतिष्कास्तारकाः, नहिं तासां द्वित्रादिविमानैरेकं नक्षत्रमिति व्यवहारः सम्यक्, अन्यजातीयेन समुदायेनान्यजातीयः समुदायीति विरोधात्, विरोधश्चात्र नक्षत्राणां विमानानि महान्ति तारकाणां च विमानानि लघूनि, तथा जम्बूद्वीपे एकशश्चिनस्तारकाणां कोटाकोटीनां षट्षष्टिः सहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्ततिश्चेति या सङ्ख्या साऽप्यतिशयीत नक्षत्रसङ्ख्या चाष्टाविंशतिरूपा मूलत एव समुच्छिद्येत, ननु तर्हि एतेषां विमानानां केऽधिपाः?, उच्यते, अभिजिदादिर्नक्षत्र एव, यथा कश्चित् महर्द्धिको गृहद्वयादिपतिर्भवति, एवमभिजिन्नक्षत्रन्यायेन नेतव्या यस्य नक्षत्रस्य यावत्यस्तारा, इदं च तत्ताराग्रं–तारासङ्ख्यापरिमाणं, यथा त्रिकमभिजितः १ त्रिकं श्रवणस्य २ पञ्चकं धनिष्ठायाः ३ शतं शतभिषजः ४ द्विकं पूर्वभद्रपदायाः ५ द्विकमुत्तरभद्रपदायाः ६ द्वात्रिंशद्रेवत्याः ७ त्रिकमश्विन्याः ८ तथा त्रिकं भरण्याः ९, चः समुच्चये, षट् कृत्तिकायाः १० पञ्चकं रोहिण्याः ११ त्रिकं मृगशिरसः १२ एककं आर्द्रायाः १३ पञ्चकं पुनर्वस्वोः, यदन्यत्र चतुष्कमाहुस्तन्मतान्तरं १४ त्रिकं पुष्यस्य १५ षट्कमश्लेषायाः १६ चैवेति समुच्चये सप्तकं मघायाः १७ द्विकं पूर्वफाल्गुन्याः १८ द्विकमुत्तरफाल्गुन्याः १९ पञ्चकं हस्तस्य २० एकश्चित्रायाः २१ एककः स्वातेः २२ पञ्च विशाखायाः २३ चत्वारः अनुराधायाः २४ त्रिकं ज्येष्ठायाः २५ चैवशब्दः पूर्ववत् एकादशकं मूलस्य २६ चतुष्कं पूर्वाषाढायाः २७ चतुष्कमुत्तराषाढायाः २८ चैवेति तथैव ताराग्रमिति, तारासङ्ख्याकथनप्रयोजनं च यन्नक्षत्रं यावत्तारासंख्यापरि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५७--१५८] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०६--३०९]

माणकं भवति तत्संख्याकां तिथिं शुभकार्ये वर्जयेत्, शतभिषग्रेवत्योस्तु क्रमेण शतस्य द्वात्रिंशतश्च तिथिभिर्भागे हृते यदवशिष्टं तत्प्रमाणा तिथिर्वर्जनीयेति। अथ गोत्रद्वारम्–इह नक्षत्राणां स्वरूपतो न गोत्रसम्भवः, यत इदं गोत्रस्य स्वरूपं लोके प्रसिद्धिमुपागमत्–प्रकाशकाद्यपुरुषाभिधानस्तदपत्यसन्तानो गोत्रं, यथा गर्गस्यापत्यसन्तानो गर्गाभिधानो गोत्रमिति, न चैवंस्वरूपं नक्षत्राणां गोत्रं सम्भवति, तेषामौपपातिकत्वात्, तत इत्थं गोत्रसम्भवो द्रष्टव्यो–यस्मिन्नक्षत्रे शुभैरशुभैर्वा ग्रहैः समानं यस्य गोत्रस्य यथाक्रमं शुभमशुभं वा भवति तत्तस्य गोत्रं, ततः प्रश्नोपपत्तिः, तत्सूत्रम्—

एतेसि णं भन्ते! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंगोत्ते पं०?, गो०! मोग्गलायणसगोत्ते, गाधा–मोग्गलायण १ संखायणे २ अ तह अग्गभाव ३ कण्हिले ४। तत्तो अ जाउकण्णे ५ धणंजए ६ चेव बोद्धव्वे ॥ १ ॥ पुस्सायणे ७ अ अस्सायणे अ ८ भग्गवेसे ९ अ अग्गिवेसे १० अ। गोअम ११ भारद्दाए १२ लोहिच्चे १३ चेव वासिट्ठे १४ ॥ २॥ ओमज्जायण १५ मंडव्वायणे १६ अ पिंगायणे १७ अ गोवल्ले १८। कासव १९ कोसिय २० दब्भा २१ य चामरच्छाय २२ सुंगा य २३ ॥ ३ ॥ गोवल्लायण २४ तेगिच्छायणे २५ अ कच्चायणे २६ हवइ मूले। ततो अ वज्झिआयण २७ वग्घावच्चे अ गोत्ताइं २८ ॥ ४ ॥ एतेसि णं भन्ते! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते?, गोअमा! गोसीसावलिसंठिए पं०, गाहा–गोसीसावलि १ काहार २ सउणि ३ पुप्फोवयार ४ वावी य ५–६। पावा ७ आसक्खंधग ८ भग ९ छुरघरए १० अ सगडुद्धी ११ ॥१॥ मिगसीसावलि १२ रुहिरबिंदु १३ तुल्ल १४ वद्धमाणग १५ पडागा १६। पागारे १७ पलिअंके १८–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ अष्टाविंशति-नक्षत्राण्याः गोत्राणि-नामानि प्रदर्श्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५९] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१०--३१८]

१९ हत्थे २० मुहफुल्लए २१ चेव ॥ २ ॥ खीलग २२ दामणि २३ एगावली २४ अ गयदंत २५ विच्छुअअले य २६ । गयविक्कमे २७ अ तत्तो सीहनिसीही अ २८ संठाणा ॥ ३ ॥ (सूत्रं १५९)

'एतेसि ण' मित्यादि, एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये भदन्त! अभिजिन्नक्षत्रं किंगोत्रं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! मौद्गल्यायनैः–मौद्गल्यगोत्रीयैः सगोत्रं–समानगोत्रं मौद्गल्यायनगोत्रमित्यर्थः, एवमग्रेऽपि ज्ञेयं, अथाऽभिजितः प्रारभ्य लाघवार्थमत्र गाथा इति, ताश्चेमाः–'मोग्गलायण'मित्यादि, मौद्गल्यायनं १ साङ्ख्यायनं २ तथा अग्रभावं ३ 'कण्णिल्ल'मित्यत्र पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् कण्णिलायनमिति गाह्यं ४, ततश्च जातुकर्ण्णं ५ धनञ्जयं ६ चैवशब्दः समुच्चये बोद्धव्यम् पुष्यायनं ७ चः समुच्चये आश्वायनं च ८ भार्गवेशं च ९ अग्निवेश्यं च १० गौतमं ११ भारद्वाजं १२ लौहित्यं चैवेति अत्रापि पूर्ववदुपचारे लौहित्यायनं १३ वासिष्टं १४ अवमज्जायनं १५ माण्डव्यायनं च १६ पिङ्गायनं च १७ गोवल्लमित्यत्रापि पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् गोवल्लायनं १८ काश्यपं १९ कौशिकं २० दार्भायनं २१ चामरच्छायनं २२ शुङ्गायनं २३ त्रिष्वेषु णकारलोपः प्राकृतशैलीप्रभवो गाथाबन्धानुलोम्याय, गोलव्यायनं २४ चिकित्सायनं २५ कात्यायनं भवति मूले २६ ततश्च वज्झियायणनामकं बाभ्रव्यायनं २७ व्याघ्रापत्यं २८ चेति गोत्राणि । अथ संस्थानद्वारम्–'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषा भदन्त! अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां अभिजिन्नक्षत्रं कस्येव संस्थितं–संस्थानं यस्य तत्तथा, प्रज्ञप्तम्?, गौतम! गोशीर्षं तस्यावली–तत्पुद्गलानां दीर्घरूपा श्रेणिस्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्समसंस्थानं प्रज्ञप्तम्, एवं शेषनक्षत्रसंस्थानानि ज्ञेयानि, तानीमानि–अभिजितो गोशीर्षावलिसंस्थानं श्रवणस्य कासारसंस्थानं धनिष्ठायाः शकुनिपञ्जरसंस्थानं शतभिषजः पुष्पोपचारसंस्थानं पूर्वभद्रपदायाः अर्द्धवापीसंस्थानं उत्तरभद्रपदाया अप्यर्द्धवापीसंस्थानं एतदर्द्धवापीद्वयमीलनेन परिपूर्णा वापी भवति तेन सूत्रे वापीत्युक्तं, अतः संस्थानानां न संख्यान्यूनता विचारणीया, रेवत्या नौसंस्थानं, अश्विन्याः अश्वस्कन्धसंस्थानं, भरण्याः भगसंस्थानं, कृत्तिकायाः क्षुराधारसंस्थानं, रोहिण्याः शकटोद्धिसंस्थानं, मृगशिरसः मृगशीर्षसंस्थानं, आर्द्रायाः रुधिरबिन्दुसंस्थानं, पुनर्वस्वोः तुलासंस्थानं, पुष्यस्य सुप्रतिष्ठितवर्द्धमानकसंस्थानं, अश्लेषायाः पताकासंस्थानं, मघायाः प्राकारसंस्थानं, पूर्वफल्गुन्या अर्द्धपल्यङ्कसंस्थानं उत्तरफल्गुन्या अप्यर्द्धपल्यङ्कसंस्थानं, अत्रापि अर्द्धपल्यङ्कद्वयमीलनेन परिपूर्णः पल्यङ्को भवति तेन संख्यान्यूनता न, हस्तस्य हस्तसंस्थानं, चित्रायाः मुखमण्डनसुवर्णपुष्पसंस्थानं, स्वातेः कीलकसंस्थानं, विशाखायाः दामनिः–पशुरज्जुसंस्थानं, अनुराधाया एकावलिसंस्थानं, ज्येष्ठायाः गजदन्तसंस्थानं मूलस्य वृश्चिकलांगूलसंस्थानं, पूर्वाषाढायाः गजविक्रमसंस्थानं, उत्तराषाढायाः सिंहनिषीदनसंस्थानं इति संस्थानानि । अथ चन्द्ररवियोगद्वारम्—

एतेसि णं भन्ते! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते कतिमुहुत्ते चन्देण सद्धिं जोगं जोएइ?, गोअमा! णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चन्देण सद्धिं जोगं जोएइ, एवं इमाहिं गाहाहिं अणुगन्तव्वं–अभिइस्स चन्दजोगो सत्तट्ठिखंडिओ अहोरत्तो । ते हुंति णव मुहुत्ता सत्तावीसं कलाओ अ ॥ १ ॥ सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य । एते छण्ण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१६०] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१९--३२८]

क्खत्ता पण्णरसमुहुत्तसंजोगा ॥ २ ॥ तिण्णेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य । एए छण्णक्खत्ता पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥ ३ ॥ अवसेसा णक्खत्ता पण्णरसवि हुंति तीसइमुहुत्ता । चन्दंमि एस जोगो णक्खत्ताणं मुणेअव्वो ॥ ४ ॥ एतेसि णं भन्ते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते कति अहोरत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ ?, गो० ! चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ, एवं इमाहिं गाहाहिं णेअव्वं–अभिई छच्च मुहुत्ते चत्तारि अ केवले अहोरत्ते । सूरेण समं गच्छइ एत्तो सेसाण वोच्छामि ॥ १ ॥ सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य । वच्चंति मुहुत्ते इक्कवीस छच्चेवऽहोरत्ते ॥ २ ॥ तिण्णेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य । वच्चंति मुहुत्ते तिण्णि चेव वीसं अहोरत्ते ॥ ३ ॥ अवसेसा णक्खत्ता पण्णरसवि सूरसहगया जंति । बारस चेव मुहुत्ते तेरस य समे अहोरत्ते ॥ ४ ॥ (सूत्रं १६०) ।

'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषां च भदन्त! अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये अभिजिन्नक्षत्रं कति मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्द्धं योगं योजयति?, सम्बन्धं करोतीत्यर्थः, गौतम! नव मुहूर्त्तान् एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिं सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण सार्द्धं योगं योजयति, कथमेतदवसीयते?, उच्यते, इहाभिजिन्नक्षत्रं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्यैकविंशतिभागान् चन्द्रेण सह योगमुपैति, ते च एकविंशतिरपि भागा मुहूर्त्तगतभागकरणार्थं अहोरात्रे त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि षट् शतानि त्रिंशदधिकानि ६३० एषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धा नव मुहूर्त्ता एकस्य मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागा ९ २७/६७ अयं च सर्वजघन्यः चन्द्रस्य नक्षत्रयोगकालः, यत्तु श्रीअभयदेवसूरिपादैः समवायाङ्गे नवमस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६०] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१९--३२८]

मवाये वृत्तौ नव मुहूर्त्तान् चतुर्विंशतिं च द्वाषष्टिभागानेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधा छिन्नस्य षट्षष्टिभागान् यावदस्य चन्द्रयोग उक्तस्तत्तु पूर्णिमाऽमावास्यापरिसमाप्तिकालभाविनक्षत्रपरिज्ञानोपाये उक्तात् षट्षष्टिमुहूर्त्ताः पञ्च च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिच्छिन्नस्यैकः सप्तषष्टिभाग इत्येवंरूपाद् ध्रुवराशेर्नक्षत्रशोधनाधिकारे सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः दुःशोधा इति सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः सवर्णनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते जातं १६७४ एषां सप्तषष्ट्या भागे हृते आगतं २४/६६/६७, 'एव'मिति यथाऽभिजित एकविंशतिभागेभ्यः समधिकनवमुहूर्त्तरूपो योगकाल आनीतस्तथाप्रकारेणेत्यर्थः, इमाभिर्वक्ष्यमाणाभिर्गाथाभिरवगन्तव्यं, चन्द्रयोगकालमानमिति गम्यं, तद्यथा–अभिजित्श्चन्द्रयोगः सप्तषष्टिखण्डीकृतोऽहोरात्रः कल्प्यते, ते पूर्वोक्ता एकविंशतिभागाः पूर्वोक्तेन करणेन नव मुहूर्त्ताः सप्तविंशतिश्च कला भवन्ति, तथा शतभिषक् भरणी आर्द्रा अश्लेषा स्वातिः ज्येष्ठा, चः समुच्चये, एतानि षट् नक्षत्राणि पञ्चदश मुहूर्त्तान् यावत् चन्द्रेण सह संयोगः–सम्बन्धो येषां तानि तथा, तद्यथा–एतेषां षण्णामपि नक्षत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्य सत्कान् सार्द्धान् त्रयस्त्रिंशद्भागान् यावच्चन्द्रेण सह योगो भवति ततो मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागकरणार्थं त्रयस्त्रिंशत् त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि नव शतानि नवतानि–नवत्यधिकानि ९९० यदपि चार्द्धं तदपि त्रिंशता गुणयित्वा द्विकेन भज्यते लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्तस्य सप्तषष्टिभागास्ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातः पूर्वराशिः सहस्रं पञ्चोत्तरं १००५, अस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ता इति, तथा तिस्र उत्तराः–उत्तरफल्गुनी उ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६०] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१९--३२८]

त्तराषाढा उत्तरभद्रपदा इत्येवंरूपाः पुनर्वसू रोहिणी विशाखा, चः समुच्चये, एतानि एवकारस्य भिन्नक्रमत्वादेतान्येवेति योज्यं, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, षट् नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशतं मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह संयोगो येषां तानि तथा, तद्यथा–अत्रापि षण्णां नक्षत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्य सत्कानां भागानां शतमेकमेकस्य च भाग-स्यार्द्धं चन्द्रेण सह योगस्तत्रैषां भागानां मुहूर्त्तगतभागकरणार्थं शतं प्रथमतस्त्रिंशता गुण्यते जातानि त्रीणि सहस्राणि पञ्चदशोत्तराणि ३०१५ एतेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता इति, तथा अवशेषाणि–उक्तातिरि-क्तानि नक्षत्राणि श्रवणो धनिष्ठा पूर्वभद्रपदा रेवती अश्विनी कृत्तिका मृगशिरः पुष्यो मघा पूर्वाफाल्गुनी हस्तश्चित्राऽ नुराधा मूलः पूर्वाषाढा इति पञ्चदशापि भवन्ति त्रिंशन्मुहूर्त्तानीति–त्रिंशन्मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगमश्नुवते, तद्यथा–एषां पञ्चदशानां नक्षत्राणां चन्द्रेण सह सम्पूर्णमहोरात्रं यावद्योगस्ततो मुहूर्त्तगतभागकरणार्थं सप्तषष्टिः त्रिंशता गुण्यते जाते द्वे सहस्रे दशोत्तरे २०१० एषां च सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धास्त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति, चन्द्रे–चन्द्रविषये एषः–अनन्तरोक्तो योगो नक्षत्राणां ज्ञातव्य इति, 'एतानि चाभिजिद्वर्जानि क्रमेणार्द्धक्षेत्रव्यर्द्धक्षेत्रसमक्षेत्रसंज्ञकानि सिद्धान्ते रूढानि, एषां किल चिरन्तनज्योतिःशास्त्रेष्वेवं भुक्तिरासीत् नतु यथाऽधुना सर्वाण्यप्येकदिनभोगानी'ति श्रीमदावश्य-कबृहद्वृत्तिटिप्पनके, एषां चोपयोगः "दुन्नि उ दिवड्ढखित्ते दब्भमया पुत्तला उ कायव्वा। समखित्तंमि अ इक्को अवड्ढ-खित्ते न कायव्वो ॥ १ ॥" इत्यादि। उक्तश्चन्द्रयोगः, अथ रवियोगः—'एतेसि णं भन्ते!'इत्यादि, एतेषां भदन्त!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये अभिजिन्नक्षत्रं कति अहोरात्रान् सूर्येण सार्द्धं योगं योजयति?, गौतम! चतुरोऽहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्द्धं योगं योजयति, कथमिति चेत्, उच्यते, यन्नक्षत्रमहोरात्रस्य यावतः सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण सह समवतिष्ठते तन्नक्षत्रं तावतः एकविंशत्यादीनित्यर्थः पञ्चभागान्–रात्रिन्दिवस्य पञ्चमांशरूपान्, तैः पञ्चभिरेकं रात्रिन्दिवं भवतीत्यर्थः, सूर्येण समं व्रजति, इदमत्र हृदयं–यस्य नक्षत्रस्य यावंतः सप्तषष्टिभागाश्चन्द्रयोगयोग्यास्ते पञ्चभिर्भज्यन्ते, लब्धं तत्पञ्चमभागात्मकमहोरात्रं, शेषं त्रिंशता गुणयित्वा पञ्चभिर्भज्यते लब्धं मुहूर्त्ताः, उक्तं च–"जं रिक्खं जावइए वच्चइ चन्देण भागसत्तट्ठी । तं पणभागे राइंदिअस्स सूरेण तावइए ॥ १ ॥"त्ति, तद्यथा–अभिजिन्नक्षत्रमेकविंशतिं सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण समं वर्तते ततः एतावतः पञ्चभागान् अहोरात्रस्य सूर्येण समं वर्तनमवसेयम्, एकविंशतेश्च पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाश्चत्वारोऽहोरात्राः, एकः पञ्चमभागोऽवतिष्ठते स मुहूर्तानयनाय त्रिंशता गुण्यते जातास्त्रिंशत्तस्याः पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाः षट् मुहूर्ता इति, एवमभिजिन्न्यायेन शेषनक्षत्राणां सूर्ययोगकालप्ररूपणं इमाभिर्वक्ष्यमाणाभिर्गाथाभिर्नेतव्यं, तत्राभिजिन्नक्षत्रं षण्मुहूर्तान् चतुरश्च केवलान्–परिपूर्णान् अहोरात्रान् सूर्येण समं गच्छति, अत्रोपपत्तिः प्रथमत एव कृता, अथ ऊर्ध्वं शेषाणां नक्षत्राणां सूर्येण समं योगान् कालपरिमाणमधिकृत्येति गम्यं वक्ष्यामि, तथाहि—शतभिषक् भरणी आर्द्रा अश्लेषा स्वातिः ज्येष्ठा चेत्येतानि षट् नक्षत्राणि प्रत्येकं सूर्येण समं व्रजन्ति मुहूर्तानेकविंशतिं षट् चाहोरात्रानिति, तद्यथा–एतानि नक्षत्राणि चन्द्रेण समं सार्द्धान् त्रयस्त्रिंशत्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६०] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१९--३२८]

संख्यान् सप्तषष्टिभागान् व्रजन्ति, तत एतावतः पञ्चभागान् अहोरात्रस्य सूर्येण समं व्रजन्तीति प्रत्येकं प्रागुक्तकरण-प्रामाण्यात् त्रयस्त्रिंशतश्च पञ्चभिर्भागे लब्धाः षट् अहोरात्राः शेषाः सार्द्धास्त्रयः पञ्चभागास्ते सवर्णनायां जाताः सप्त ते मुहूर्तानयनाय त्रिंशता गुण्यन्ते जाते द्वे शते दशोत्तरे २१० तेषां परिपूर्णमुहूर्तानयनाय दशभिर्भागो ह्रियते लब्धा एकविंशतिर्मुहूर्ता इति, तथा तिस्र उत्तराः–उत्तरभद्रपदा उत्तरफाल्गुनी उत्तराषाढा इत्येवंरूपाः पुनर्वसू रोहिणी वि-शाखा च एतानि षट् नक्षत्राणि सूर्येण समं व्रजन्ति मुहूर्त्तान् त्रीण्येव विंशतिं चाहोरात्रानिति, तद्यथा–एतानि षट् नक्षत्राणि चन्द्रेण समं सप्तषष्टिभागानां शतमेकमेकस्य च भागस्यार्द्धमेकं प्रत्येकं व्रजन्ति, ततः एतावतः पञ्चभागा-नहोरात्रस्य सूर्येण समं व्रजनमवगन्तव्यम्, तेन शतस्य पञ्चभिर्भागे हृते लब्धा विंशतिरहोरात्राः, यदर्द्धं तत् त्रिंशता गुण्यते जातास्त्रिंशत् तस्या दशभिर्भागे हृते लब्धास्त्रयो मुहूर्ता इति, तथा अवशेषाणि–श्रवणधनिष्ठापूर्वभद्रपदा-रेवत्यश्विनीकृत्तिकामृगशिरःपुष्यमघापूर्वफल्गुनीहस्तचित्राअनुराधामूलपूर्वाषाढारूपाणि नक्षत्राणि पञ्चदशापि सूर्येण सह-गतानि यान्ति द्वादशैव मुहूर्तान् त्रयोदश च समान्–परिपूर्णानहोरात्रानिति, तद्यथा–एतानि परिपूर्णान् सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण समं व्रजन्ति, ततः सूर्येण सह तानि पञ्चभागान् अहोरात्रस्य सप्तषष्टिसंख्यान् गच्छन्ति, सप्तषष्टेश्च पञ्चभि-र्भागे हृते लब्धास्त्रयोदश अहोरात्राः शेषौ द्वौ भागौ तौ त्रिंशता गुण्येते जाता षष्टिः तस्याः पञ्चभिर्भागे हृते लब्धा द्वादश मुहूर्ता इति, अत्र च प्रसङ्गसङ्गत्या सूर्ययोगदर्शनतश्चन्द्रयोगपरिमाणं यथा जायते तथा दर्श्यते ज्योतिष्कर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६०] + गाथा: दीप अनुक्रम [३१९--३२८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

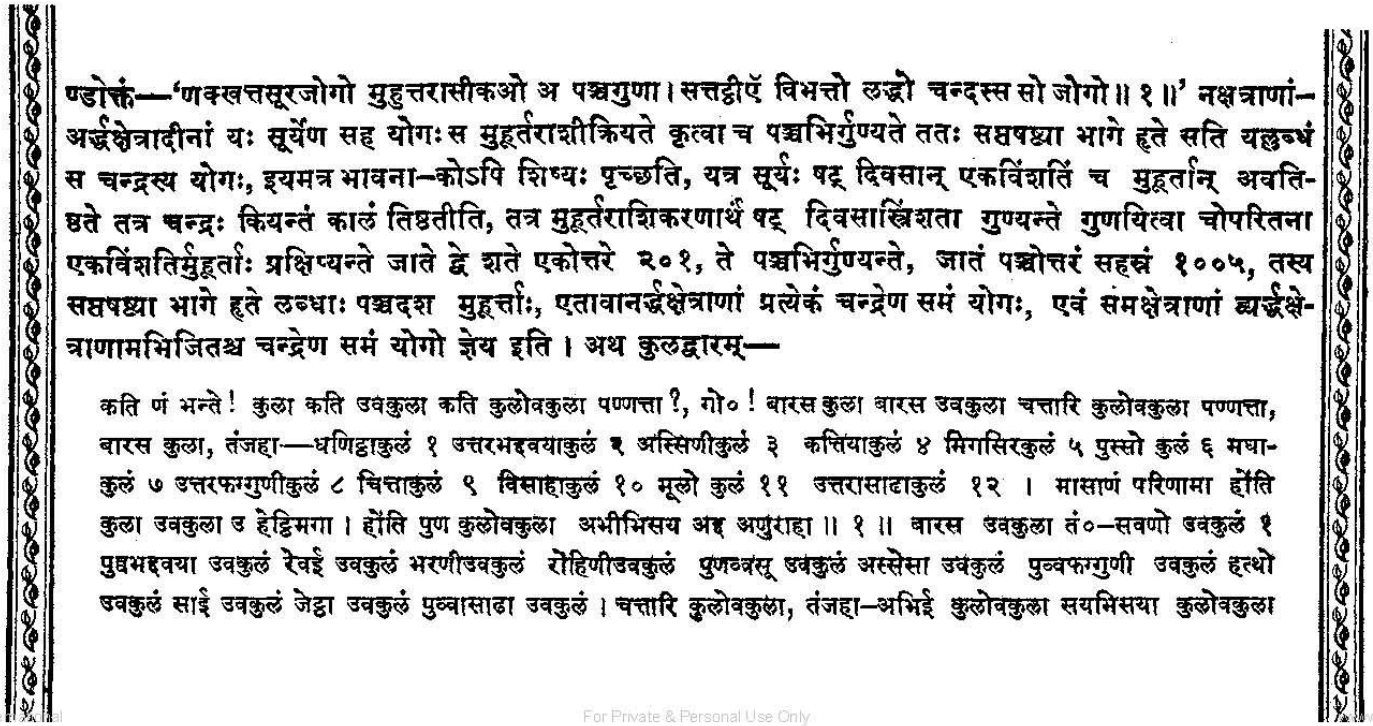

ण्डोक्तं—'णक्खत्तसूरजोगो मुहुत्तरासीकओ अ पञ्चगुणा। सत्तट्ठीएँ विभत्तो लद्धो चन्दस्स सो जोगो॥ १॥' नक्षत्राणां—अर्द्धक्षेत्रादीनां यः सूर्येण सह योगः स मुहूर्तराशीक्रियते कृत्वा च पञ्चभिर्गुण्यते ततः सप्तषष्ट्या भागे हृते सति यल्लब्धं स चन्द्रस्य योगः, इयमत्र भावना—कोऽपि शिष्यः पृच्छति, यत्र सूर्यः षट् दिवसान् एकविंशतिं च मुहूर्तान् अवतिष्ठते तत्र चन्द्रः कियन्तं कालं तिष्ठतीति, तत्र मुहूर्तराशिकरणार्थं षट् दिवसास्त्रिंशता गुण्यन्ते गुणयित्वा चोपरितना एकविंशतिर्मुहूर्ताः प्रक्षिप्यन्ते जाते द्वे शते एकोत्तरे २०१, ते पञ्चभिर्गुण्यन्ते, जातं पञ्चोत्तरं सहस्रं १००५, तस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ताः, एतावानर्द्धक्षेत्राणां प्रत्येकं चन्द्रेण समं योगः, एवं समक्षेत्राणां व्यर्द्धक्षेत्राणामभिजितश्च चन्द्रेण समं योगो ज्ञेय इति। अथ कुलद्वारम्—

कति णं भन्ते! कुला कति उवकुला कति कुलोवकुला पण्णत्ता?, गो०! बारस कुला बारस उवकुला चत्तारि कुलोवकुला पण्णत्ता, बारस कुला, तंजहा—धणिट्ठाकुलं १ उत्तरभद्दवयाकुलं २ अस्सिणीकुलं ३ कत्तियाकुलं ४ मिगसिरकुलं ५ पुस्सो कुलं ६ मघाकुलं ७ उत्तरफग्गुणीकुलं ८ चित्ताकुलं ९ विसाहाकुलं १० मूलो कुलं ११ उत्तरासाढाकुलं १२। मासाणं परिणामा होंति कुला उवकुला उ हेट्ठिमगा। होंति पुण कुलोवकुला अभीभिसय अट्ठ अणुराहा॥ १॥ बारस उवकुला तं०—सवणो उवकुलं १ पुव्वभद्दवया उवकुलं रेवई उवकुलं भरणीउवकुलं रोहिणीउवकुलं पुणव्वसू उवकुलं अस्सेसा उवकुलं पुव्वफग्गुणी उवकुलं हत्थो उवकुलं साई उवकुलं जेट्ठा उवकुलं पुव्वासाढा उवकुलं। चत्तारि कुलोवकुला, तंजहा—अभिई कुलोवकुला सयभिसया कुलोवकुला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	'कुल-उपकुल-कुलोपकुल' प्ररुपणा

अहा कुलोवकुला अणुराहा कुलोवकुला । कति णं भन्ते! पुण्णिमाओ कति अमावासाओ पण्णत्ताओ?, गोअमा! बारस पुण्णिमाओ बारस अमावासाओ पं०, तं०—सावित्ठी पोट्ठवई आसोई कत्तिगी मग्गसिरी पोसी माही फग्गुणी चेत्ती वइसाही जेट्ठामूली आसाढी, सावित्ठिण्णि भन्ते! पुण्णिमासिं कति णक्खत्ता जोगं जोएंति?, गो०! तिण्णि णक्खत्ता जोगं जोएंति, तं०—अभिई सवणो धणिट्ठा ३ । पोट्ठवईणिं भंते! पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोगं जोएंति?, गोअमा! तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं०—सयभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया, अस्सोइण्णि भंते! पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोगं जोएंति?, गोअमा! दो जोएंति तं०—रेवई अस्सिणी अ, कत्तिइण्णं दो—भरणी कत्तिआ य, मग्गसिरिण्णं दो—रोहिणी मग्गसिरं च, पोसिं तिण्णि—अद्दा पुणव्वसू पुस्सो, माघिण्णं दो—अस्सेसा मघा य, फग्गुणिं णं दो—पुव्वाफग्गुणी य उत्तराफग्गुणी य, चेत्तिण्णं दो—हत्थो चित्ता य, विसाहिण्णं दो—साई विसाहा य, जेट्ठामूलिण्णं तिण्णि—अणुराहा जेट्ठा मूलो, आसाढिण्णं दो—पुव्वासाढा उत्तरासाढा । सावित्ठिण्णं भन्ते! पुण्णिमं किं कुलं जोएइ उवकुलं जोएइ कुलोवकुलं जोएइ?, गो०! कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ कुलोवकुलं वा जोएइ, कुलं जोएमाणे धणिट्ठा णक्खत्ते जोएइ उवकुलं जोएमाणे सवणे णक्खत्ते जोएइ कुलोवकुलं जोएमाणे अभिई णक्खत्ते जोएइ, सावित्ठीण्णं पुण्णिमासिं णं कुलं वा जोएइ जाव कुलोवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता कुलोवकुलेण वा जुत्ता सावित्ठी पुण्णिमा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ, पोट्ठवदिण्णं भंते! पुण्णिमं किं कुलं जोएइ ३ पुच्छा, गो० ! कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं वा जोएइ, कुलं जोएमाणे उत्तरभद्दवया णक्खत्ते जोएइ उ० पुव्वभद्दवया० कुलोव० सयभिसया० णक्खत्ते जोएइ, पोट्ठवइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ जाव कुलोवकुलं वा जोएइ कुलेण वा जुत्ता जाव कुलोवकुलेण वा जुत्ता पोट्ठवई पुण्णमासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जुत्तत्तिवत्तव्वं सिया, अस्सोइण्णं भन्ते! पुच्छा, गो०! कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ णो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे अस्सिणीणक्खत्ते जोएइ उवकुलं जोएमाणे रेवइणक्खत्ते जोएइ, अस्सोइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता अस्सोई पुण्णिमा जुत्तत्तिवत्तव्वं सिआ, कत्तिइण्णं भंते! पुण्णिमं किं कुलं ३ पुच्छा, गो०! कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ णो कुलोवकुलं जोएइ, कुलं जोएमाणे कत्तिआणक्खत्ते जोएइ उव० भरणी कत्तिइण्णं जाव वत्तव्वं, मग्गसिरिण्णं भंते! पुण्णिमं किं कुलं तं चेव दो जोएइ णो भवइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे मग्गसिरणक्खत्ते जोएइ उ० रोहिणी मग्गसिरण्णं पुण्णिमं जाव वत्तव्वं सिआ इति । एवं सेसिआओऽवि जाव आसाढिं, पोसिं जेट्ठामूलिं च कुलं वा उ० कुलोवकुलं वा, सेसिआणं कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं ण भण्णइ। साविट्ठिण्णं भंते! अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति?, गो०! दो णक्खत्ता जोएंति, तं०–अस्सेसा य महा य, पोट्ठवइण्णं भंते! अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति?, गोअमा! दो पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी अ, अस्सोइण्णं भंते! दो–हत्थे चित्ता य, कतिइण्णं दो–साई विसाहा य, मग्गसिरिण्णं तिण्णि–अणुराहा जेट्ठा मूलो अ, पोसिण्णं दो–पुव्वासाढा उत्तरासाढा, माहिण्णं तिण्णि–अभिई सवणो धणिट्ठा, फग्गुणिं तिण्णि–सयभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया, चेत्तिण्णं दो–रेवई अस्सिणी अ, वइसाहिण्णं दो–भरणी कत्तिआ य, जेट्ठामूलिण्णं दो–रोहिणी मग्गसिरं च, आसाढिण्णं तिण्णि–अहा पुणव्वसू पुस्सो इति। साविट्ठिण्णं भंते! अमावासं किं कुलं जोएइ उवकुलं जोएइ कुलोवकुलं जोएइ?, गो०! कुलं वा जोइए उवकुलं वा जोएइ णो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे महाणक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे अस्सेसाणक्खत्ते जोएइ, साविट्ठिणं अमावासं कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठीअमावासा जुत्तत्ति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वत्तव्वं सिआ, पोट्ठवईण्णं भंते! अमावासं तं चेव दो जोएइ कुलं वा जोएइ उवकुलं०, कुलं जोएमाणे उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते जोएइ उव० पुव्वाफग्गुणी, पोट्ठवइण्णं अमावासं जाव वत्तव्वं सिआ, मग्गसिरिण्णं तं चेव कुलं मूले णक्खत्ते जोएइ उ० जेट्ठा कुलोवकु० अणुराहा जाव जुत्तत्तिवत्तव्वं सिआ, एवं माहीए फग्गुणीए आसाढीए कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं वा, अवसेसिआणं कुलं वा उवकुलं वा जोएइ ॥ जया णं भन्ते! साविट्ठी पुण्णिमा भवइ तया णं माही अमावासा भवइ?, जया णं भन्ते! माहीपुण्णिमा भवइ तया णं साविट्ठी अमावासा भवइ?, हंता! गो० ! जया णं साविट्ठी तं चेव वत्तव्वं, जया णं भन्ते! पोट्ठवई पुण्णिमा भवइ तया णं फग्गुणी अमावासा भवइ जया णं फग्गुणी पुण्णिमा भवइ तया णं पोट्ठवई अमावासा भवइ?, हंता! गोअमा! तं चेव, एवं एतेणं अभिलावेणं इमाओ पुण्णिमाओ अमावासाओ णेअव्वाओ–अस्सिणी पुण्णिमा चेत्ती अमावासा कत्तिगी पुण्णिमा वइसाही अमावासा मग्गसिरी पुण्णिमा जेट्ठामूली अमावासा पोसी पुण्णिमा आसाढी अमावासा (सूत्रं १६१)

'कति णं भन्ते! कुला'इत्यादि, कति भदन्त! कुलानि–कुलसंज्ञकानि नक्षत्राणि तथा कति उपकुलानि तथा कति कुलोपकुलानि प्रज्ञप्तानि?, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, भगवानाह—गौतम! द्वादश कुलानि द्वादश उपकुलानि चत्वारि कुलोपकुलानि प्रज्ञप्तानि, तत्र द्वादश कुलानि, तद्यथा–धनिष्ठा कुलं उत्तरभद्रपदा कुलं अश्विनी कुलं कृत्तिका कुलं मृगशिरः कुलं पुष्यः कुलं मघा कुलं उत्तरफल्गुनी कुलं चित्रा कुलं विशाखा कुलं मूलः कुलं उत्तराषाढा कुलं, अथ किं कुलादीनां लक्षणं?, उच्यते–मासानां परिणामानि–परिसमापकानि भवन्ति कुलानि, कोऽर्थः?–इह यैर्नक्षत्रैः प्रायो मासानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिसमाप्तय उपजायन्ते मासस्दृशनामानि च तानि नक्षत्राणि कुलानीति प्रसिद्धानि, तद्यथा–श्राविष्ठो मासः प्रायः श्रविष्ठया धनिष्ठापरपर्यायया परिसमाप्तिमुपैति भाद्रपदः उत्तरभद्रपदया अश्वयुक् अश्विन्या इति, श्रविष्ठादीनि प्रायो मासपरिसमापकानि मासस्दृशनामानि, प्रायोग्रहणादुपकुलादिभिरपि नक्षत्रैर्मासपरिसमाप्तिर्जायते इत्यसूचि, कुलानामधस्तनानि नक्षत्राणि श्रवणादीनि उपकुलानि कुलानां समीपमुपकुलं तत्र वर्त्तन्ते यानि नक्षत्राणि तान्युपचारादुपकुलानीति व्युत्पत्तेः, यानि कुलानामुपकुलानां चाधस्तनानि तानि कुलोपकुलानि, अभिजिदादीनि द्वादशोपकुलानि, तद्यथा–श्रवणः उपकुलं पूर्वभद्रपदा उपकुलं रेवती उपकुलं भरणी उपकुलं रोहिणी उपकुलं पुनर्वसू उपकुलं अश्लेषा उपकुलं पूर्वाफाल्गुनी उपकुलं हस्तः उपकुलं स्वातिः उपकुलं ज्येष्ठा उपकुलं पूर्वाषाढा उपकुलं, चत्वारि कुलोपकुलानि तद्यथा–अभिजित् कुलोपकुलं शतभिषक् कुलोपकुलं आर्द्रा कुलोपकुलं अनुराधा कुलोपकुलं, कुलादिसंज्ञाप्रयोजनं तु–'पुर्वेषु जाता दातारः, संग्रामे स्थायिनां जयः । अन्येषु त्वन्यसेवार्त्ता, यायिनां च सदा जयः ॥ १ ॥' इत्यादि । अथ पूर्णिमामावास्याद्वारम्—'कति णं भन्ते!'इत्यादि, कति भदन्त! पूर्णिमाः–परिस्फुटषोडशकलाकचन्द्रोपेतकालविशेषरूपाः, पूर्णेन चन्द्रेण निर्वृत्ता इति व्युत्पत्तेः 'भावादिमः' (श्रीसिद्ध० ६–४–२१) इतीमप्रत्यये रूपसिद्धिः, तथा कति अमावास्याः–एककालावच्छेदेनैकस्मिन्नक्षत्रे चन्द्रसूर्यावस्थानाधारकालविशेषरूपाः, अमा–सह चन्द्रसूर्यौ वसतोऽस्यामिति व्युत्पत्तेः, औणादिकेऽप्रत्यये स्त्रीलिङ्गे ङीप्रत्यये च रूपसिद्धिः, प्रज्ञप्ताः, गौतम! जातिभेदमधिकृत्य द्वादश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्णिमाः द्वादश अमावास्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–श्रविष्ठा–धनिष्ठा तस्यां भवा श्राविष्ठी–श्रावणमासभाविनी प्रौष्ठपदा–उत्तरभद्रपदा तस्यां भवा प्रौष्ठपदी–भाद्रपदभाविनी अश्वयुग्–अश्विनी तस्यां भवा आश्वयुजी–आश्विनेयमासभाविनी, एवं कार्तिकी मार्गशीर्षी पौषी माघी फाल्गुनी चैत्री वैशाखी ज्येष्ठामूली आषाढी इति, प्रश्नसूत्रे पूर्णिमामावास्ययोर्भेदेन निर्देशेऽपि उत्तरसूत्रे यदभेदेन निर्देशस्तन्नामैक्यदर्शनार्थं, तेनामावास्या अपि श्राविष्ठी प्रौष्ठपदी आश्वयुजी इत्यादिभिर्व्यपदेश्याः, ननु श्राविष्ठी पूर्णिमा श्रविष्ठायोगाद्भवति, अमावास्या तु श्राविष्ठी न तथा, अस्या अश्लेषामघायोगस्य भणिष्यमाणत्वात्, उच्यते, श्राविष्ठी पूर्णिमा अस्येति श्राविष्ठः–श्रावणमासः तस्येयं श्राविष्ठी श्रावणमासभाविनीत्यर्थः, एवं प्रौष्ठपद्यादिष्वमावास्यासु वाच्यं। सम्प्रति यैर्नक्षत्रैरेकैका पौर्णिमासी परिसमाप्यते तानि पिपृच्छिषुराह–'सावट्ठिण्णं भन्ते!'इत्यादि, श्राविष्ठीं पौर्णमासीं भदन्त! कति नक्षत्राणि योगं योजयन्ति–योगं कुर्वन्ति?, कति नक्षत्राणि चन्द्रेण सह संयुज्य परिसमापयन्तीत्यर्थः, भगवानाह—गौतम! त्रीणि नक्षत्राणि योगं योजयन्ति, त्रीणि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह संयुज्य परिसमापयन्ति, तद्यथा–अभिजित् श्रवणो धनिष्ठा, इह श्रवणधनिष्ठारूपे द्वे एव नक्षत्रे श्राविष्ठीं पौर्णमासीं परिसमापयतः, पञ्चस्वपि युगभाविनीषु पूर्णिमासु क्वाप्यभिजितः परिसमापकादर्शनात्, केवलमभिजिन्नक्षत्रं श्रवणेन सह सम्बद्धमिति तदपि परिसमापयतीत्युक्तं, किञ्च–सामान्यत इदं श्राविष्ठीसमापकनक्षत्रदर्शनं ज्ञेयं, पञ्चस्वपि श्राविष्ठीषु पूर्णिमासु कां पूर्णिमां किं नक्षत्रं कियत्सु मुहूर्त्तेषु कियत्सु भागेषु कियत्सु प्रतिभागेषु च गतेषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गम्येषु च परिसमापयतीति सूक्ष्मेक्षिकादर्शनार्थं त्विदं प्रवचनप्रसिद्धं करणं भावनीयं–'नाउमिह अमावासं जइ इच्छसि कंमि होइ रिक्खंमि ? । अवहारं ठावेज्जा तत्तिअरूवेहिं संगुणिए ॥ १ ॥' याममावास्यामिह युगे ज्ञातुमिच्छसि यथा कस्मिन्नक्षत्रे वर्त्तमाना परिसमाप्ता भवतीति, यावद्रूपैर्यावत्यो अमावस्या अतिक्रान्तास्तावत्या सङ्ख्यया इत्यर्थः, वक्ष्यमाणस्वरूपमवधार्यते–प्रथमतया स्थाप्यते इत्यवधार्यो–ध्रुवराशिः तमवधार्यराशिं पट्टिकादौ स्थापयित्वा सङ्गुणयेत्, अथ किंप्रमाणोऽसावधार्यराशिरिति तत्प्रमाणनिरूपणार्थमाह—'छावट्ठी य मुहुत्ता बिसट्ठिभागा य पंच पडिपुण्णा । बासट्ठिभागसत्तट्ठिगो अ एक्को हवइ भागो ॥ २ ॥' षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च परिपूर्णा द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टितमो भाग इत्येतावत्प्रमाणोऽवधार्यराशिः, कथमेतावत्प्रमाणस्योत्पत्तिरिति चेत्, उच्यते, इह यदि चतुर्विंशत्यधिकेत पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्यायाः लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यां पर्वभ्यां किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना–१२४ । ५।२ अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यो राशिः पञ्चकलक्षणो गुण्यते जाता दश तेषां च चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागहरणं, तत्र छेद्यच्छेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना जात उपरितनश्छेद्यो राशिः पञ्चकरूपोऽधस्तनो द्वाषष्टिरूपः लब्धाः पञ्च द्वाषष्टिभागाः, एतेन नक्षत्राणि कर्त्तव्यानीति नक्षत्रकरणार्थमष्टादशभिर्त्रिंशदधिकैः शतैः सप्तषष्टिभागरूपैः गुण्यन्ते जातानि एकनवतिः शतानि पञ्चाशदधिकानि ९१५०, छेदराशिरपि द्वाषष्टिप्रमाणः सप्तषष्ट्या गुण्यते जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, उपरितनराशिर्मु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हूर्त्तानयनाय भूयस्त्रिंशता गुण्यते, जाते द्वे लक्षे चतुःसप्ततिसहस्राणि पचं शतानि २७४५००, तेषा चतुष्पंचाशदधिकैकचत्वारिंशच्छतैर्भागहरणं लब्धाः षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः ६६ शेषा अंशास्तिष्ठन्ति त्रीणि शतानि षट्त्रिंशदधिकानि ३३६ ततो द्वाषष्टिभागानयनार्थं तानि षष्ट्या गुण्यन्ते जातानि विंशतिसहस्राणि अष्टौ शतानि द्वात्रिंशदधिकानि २०८३२, तेषामनन्तरोक्तच्छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते लब्धाः पंच द्वाषष्टिभागाः ५ शेषास्तिष्ठन्ति द्वाषष्टिः ततश्चास्या द्वाषष्ट्या अपवर्त्तना क्रियते जात एकः छेदराशेरपि द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तनायां जाता सप्तषष्टिः, तत आगतं षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पंच परिपूर्णा द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभाग इति, तदेवमुक्तमवधार्यराशिप्रमाणं, सम्प्रति शेषविधिमाह—'एअमवहाररासिं इच्छअमावाससंगुणं कुज्जा । णक्खत्ताणं इत्तो सोहणगविहिं निसामेह ॥ ३ ॥' एनं—अनन्तरोदितस्वरूपमवधार्यराशिमिच्छामावास्यासंगुणं—याममावास्यां ज्ञातुमिच्छति तत्संगुणितं कुर्यात्, अत ऊर्ध्वं च नक्षत्राणि शोधनीयानि ततोऽत ऊर्ध्वं नक्षत्राणां शोधनकविधिं—शोधनप्रकारं वक्ष्यमाणं निशामयत—आकर्णयत । तत्र प्रथमतः पुनर्वसुशोधनकमाह—'बावीसं च मुहुत्ता छायालीसं बिसट्ठिभागा य । एअं पुणव्वसुस्स य सोहेअव्वं हवइ पुण्णं ॥ ४ ॥' द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः एतत्—एतावत्प्रमाणं पुनर्वसुनक्षत्रस्य परिपूर्णं भवति शोद्धव्यं, कथमेवंप्रमाणस्य शोधनकस्योत्पत्तिरिति चेत्?, उच्यते, यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तत एकं पर्वातिक्रम्य कति पर्यायास्तेनैकेन पर्वणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लभ्यन्ते १, राशित्रयस्थापना १२४–५–१ अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशिः पञ्चकरूपो गुण्यते जाताः पञ्चैव, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति वचनात्, तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः, ततो नक्षत्रानयनाय एतेऽष्टादशभिः शतैः त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभागरूपैर्गुणयितव्या इति गुणकारराशिच्छेदराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना जातो गुणकारराशिः नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५ छेदराशिर्द्वाषष्टिः, तत्र पञ्च नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैर्गुण्यंते जातानि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि ४५७५ छेदराशिर्द्वाषष्टिलक्षणः सप्तषष्ट्या गुण्यते जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४, तथा पुष्यस्य त्रयोविंशतिभागाः प्राक्तनयुगचरमपर्वणि सूर्येण सह योगमायान्ति ते द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि चतुर्दश शतानि षड्विंशत्यधिकानि १४२६, तानि प्राक्तनात् पञ्चसप्तत्यधिकपञ्चचत्वारिंशत्प्रमाणात् शोध्यन्ते, शेषं तिष्ठति एकत्रिंशच्छतानि एकोनपञ्चाशदधिकानि ३१४९,एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चतुर्नवतिसहस्राणि चत्वारि शतानि सप्तत्यधिकानि ९४४७० तेषां छेदराशिना चतुष्पञ्चाशदधिकैककचत्वारिंशच्छतरूपेण भागो ह्रियते, लब्धा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शेषं तिष्ठति त्रीणि सहस्राणि द्व्यशीत्यधिकानि ३०८२, एतानि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातमेकं लक्षं एकनवतिसहस्राणि चतुरशीत्यधिकानि १९१०८४, तेषां छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते लब्धाः षट्चत्वारिंशत् मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाः एषा पुनर्वसुनक्षत्रशोधनकनिष्पत्तिः। अथ शेषनक्षत्राणां शोधनकान्याह–'बावत्तरं सयं फग्गुणीण बाणउ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

अ बे विसाहासु । चत्तारि अ बायाला सोज्झा तह उत्तरासाढा ॥ ५ ॥' द्वासप्ततं–द्वासप्तत्यधिकं शतं फल्गुनीनां–उत्तरफल्गुनीनां शोध्यं, किमुक्तं भवति?–द्विसप्तत्यधिकेन शतेन पुनर्वसुप्रभृतीनि उत्तरफल्गुनीपर्यन्तानि नक्षत्राणि शोध्यन्ते, एवमुत्तरत्रापि भावार्थो भावनीयः, तथा विशाखासु–विशाखापर्यन्तेषु नक्षत्रेषु शोधनकं द्वे शते द्विनवत्यधिके २९२, अथानन्तरमुत्तराषाढापर्यन्तानि नक्षत्राण्यधिकृत्य शोध्यानि–चत्वारि शतानि द्विचत्वारिंशदधिकानि ४४२ 'एअं पुणवसुस्स य बिसट्ठिभागसहिअं तु सोहणगं । एत्तो अभिईआइं बीअं वोच्छामि सोहणगं ॥ ६ ॥' एतद्–अनन्तरोक्तं शोधनकं सकलमपि पुनर्वसुसत्कद्वाषष्टिभागसहितमवसेयं, एतदुक्तं भवति–ये पुनर्वसुसत्का द्वाविंशतिर्मुहूर्त्तास्ते सर्वेऽपि उत्तरस्मिन् २ शोधनके अन्तःप्रविष्टा वर्त्तन्ते न तु द्वाषष्टिभागास्ततो यत् यत् शोधनकं शोध्यते तत्र तत्र पुनर्वसुसत्काः षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः उपरितनाः शोधनीया इति, एतच्च पुनर्वसुप्रभृति उत्तराषाढापर्यन्तं प्रथमं शोधनकं, अत ऊर्ध्वमभिजितमादिं कृत्वा द्वितीयं शोधनकं वक्ष्यामि, तत्र प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति–'अभिइस्स नव मुहुत्ता बिसट्ठिभागा य होंति चउवीसं । छावट्ठी य समत्ता भागा सत्तट्ठिछेअकया ॥ ७ ॥ इगुणट्ठं पोट्ठवया तिसु चेव नवोत्तरेसु रोहिणिआ । तिसु णवणवएसु भवे पुणवसू फग्गुणीओ अ ॥ ८ ॥ पंचेव इगुणवन्नं सयाइं इगुणत्तराइं छच्चेव । सोज्झाणि विसाहासु मूले सत्तेव चोआला ॥ ९ ॥ अट्ठसय इगूणवीसा सोहणगं उत्तराण साढाणं । चउवीसं खलु भागा छावट्ठी चुण्णिआओ अ ॥ १० ॥' अभिजितो नक्षत्रस्य शोधनकं नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सत्का-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिच्छेदकृताः परिपूर्णाः षट्षष्टिभागाः, तथा एकोनषष्टं–एकोनषष्ट्यधिकं शतं प्रोष्ठपदानां–उत्तरभद्रपदानां शोधनकं, किमुक्तं भवति ?–एकोनषष्ट्यधिकेन शतेनोत्तरभद्रपदापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, एवमुत्तरत्रापि भावनीयं, तथा त्रिषु नवोत्तरेषु रोहिणीपर्यन्तानि शुद्ध्यन्ति, तथा त्रिषु नवनवतेषु–नवनवत्यधिकेषु शतेषु शोधितेषु पुनर्वसुपर्यन्तं नक्षत्रजातं शुद्ध्यति, तथा एकोनपञ्चाशदधिकानि पञ्च शतानि प्राच्यफाल्गुन्युत्तरफल्गुनीपर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, तथा विशाखासु–विशाखापर्यन्तेषु नक्षत्रेषु एकोनसप्तत्यधिकानि षट् शतानि ६६९ शोध्यानि, मूलपर्यन्ते नक्षत्रजाते सप्त शतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ७४४ शोध्यानि, उत्तराषाढानां–उत्तराषाढापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनकं अष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि ८१९, सर्वेष्वपि च शोधनकेषु उपरि अभिजितो नक्षत्रस्य सम्बन्धिनो मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाश्चतुर्विंशतिः षट्षष्टिश्च चूर्णिकाभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागाः शोधनीयाः, 'एआइं सोहइत्ता जं सेसं तं हवइ णक्खत्तं । इत्थं करेइ उडुवइ सूरेण समं अमावासं ॥ ११ ॥' एतानि–अनन्तरोदितानि शोधनकानि यथायोगं शोधयित्वा यच्छेषमवतिष्ठते तन्नक्षत्रं, एतस्मिंश्च नक्षत्रे करोति सूर्येण समं उडुपतिरमावास्यामिति करणगाथासमूहाक्षरार्थः, भावना त्वियं–केनापि पृच्छ्यते–युगस्यादौ प्रथमा अमावास्या केन नक्षत्रेणोपेता समाप्तिमुपैतीति ?, तत्र पूर्वोदितस्वरूपोऽवधार्यराशिः षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः पञ्च द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभाग इत्येवंरूपो ध्रियते, धृत्वा चैकेन गुण्यते, प्रथमायाः अमावा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थाया: पृष्टत्वात्, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति जातस्तावानेव राशिः, ततस्तस्माद् द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा इत्येवंरूपं पुनर्वसु शोध्यते, तत्र षट्षष्टिमुहूर्त्तेभ्यो द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शुद्धाः स्थिताः पश्चात् चतुश्चत्वारिंशत् ४४, तेभ्य एकं मुहूर्त्तमपकृष्य तस्य द्वाषष्टिभागाः क्रियन्ते कृत्वा च ते द्वाषष्टिभागराशिमध्ये प्रक्षिप्यन्ते जाताः सप्तषष्टिः तेभ्यः षट्चत्वारिंशच्छुद्धाः शेषास्तिष्ठन्त्येकविंशतिः, त्रिचत्वारिंशतो मुहूर्त्तेभ्यस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः पुष्यः शुद्धः, पश्चात् त्रयोदश मुहूर्त्ताः, अश्लेषानक्षत्रं चार्द्धक्षेत्रमिति पञ्चदशमुहूर्त्तप्रमाणं, तत इदमागतं–अश्लेषानक्षत्रस्यैकस्मिन् मुहूर्त्ते एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधाच्छिन्नस्य षट्षष्टिभागेषु शेषेषु प्रथममावास्यासन्नमिति उपगच्छतीति, एवं सर्वास्वप्यमावास्यासु करणं भावनीयम् । अत्र पूर्णिमाप्रक्रमे यदमावास्याकरणमुक्तं तत्करणगाथानुरोधेन युगादावमावस्यायाः प्राथम्येन क्रमप्राप्तत्वेन च। अथ प्रस्तुतं पूर्णिमाकरणं 'इच्छापुण्णिमगुणिओ अवहारो सोऽत्थ होइ कायव्वो । तं चेव य सोहणगं अभिईआइं तु कायव्वं ॥ १ ॥ सुद्धंमि अ सोहणगे जं सेसं तं हवेज्ज णक्खत्तं । तत्थ य करेइ उडुवइ पडिपुण्णं पुण्णिमं विमलं ॥ २ ॥' यथा पूर्वममावास्याचन्द्रनक्षत्रपरिज्ञानार्थमवधार्यराशिरुक्तः स एवात्रापि–पौर्णमासीचन्द्रनक्षत्रपरिज्ञानविधौ ईप्सितपूर्णिमासीगुणितः–यां पूर्णमासीं ज्ञातुमिच्छसि तत्सङ्ख्यया गुणितः कर्तव्यः, गुणिते च सति तदेव–पूर्वोक्तं शोधनकं कर्तव्यं, केवलमभिजिदादिकं न तु पुनर्वसुप्रभृतिकं, शुद्धे च शोधनके यच्छेषमवतिष्ठते तद्भवेन्नक्षत्रं पौर्णमासीयुक्तं, तस्मिंश्च नक्षत्रे करोति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उडुपतिः—चन्द्रमाः परिपूर्णां पूर्णमासीं विमलामिति करणगाथाद्वयाक्षरार्थः, भावना त्वियं—कोऽपि पृच्छति—युगस्यादौ प्रथमा पौर्णमासी कस्मिन् चन्द्रनक्षत्रयोगे समाप्तिमुपगच्छतीति, तत्र षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्यैकः सप्तषष्टिभाग इत्येवंरूपोऽवधार्यराशिर्ध्रियते, स प्रथमायां पौर्णमास्यां किल पृष्टमित्येकेन गुण्यते, 'एकेन च गुणितं तदेव भवति' ततस्तस्मादभिजितो नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा इत्येवंप्रमाणं शोधनकं शोधनीयम्, तत्र च षट्षष्टेर्नव मुहूर्त्ताः शुद्धाः स्थिताः पश्चात् सप्तपञ्चाशत् तेभ्यः एको मुहूर्त्तो गृहीत्वा द्वाषष्टिभागीकृतः ते च द्वाषष्टिभागराशौ पञ्चकरूपे प्रक्षिप्यन्ते जाताः सप्तषष्टिभागास्तेभ्यश्चतुर्विंशतिः शुद्धाः स्थिताः पश्चात् त्रिचत्वारिंशत्तेभ्यः एकं रूपमादाय सप्तषष्टिभागीक्रियते ते च सप्तषष्टिरपि भागाः सप्तषष्टिभागैकमध्ये प्रक्षिप्यन्ते जाता अष्टषष्टिभागास्तेभ्यः षट्षष्टिः शुद्धाः स्थितौ पश्चाद् द्वौ सप्तषष्टिभागौ, ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणः शुद्धः स्थिताः पश्चान्मुहूर्त्ताः षड्विंशतिः, तत इदमागतं-धनिष्ठानक्षत्रस्य त्रिषु मुहूर्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिसंख्येषु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चषष्टिसंख्येषु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु प्रथमा पौर्णमासी समाप्तिमियर्त्ति, एवं पञ्चानां युगभाविनीनां श्राविष्ठीनां पूर्णिमानां क्वचित् श्रवणेन क्वचिद् धनिष्ठया च परिसमाप्तिर्भावनीया । तथा प्रौष्ठपदीमिति—भाद्रपदीं भदन्त! पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि योगं योजयन्ति?, भगवानाह—गौतम! त्रीणि नक्षत्राणि योजयन्ति, तद्यथा—शतभिषक् पूर्वभद्रपदा उत्तर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्रपदा, आसां पञ्चानामपि युगभाविनीनामुक्तनक्षत्राणां मध्ये अन्यतरेण परिसमापनात्, आश्वयुजीं भदन्त ! पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि योजयन्ति ?, गौतम ! द्वे योजयतः–रेवती अश्विनी च, इहोत्तरभद्रपदानक्षत्रमपि कांचिदाश्वयुजीं पौर्णमासीं परिसमापयति परं तत्प्रौष्ठपदीमपि, लोके च प्रौष्ठपद्यामेव तस्य प्राधान्यं तन्नाम्ना तस्याः अभिधानाद् अतस्तदिह न विवक्षितमित्यदोषः, अतो द्वे समापयत इत्युक्तं, आसां बह्वीनां युगभाविनीनामुक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण परिसमापनात्, तथा कार्त्तिकीं पौर्णमासीं द्वे नक्षत्रे, तद्यथा–भरणी कृत्तिका च, इहाप्यश्विनीनक्षत्रं कांचित् कार्त्तिकीं पौर्णमासीं परिसमापयति परं तदाश्वयुज्यां पौर्णमास्यां प्रधानमितीह न विवक्षितमित्यदोषः, अतोऽत्रापि द्वे इत्युक्तं, आसां बह्वीनां युगभाविनीनां उक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण परिसमापनात्, तथा मार्गशीर्षीं पौर्णमासीं द्वे नक्षत्रे, तद्यथा–रोहिणी मृगशिरश्च, आसां पंचानामपि युगभाविनीनां उक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण परिसमापनात्, तथा पौषीं पौर्णमासीं त्रीणि नक्षत्राणि, तद्यथा–आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्यश्च, आसां युगमध्येऽधिकमाससम्भवेन षण्णामपि युगभाविनीनां उक्तनक्षत्राणां मध्येऽन्यतरेण परिसमापनात्, तथा माघीं पौर्णमासीं द्वे नक्षत्रे, तद्यथा–अश्लेषा मघा चशब्दात् पूर्वफल्गुनीपुष्यौ ग्राह्यौ, तेनासां युगभाविनीनां पञ्चानामपि मध्ये काश्चिदश्लेषा काश्चिन्मघा काश्चित् पूर्वफल्गुनी कांचित्पुष्यश्च परिसमापयति, तथा फाल्गुनीं पौर्णमासीं द्वे नक्षत्रे, तद्यथा–पूर्वफल्गुनी उत्तरफल्गुनी च, आसां पंचानामपि युगभाविनीनां उक्तयोर्नक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण समापनात्, तथा चैत्रीं पौर्णमासीं द्वे नक्षत्रे, तद्यथा—हस्तः चित्रा च, आसां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचानामपि युगभाविनीनामुक्तयोर्नक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण समापनात्, तथा वैशाखीं द्वे, तद्यथा–स्वातिर्विशाखा च-शब्दादनुराधा, इदं हि अनुराधानक्षत्रं विशाखातः परं, विशाखा चास्यां पूर्णिमास्यां प्रधाना ततः परस्यामेव पौर्ण-मास्यां तत्साक्षादुपात्तं नेहेति अतो द्वे इत्युक्तं, आसां बह्वीनां युगभाविनीनां उक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण समापनात्, तथा ज्येष्ठामूलीं पौर्णमासीं त्रीणि, तद्यथा–अनुराधा ज्येष्ठा मूलं च, आसां पंचानामपि युगभाविनीनां उक्तनक्षत्राणां मध्येऽन्यतरेण समापनात्, तथा आषाढीं पौर्णमासीं द्वे, तद्यथा–पूर्वाषाढा उत्तराषाढा च, आसां युगान्ते अधिकमा-ससम्भवेन षण्णामपि युगभाविनीनां उक्तनक्षयोर्मध्येऽन्यतरेण समापनात्। सम्प्रति कुलद्वारप्रतिपादनेन स्वतः सिद्धा-मपि कुलादियोजनां मन्दमतिशिष्यबोधनाय प्रश्नयन्नाह—'साविट्ठिण्ण'मित्यादि, श्राविष्ठीं भदन्त! किं कुलं युनक्ति उपकुलं युनक्ति कुलोपकुलं युनक्ति?, भगवानाह—गौतम! कुलं वा युनक्ति वाशब्दः समुच्चये ततः कुलमपि युनक्ती-त्यर्थः, एवमुपकुलमपि कुलोपकुलमपि, तत्र कुलं युञ्जत् धनिष्ठानक्षत्रं युनक्ति, तस्यैव कुल (तया) प्रसिद्धस्य सतः श्राविष्ठ्यां पौर्णमास्यां भावात्, उपकुलं युञ्जत् श्रवणनक्षत्रं युनक्ति, कुलोपकुलं युञ्जत् अभिजिन्नक्षत्रं युनक्ति, तद्धि तृतीयायां श्राविष्ठ्यां पूर्णिमास्यां द्वादशमुहूर्त्तेषु किञ्चित्समधिकेषु शेषेषु चन्द्रेण सह योगमुपैति, ततः श्रवणसहचरत्वात् स्वयमपि तस्याः पौर्णमास्याः पर्यन्तवर्तित्वात् तदपि तां परिसमापयति इति विवक्षितत्वाद्युनक्तीत्युक्तं, सम्प्रत्युपसंहारमाह— यत एवं त्रिभिरपि कुलादिभिः श्राविष्ठ्याः पौर्णमास्या योजनाऽस्ति ततः श्राविष्ठीं पौर्णमासीं कुलं वा युनक्ति उपकुलं

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्तीति वक्तव्यं स्यात्–इति स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादनं कुर्यात्, यदिवा कुलेन वा युक्ता सती श्राविष्ठी पौर्णमासी उपकुलेन वा युक्ता कुलोपकुलेन वा युक्ता युक्तेति वक्तव्यं स्यात्। तथा 'पोट्ठवदिण्णं भन्ते! इत्यादि, प्रौष्ठपदीं पौर्णमासीं भदन्त! किं कुलं वा युनक्तीत्यादि पृच्छा, गौतम! कुलं वा उपकुलं वा कुलोपकुलं वा युनक्ति, तत्र कुलं युञ्जत् उत्तरभद्रपदानक्षत्रं युनक्ति, उपकुलं युञ्जत् पूर्वभद्रपदानक्षत्रं युनक्ति, कुलोपकुलं युञ्जत् शतभिषक् नक्षत्रं युनक्ति, उपसंहारमाह—यत एवं त्रिभिरपि कुलादिभिः प्रौष्ठपद्याः पौर्णमास्याः योजनाऽस्ति ततः प्रौष्ठपदीं पौर्णमासीं कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्तीति वक्तव्यं स्यात् इति स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादनं कुर्यात्, यदिवा कुलेन वा युक्ता सती प्रौष्ठपदी पौर्णमासी उपकुलेन वा युक्ता कुलोपकुलेन वा युक्ता युक्तेति वक्तव्यं स्यात् इति। तथा 'अस्सोइण्ण'मिति आश्वयुजीं भदन्तेति पृच्छा, गौतम! कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति नो लभते कुलोपकुलं, तत्र कुलं युञ्जत् अश्विनीनक्षत्रं युनक्ति, उपकुलं युञ्जत् रेवतीनक्षत्रं युनक्ति, उपसंहारमाह—यत एवं द्वाभ्यां कुलादिभ्यां आश्वयुज्याः पौर्णमास्या योजनास्ति तत आश्वयुजीं पौर्णमासीं कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्तीति वक्तव्यं स्यात्–इति स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादनं कुर्यात्, यदिवा कुलेन वा उपकुलेन वा युक्ता सती आश्वयुजी पौर्णमासी युक्तेति वक्तव्यं स्यात् इति, तथा कार्त्तिकीं भदन्त! पौर्णमासीं किं कुलमित्यादि पृच्छा, गौतम! कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति नो कुलोपकुलं युनक्ति, तत्र कुलं युञ्जत् कृत्तिकानक्षत्रं युनक्ति उपकुलं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युञ्जत् भरणीनक्षत्रं युनक्ति कार्त्तिकीमित्याद्युपसंहारवाक्यं प्राग्वत् इति, मार्गशीर्षीं भदन्त! पौर्णमासीं किं कुलं तदेवेति द्वे युंक्तः, कोऽर्थः?–कुलमुपकुलं वा युनक्ति न भवति कुलोपकुलं, तत्र कुलं युञ्जत् मृगशिरो नक्षत्रं युनक्ति, उपकुलं युञ्जत् रोहिणी, मार्गशीर्षीं पौर्णमासीमित्याद्युपसंहारवाक्यं प्राग्वत्, अथ लाघवार्थमतिदेशमाह—'एवं सेसिआओ'इत्यादि, एवं शेषिका अपि–पौष्याद्यास्तावद्वक्तव्याः यावदाषाढीपूर्णिमा इत्यर्थः, पौषीं ज्येष्ठामूलीं च पूर्णिमां कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्ति, शेषिकायां–माघ्यादीनां कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति, कुलोपकुलं न भण्यते, तदभावादिति । अथामावास्याः—'साविट्ठिण्णं'इत्यादि, श्राविष्ठीं–श्रावणमासभाविनीं अमावास्यां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति?–यथायोगं चन्द्रेण सह संयुज्य श्राविष्ठीं अमावास्यां परिसमापयन्ति?, भगवानाह–गौतम! द्वे नक्षत्रे युंक्तः, तद्यथा—अश्लेषा मघा, इह व्यवहारनयमतेन यस्मिन्नक्षत्रे पौर्णमासी भवति तत आरभ्यार्वाक्तने पञ्चदशे चतुर्दशे वा नक्षत्रे अमावास्या भवति, यस्मिंश्च नक्षत्रे अमावास्या तत आरभ्य परतः पञ्चदशे चतुर्दशे वा नक्षत्रे पौर्णमासी, तत्र श्राविष्ठी पौर्णमासी किल श्रवणे धनिष्ठायां चोक्ता ततोऽमावास्यायामप्यस्यां अश्लेषा मघा चोक्ता, लोके च तिथिगणितानुसारतो गतायामप्यमावास्यायां वर्त्तमानायामपि प्रतिपदि यस्मिन्नहोरात्रे प्रथमतोऽमावास्याऽभूत् ततः सकलोऽप्यहोरात्रोऽमावास्येति व्यवह्रियते, ततो मघानक्षत्रमप्येवं व्यवहारतोऽमावास्यायां प्राप्यते इति न कश्चिद्विरोधः, परमार्थतः पुनरिमाममावास्यां इमानि त्रीणि नक्षत्राणि परिसमापयन्ति, तद्यथा–पुनर्वसू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्योऽश्लेषा च, अस्यां पञ्चानामपि युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनात्, करणं चात्र प्रागुक्तं, तथा प्रौष्ठपदीं भदन्त! अमावास्यां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति?, गौतम! द्वे नक्षत्रे युंक्तः, तद्यथा—पूर्वफल्गुनी उत्तरफल्गुनी चशब्दान्मघा ग्राह्या, अस्यास्तु भाद्रपदपूर्णिमावर्त्तिशतभिषक्को व्यवहारतोऽपि करणरीत्या निश्चयतश्चार्वागणने पंचदशत्वात्, आसां पंचानामपि युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनाच्च, करणं च पूर्ववत्, तथा आश्वयुजीममावास्यां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति?, गौतम! द्वे नक्षत्रे युंक्तः, तद्यथा—हस्तश्चित्रा च, इदमपि व्यवहारतः निश्चयतस्तु आश्वयुजीममावास्यां त्रीणि नक्षत्राणि समापयन्ति, तद्यथा–उत्तरफल्गुनी हस्तश्चित्रा च, यच्च पूर्वमाश्वयुज्यां पूर्णिमायामुत्तरभद्रपदा प्रागुक्तहेतोर्न विवक्षिता परं निश्चयतः सा आयातीति तस्याः पंचदशत्वादुत्तरफल्गुन्यत्र गृहीता, आसां च पंचानां युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनात् भावना प्राग्वत्, तथा कार्त्तिकीं अमावास्यां द्वे नक्षत्रे युंक्तः, तद्यथा–स्वातिर्विशाखा च, एतदपि व्यवहारतः निश्चयतस्तु त्रीणि स्वातिर्विशाखा चित्रा च, अस्यामपि पूर्णिमायां अश्विन्यनुरोधेन चित्रोक्ता, आसां पंचानामपि युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनादिति, तथा मार्गशीर्षीं त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा–अनुराधा ज्येष्ठा मूलश्च, एतदपि व्यवहारतो निश्चयतः पुनरिमानि त्रीणि नक्षत्राणि अमावास्या परिसमापयन्ति, तद्यथा–विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा च आसां पंचानां युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनात्, तथा पौषीममावास्यां द्वे नक्षत्रे युंक्तः–पूर्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

षाढा उत्तराषाढा च, एतदपि व्यवहारत उक्तं निश्चयतः पुनस्त्रीणि नक्षत्राणि परिसमापयन्ति, तद्यथा–मूलं पूर्वाषाढा उत्तराषाढा च, आसां युगमध्येऽधिकमाससम्भवेन षण्णामपीत्यादि पूर्ववत्, तथा माघीममावास्यां त्रीणि–अभिजित् श्रवणो धनिष्ठा, एतत्पूर्णिमावर्त्तिभ्यामश्लेषामघाभ्यामभिजितः षोडशत्वेन व्यवहारातीतत्वेऽपि श्रवणसम्बद्धत्वात् पंचदशत्वं समाधेयम्, एतदपि व्यवहारतः निश्चयतः पुनस्त्रीणि उत्तराषाढा अभिजित् श्रवणश्च, आसां पंचानामपीत्यादि पूर्ववत्, तथा फल्गुनीं त्रीणि तद्यथा—शतभिषक् पूर्वभद्रपदा उत्तरभद्रपदा, एतदपि व्यवहारतः निश्चयतस्त्रीणि तद्यथा–धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वभद्रपदा च, आसां पंचानामपीत्यादि तथैव, तथा चैत्रीं द्वे नक्षत्रे–रेवती आश्विनी च, एतदपि व्यवहारतः निश्चयतस्तु त्रीणि तद्यथा–पूर्वभद्रपदा उत्तरभद्रपदा रेवती च, आसामपीत्यादि तथैव, तथा (वैशाखी द्वे नक्षत्रे–भरणी कृत्तिका च, एतदपि व्यवहारतः निश्चयतस्तु त्रीणि तद्यथा–रेवती अश्विनी भरणी च, आसामपीत्यादि तथैव) ज्येष्ठामूलीं द्वे–रोहिणी मृगशिरश्च, एतदपि व्यवहारतः निश्चयतस्तु इमे द्वे नक्षत्रे–रोहिणी कृत्तिका च, आसामपीत्यादि पूर्ववत्, तथा आषाढीं त्रीणि नक्षत्राणि–आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यः, एतदपि व्यवहारतः परमार्थतस्तु इमानि त्रीणि नक्षत्राणि–मृगशिरः आर्द्रा पुनर्वसू च, आसां युगान्तेऽधिकमाससम्भवेन षण्णामपि [पञ्चानां] तथैवेति, अत्र सर्वत्र नक्षत्रगणनामध्ये यत्राभिजिदन्तर्भवति तत्र न गण्यं, स्तोककालत्वात्, यत उक्तं समवायाङ्गे–"जम्बुद्दीवे २ अभिईवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्तेहिं संववहारो वट्टइ'त्ति । अथामावास्यासु कुलादियोजनाप्रश्नमाह—'साविट्ठिण्ण'मित्यादि, श्राविष्ठीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

भदन्त! अमावास्यां किं कुलं युनक्ति उपकुलं युनक्ति कुलोपकुलं युनक्ति?, भगवानाह—गौतम! कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति वाशब्दः समुच्चये, नो लभते कुलोपकुलं, तत्र कुलं युञ्जत् श्राविष्ठीममावास्यां मघानक्षत्रं युनक्ति, एतच्च प्रागुक्तयुक्त्या व्यवहारत उक्तं परमार्थतः पुनः कुलं युञ्जत् पुष्यनक्षत्रं युनक्तीति, एतच्च प्रागेवोक्तम्, एवमुत्तरसूत्रमपि व्यवहारमधिकृत्य यथायोगं परिभावनीयमिति, उपकुलं युञ्जत् अश्लेषानक्षत्रं युनक्ति, अथोपसंहारमाह—यत उक्तप्रकारेण द्वाभ्यां कुलाभ्यां श्राविष्ठया अमावास्यायाश्चन्द्रयोगः समस्ति, न तु कुलोपकुलेन, ततः श्राविष्ठीममावास्यां कुलमपि युनक्ति उपकुलमपि युनक्ति इति वक्तव्यं स्यात्, यदिवा कुलेन वा युक्ता उपकुलेन वा युक्ता सती श्राविष्ठी अमावास्या युक्तेति वक्तव्यं स्यात्, तथा प्रौष्ठपदीं भदन्त! अमावास्यामित्यादि तदेव प्रश्नसूत्रं, उत्तरसूत्रे द्वे कुलोपकुले युंक्तः नो युनक्ति कुलोपकुलं, तत्र कुलं युञ्जत् उत्तरफल्गुनीनक्षत्रं युनक्ति उपकुलं युञ्जत् पूर्वफल्गुनीनक्षत्रं युनक्ति, उपसंहारसूत्रं तथैव, मार्गशीर्षीं तदेव प्रश्नसूत्रं किं कुलं जोएईत्यादि, तत्र कुलं युंजत् मूलनक्षत्रं युनक्ति उपकुलं युंजत् ज्येष्ठानक्षत्रं कुलोपकुलं युंजत् अनुराधानक्षत्रं युनक्ति, यावत्करणादुपसंहारसूत्रं युक्तेति वक्तव्यं स्यात्, एवं माघ्याः फाल्गुन्याः आषाढ्याश्च कुलं वा उपकुलं वा कुलोपकुलं वा, अवशेषिकाणां कुलं वा उपकुलं वा युनक्तीति वाच्यम् । अथ सन्निपातद्वारम्—तत्र सन्निपातो नाम पूर्णिमानक्षत्रात् अमावास्यायाममावास्यानक्षत्राच्च पूर्णिमायां नक्षत्रस्य नियमेन सम्बन्धस्तस्य सूत्रम्—'जया णं भन्ते'इत्यादि, यदा भदन्त! श्राविष्ठी–श्रविष्ठानक्षत्रयुक्ता पूर्णिमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवति तदा तस्या अर्वाक्तनी अमावास्या माघी–मघानक्षत्रयुक्ता भवति यदा तु माघी–मघानक्षत्रयुक्ता पूर्णिमा भवति तदा पाश्चात्या अमावास्या श्राविष्ठी–श्रविष्ठायुक्ता भवतीति, काक्का प्रश्नः, भगवानाह—हन्तेति भवति, तत्र गौतम! यदा श्राविष्ठीत्यादि तदेव वक्तव्यं, प्रश्नेन समानोत्तरत्वात्, अयमर्थः–इह व्यवहारनयमतेन यस्मिन्नक्षत्रे पौर्णमासी भवति तत आरभ्य अर्वाक्तने पंचदशे चतुर्दशे वा नक्षत्रे नियमतोऽमावास्या, ततो यदा श्राविष्ठी–श्रविष्ठानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा अर्वाक्तनी अमावास्या माघी–मघानक्षत्रयुक्ता भवति, श्रविष्ठानक्षत्रादारभ्य मघानक्षत्रस्य पूर्वं चतुर्दशत्वात्, अत्र सूर्यप्रज्ञप्तिचन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्त्योस्तु मघानक्षत्रादारभ्य श्रविष्ठानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वादिति पाठस्तेनात्र विचार्यं, एतच्च श्रावणमासमधिकृत्य भावनीयं, यदा भदन्त! माघी–मघानक्षत्रयुक्ता पूर्णिमा भवति तदा श्राविष्ठी–श्रविष्ठानक्षत्रयुक्ता पाश्चात्या अमावास्या भवति, मघानक्षत्रादारभ्य पूर्वं श्रविष्ठानक्षत्रस्य पंचदशत्वात्, इदं च माघमासमधिकृत्य भावनीयं, यदा भदन्त! प्रौष्ठपदी–उत्तरभद्रपदायुक्ता पौर्णमासी भवति तदा पाश्चात्या अमावास्या उत्तरफल्गुनीनक्षत्रयुक्ता भवति, उत्तरभद्रपदात् आरभ्य पूर्वमुत्तरफल्गुनीनक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, एतच्च भाद्रपदमासमधिकृत्यावसेयं, यदा चोत्तरफाल्गुनीनक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा अमावास्या प्रौष्ठपदी–उत्तरभद्रपदोपेता भवति, उत्तरफल्गुनीमारभ्य पूर्वमुत्तरभद्रपदानक्षत्रस्य चतुर्दशत्वात्, इदं च फाल्गुनमासमधिकृत्योक्तं, एवमेतेनाभिलापेन इमाः पूर्णिमा अमावास्याश्च नेतव्याः, यदा आश्विनी अश्विनीनक्षत्रोपेता भवति तदा पाश्चात्यानन्तरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

अमावास्या चैत्री–चित्रानक्षयुक्ता भवति, अश्विन्या आरभ्य पूर्वं चित्रानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, एतच्च व्यवहारनयमधिकृत्योक्तमवसेयं निश्चयत एकस्यामप्यश्वयुग्मासभाविन्याममावास्यायां चित्रानक्षत्रासम्भवात्, एतच्च प्रागेव दर्शितं, यदा च चैत्री–चित्रानक्षोपेता पौर्णमासी भवति तदा पाश्चात्या अमावास्या आश्विनी–अश्विनीनक्षत्रयुक्ता भवति, एतदपि व्यवहारतः निश्चयत एकस्यामपि चैत्रमासभाविन्याममावास्यायां अश्विनीनक्षत्रस्यासम्भवात्, एतदपि सूत्रमाश्विनचैत्रमासावधिकृत्य प्रवृत्तं, यदा च कार्त्तिकी–कृत्तिकानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा वैशाखी–विशाखानक्षत्रयुक्ता अमावास्या भवति, कृत्तिकातोऽर्वाक् विशाखायाः पञ्चदशत्वात्, यदा वैशाखी–विशाखानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा ततोऽनन्तरा पाश्चात्याऽमावास्या कार्त्तिकी–कृत्तिकानक्षत्रोपेता भवति, विशाखातः पूर्वं कृत्तिकायाः चतुर्दशत्वात्, एतच्च कार्त्तिकवैशाखमासावधिकृत्योक्तं, यदा च मार्गशीर्षी–मृगशिरोयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा ज्येष्ठामूली–ज्येष्ठामूलनक्षत्रोपेता अमावास्या, यदा ज्येष्ठामूली पौर्णमासी तदा मार्गशीर्षी अमावास्या, एतच्च मार्गशीर्षज्येष्ठमासावधिकृत्य भावनीयं, यदा पौषी–पुष्यनक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी तदा आषाढी–पूर्वाषाढानक्षत्रयुक्ता अमावास्या भवति, यदा पूर्वाषाढानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति तदा पुष्यनक्षत्रयुक्ता अमावास्या भवति, एतच्च पौषाषाढमासावधिकृत्योक्तं, उक्तानि मासार्द्धमासपरिसमापकानि नक्षत्राणि । सम्प्रति स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया मासपरिसमापकं नक्षत्रवृन्दमाह, तत्र प्रथमतो वर्षाकालाहोरात्रपरिसमापकनक्षत्रसूत्रम्—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ वर्षाकाळ-अहोरात्र-आदि परिसमापनक नक्षत्रसूत्रम् प्ररुप्यते

वासाणं पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गो०! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं०–उत्तरासाढा अभिई सवणो धणिट्ठा, उत्तरासाढा चउद्दस अहोरत्ते णेइ, अभिई सत्त अहोरत्ते णेइ, सवणो अट्ठऽहोरत्ते णेइ धणिट्ठा एगं अहोरत्तं णेइ, तंसि च णं मासंसि चउरंगुलपोरसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स चरिमदिवसे दो पदा चत्तारि अ अंगुला पोरिसी भवइ । वासाणं भन्ते! दोच्चं मासं कइ णक्खत्ता णेंति?, गो०! चत्तारि–धनिट्ठा सयभिसया पुव्वभद्दवया उत्तराभद्दवया, धणिट्ठा णं चउद्दस अहोरत्ते णेइ सयभिसया सत्त अहोरत्ते णेइ पुव्वाभद्दवया अट्ठ अहोरत्ते णेइ उत्तराभद्दवया एगं, तंसि च णं मासंसि अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ, तस्स मासस्स चरिमे दिवसे दो पया अट्ठ य अंगुला पोरिसी भवइ । वासाणं भन्ते! तइअं मासं कइ णक्खत्ता णेंति?, गो०! तिण्णि णक्खत्ता णेंति तं०–उत्तरभद्दवया रेवई अस्सिणी, उत्तरभद्दवया चउद्दस राइंदिए णेइ रेवई पण्णरस अस्सिणी एगं, तंसि च णं मासंसि दुवालसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहंट्ठाइं तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ । वासाणं भन्ते! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गो०! तिण्णि–अस्सिणी भरणी कत्तिआ, अस्सिणी चउद्दस भरणी पन्नरस कत्तिआ एगं, तंसि च णं मासंसि सोलसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स चरमे दिवसे तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ । हेमन्ताणं भन्ते! पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गो०! तिण्णि–कत्तिआ रोहिणी मिगसिरं, कत्तिआ चउद्दस रोहिणी पण्णरस मिगसिरं एगं अहोरत्तं णेइ, तंसि च णं मासंसि वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं अट्ठ य अंगुलाइं पोरिसी भवइ, हेमंताणं भन्ते! दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गोअमा! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तंजहा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिअसिरं अद्धा पुणव्वसू पुस्सो, मिअसिरं चउद्दस राइंदिआइं णेइ अद्धा अट्ठ णेइ पुणव्वसू सत्त राइंदिआइं पुस्सो एगं राइंदिअं णेइ, तया णं चउव्वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं चत्तारि पयाइं पोरिसी भवइ, हेमन्ताणं भंते! तच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गोअमा! तिण्णि–पुस्सो असिलेसा महा, पुस्सो चोद्दस राइंदिआइं णेइ असिलेसा पण्णरस महा एकं, तया णं वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ। हेमंताणं भन्ते! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गोअमा! तिण्णि ण०, तं०–महा पुव्वाफल्गुणी उत्तरफग्गुणी, महा चउद्दस राइंदिआइं णेइ पुव्वाफग्गुणी पण्णरस राइंदिआइं णेइ उत्तराफग्गुणी एगं राइंदिअं णेइ, तया णं सोलसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ। गिम्हाणं भन्ते! पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गोअमा! तिण्णि णक्खत्ता णेंति–उत्तराफग्गुणी हत्थो चित्ता, उत्तराफग्गुणी चउद्दस राइंदिआइं णेइ हत्थो पण्णरस राइंदिआइं णेइ चित्ता एगं राइंदिअं णेइ, तया णं दुवालसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ। गिम्हाणं भन्ते! दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेति?, गोअमा! तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं०–चित्ता साई विसाहा, चित्ता चउद्दस राइंदिआइं णेइ साई पण्णरस राइंदिआइं णेइ विसाहा एगं राइंदिअं णेइ, तया णं अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि दो पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ। गिम्हाणं भन्ते! तच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गो०! चत्तारि णक्खत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेंति, तंजहा—विसाहाऽणुराहा जेट्ठा मूलो, विसाहा चउद्दस राइंदिआइं णेइ अणुराहा अट्ठ राइंदिआइं णेइ जेट्ठा सत्त राइंदिआइं णेइ मूलो एक्कं राइंदिअं, तया णं चउरंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि दो पयाइं चत्तारि अ अंगुलाइं पोरिसी भवइ। गिम्हाणं भन्ते! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति?, गोअमा! तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं०—मूलो पुव्वासाढा उत्तरासाढा, मूलो चउद्दस राइंदिआइं णेइ पुव्वासाढा पण्णरस राइंदिआइं णेइ उत्तरासाढा एगं राइंदिअं णेइ,, तया णं वट्टाए समचउरंससंठाणसंठिआए णग्गोहपरिमण्डलाए सकायमणुरंगिआए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं दो पयाइं पोरिसी भवइ। एतेसि णं पुव्ववण्णिआणं पयाणं इमा संगहणी, तं०—जोगो देवयतारग्गगोत्तसंठाण चन्दरविजोगो। कुलपुण्णिमअवमंसा णेआ छाया य बोद्धव्वा ॥ १ ॥ (सूत्रं १६२)

वर्षाणां–वर्षाकालस्य चतुर्मासप्रमाणस्य प्रथममासं–श्रावणलक्षणं कति नक्षत्राणि स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया क्रमेण नयन्ति?, द्विकर्मकत्वादस्य समाप्तिमिति गम्यते, कोऽर्थः?–वक्ष्यमाणसङ्ख्याङ्कस्वस्वदिनेषु इमानि नक्षत्राणि यदा अस्तमयन्ति तदा श्रावणमासेऽहोरात्रसमाप्तिरित्यर्थः, तेनैतानि रात्रिपरिसमापकत्वाद्रात्रिनक्षत्राण्युच्यन्ते, भगवानाह—गौतम! चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा–उत्तराषाढा अभिजिच्छ्रवणो धनिष्ठा च, तत्रोत्तराषाढा प्रथमान् चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, तदनन्तरमभिजिन्नक्षत्रं सप्ताहोरात्रान्नयति, ततः श्रवणनक्षत्रमष्टौ अहोरात्रान्नयति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च सर्वसङ्कलनया श्रावणमासस्यैकोनत्रिंशदहोरात्रा गतास्ततः परं श्रावणमासस्य सम्बन्धिनं चरममेकमहोरात्रं धनिष्ठानक्षत्रं नयति, एवं श्रावणमासं चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, अस्य च नेतृद्वारस्य प्रयोजनं रात्रिज्ञानादौ "जं नेइ जया रत्तिं णक्खत्तं तंमि णहचउब्भागे। संपत्ते विरमेज्जा सज्झायपओसकालम्मि ॥ १ ॥" इत्यादौ, तदनुरोधेन च दिनमानज्ञानायाह—तस्मिंश्च श्रावणमासे प्रथमादहोरात्रादारभ्य प्रतिदिनमन्यान्यमण्डलसङ्क्रान्त्या तथा कथञ्चनापि परावर्त्तते यथा तस्य श्रावणमासस्य पर्यन्तेषु चतुरङ्गुलाधिका द्विपदा पौरुषी भवति, अत्र चायं विशेषः—यस्यां सङ्क्रान्तौ यावद्दिनरात्रिमानं तच्चतुर्थोंऽशः पौरुषी यामः प्रहर इतियावत्, आषाढपूर्णिमायां च द्विपदप्रमाणा पौरुषी तस्यां च श्रावणसत्कचतुरङ्गुलप्रक्षेपे चतुरङ्गुलाधिका पौरुषी भवति, माने मेयोपचारादभेदनिर्देशः, तेन चतुरङ्गुलाधिकपौरुष्या छायेति विशेषणविशेष्यभावः, एतदेवाह—तस्य श्रावणमासस्य चरमे दिवसे द्वे पदे चत्वारि चाङ्गुलानि पौरुषी भवति, अथ द्वितीयं मासं पृच्छति—'वासाण'मित्यादि, वर्षाणां—वर्षाकालस्य भदन्त! द्वितीयं भाद्रपदलक्षणं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति?, अस्य वाक्यस्य भावार्थः प्राग्वद् भावनीयः, गौतम! चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा—धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वभद्रपदा उत्तरभद्रपदा च, तत्र धनिष्ठा आद्यान् चतुर्दश अहोरात्रान् नयति तदनन्तरं शतभिषक् सप्ताहोरात्रान् नयति ततः परमष्टावहोरात्रान् पूर्वभद्रपदा नयति तदनन्तरमेकमहोरात्रमुत्तरभद्रपदा नयति, एवमेनं भाद्रपदमासं चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तस्मिंश्च मासेऽष्टाङ्गुलपौरुष्या—अष्टाङ्गुलाधिकपौरुष्या छायया सूर्योऽनुपरावर्त्तते, अत्र भावा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

र्थः प्राग्वद् भावनीयः, एतदेवाह–तस्य भाद्रपदमासस्य चरमे दिवसे द्वे पदे अष्ट चाङ्गुलानि पौरुषी भवति, अथ तृतीयं पृच्छति–'वासाणं भन्ते !'त्ति, इत्यादि, वर्षाणां भदन्त ! तृतीयं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ?, गौतम ! त्रीणि नक्षत्राणि-उत्तरभद्रपदा रेवती अश्विनी च, तत्रोत्तरभद्रपदा चतुर्दश रात्रिन्दिवान् नयति, रेवती पञ्चदश रात्रिन्दिवान् नयति, अश्विनी एकं रात्रिन्दिवं नयति, एवं तृतीयं मासं त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति, तस्मिंश्च मासे द्वादशाङ्गुलपौरुष्या–द्वादशाङ्गुलाधिकपौरुष्या छायया सूर्योऽनुपरावर्त्तते, भावार्थः पूर्ववत्, एतदेवाह—तस्य मासस्य चरमे दिवसे रेखापादपर्यन्तवर्त्तिनी सीमा तत्स्थानि त्रीणि पदानि पौरुषी भवति, किमुक्तं भवति ?–परिपूर्णानि त्रीणि पदानि पौरुषी भवति, अथ चतुर्थं पृच्छति–'वासाण'मित्यादि, वर्षाणां–वर्षाकालस्य भदन्त ! चतुर्थं कार्त्तिकलक्षणं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ?, गौतम ! त्रीणि–अश्विनी भरणी कृत्तिका च, तत्राश्विनी चतुर्दशाहोरात्रान् भरणी पञ्चदशाहोरात्रान् कृत्तिका एकमहोरात्रं नयति, तस्मिंश्च मासे षोडशांगुलपौरुष्या–षोडशांगुलाधिकपौरुष्या छायया सूर्योऽनुपरावर्त्तते, भावार्थः पूर्ववत्, एतदेवाह–तस्य मासस्य चरमे दिवसे त्रीणि पदानि चत्वारि चांगुलानि पौरुषी भवति । गतो वर्षाकालः । अथ हेमन्तकालं पृच्छति–'हेमन्ताण'मित्यादि, हेमन्तानां–हेमन्तकालस्य भदन्त ! प्रथमं मार्गशीर्षलक्षणं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ?, गौतम ! त्रीणि न०–कृत्तिका रोहिणी मृगशिरश्च, तत्र कृत्तिका चतुर्दशाहोरात्रान् रोहिणी पञ्चदशाहोरात्रान् मृगशिर एकमहोरात्रं नयति, तस्मिंश्च मासे विंशत्यङ्गुलपौरुष्या–विंशत्यङ्गुलाधिकपौरुष्या छायया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्योऽनुपरावर्त्तते, भावार्थः पूर्ववत्, एतदेवाह—तस्य मासस्य यश्चरमो दिवसस्तस्मिन् दिवसे त्रीणि पदानि अष्ट चांगुलानि पौरुषी भवतीति, अथ द्वितीयं पृच्छति—'हेमन्ताणं भन्ते!'इत्यादि, हेमन्तकालस्य भदन्त! द्वितीयं पौष-नामकं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति?, गौतम! चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा–मृगशिरः आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यश्च, तत्र मृगशिरश्चतुर्दश रात्रिन्दिवान्नयति, आर्द्रा अष्टौ नय, पुनर्वसू सप्त रात्रिन्दिवान्, पुष्यः एकं रात्रिन्दिवं नयति, तदा चतुर्विंशत्यङ्गुलपौरुष्या–चतुर्विंशत्यङ्गुलाधिकपौरुष्या छायया सूर्योऽनुपरावर्त्तते, भावार्थः पूर्ववत्, तस्य मासस्य चरमे दिवसे रेखा–पादपर्यन्तवर्त्तिनी सीमा तत्स्थानि चत्वारि पदानि पौरुषी भवति, किमुक्तं भवति?–परिपूर्णानि चत्वारि पदानि पौरुषी भवति, अथ तृतीयं पृच्छति–'हेमन्ताण'मित्यादि, एतत् सुगमं, अथ चतुर्थं पृच्छति–'हेमन्ताणं भन्ते! चउत्थं'इत्यादि, सुगमं। अतीतो हेमन्तः, अथ ग्रीष्मं पृच्छति—'गिम्हाणं भन्ते! पढमं'इत्यादि, तथा 'गिम्हाणं भन्ते! दोच्चं'इत्यादि, तथा 'गिम्हाणं भन्ते! तच्चं मासं'इत्यादि, तथा 'गिम्हाणं भन्ते! चउत्थं'इत्यादि, चत्वार्यपि इमानि ग्रीष्मकालसूत्राणि सुबोधानि, प्रायः प्राक्तनसूत्रानुसारित्वात्, नवरं तस्मिंश्चाषाढे मासे प्रकाश्यवस्तुनो वृत्तस्य वृत्तया समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितस्य समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितया न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानस्य न्यगोधपरिमण्डलया उपलक्ष-णमेतत् शेषसंस्थानसंस्थितस्य प्रकाश्यस्य वस्तुनः शेषसंस्थानसंस्थितया, आषाढे हि मासे प्रायः सर्वस्यापि प्रकाश्यस्य वस्तुनो दिवसस्य चतुर्भागेऽतिक्रान्ते शेषे वा स्वप्रमाणा छाया भवति, निश्चयतः पुनराषाढमासस्य चरमदिवसे तत्रापि सर्वाभ्यन्तरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मण्डले वर्त्तमाने सूर्ये, ततो यत् प्रकाश्यं वस्तु यत्संस्थानं भवति तस्य छायाऽपि तथासंस्थानोपजायते, तत उक्तम्–वृत्तस्य वृत्तया इत्यादि, एतदेवाह—'स्वकायमनुरङ्गिन्या' स्वस्य–स्वकीयस्य छायानिबन्धनस्य वस्तुनः कायः–शरीरं स्वकायस्तमनुरज्यते–अनुकारं विदधातीत्येवंशीला अनुरङ्गिनी 'द्विषड्ग्रहे'त्यादिना' (श्रीसिद्ध५–२–४० युजरञ्जद्विष०) घिनञ्प्रत्ययस्तया स्वकायमनुरङ्गिन्या छायया सूर्योऽनु–प्रतिदिवसं परावर्त्तते, एतदुक्तं भवति–आषाढस्य प्रथमादहोरात्रादारभ्य प्रतिदिवसमन्यान्यमण्डलसङ्क्रान्त्या तथा कथंचनापि सूर्यः परावर्त्तते यथा सर्वस्यापि प्रकाश्यस्य वस्तुनो दिवसस्य चतुर्भागेऽतिक्रान्ते शेषे वा स्वानुकारा स्वप्रमाणा च छाया भवतीति, शेषं सुगमं, इदं च पौरुषीप्रमाणं व्यवहारत उक्तं, निश्चयतः सार्द्धैस्त्रिंशताऽहोरात्रैश्चतुरंगुला वृद्धिर्हानिर्वा वेदितव्या, तथा च निश्चयतः पौरुषीप्रमाणप्रतिपादनार्थमिमाः पूर्वाचार्यप्रसिद्धाः करणगाथाः–'पत्ते पण्णरसगुणे तिहिसहिए पोरिसीइ आणयणे । छलसीअसियविभत्ते जं लद्धं तं विआणाहि ॥ १ ॥ जइ होइ विसमलद्धं दक्खिणमयणं ठविज्ज नायवं । अह हवइ समं लद्धं नायवं उत्तरं अयणं ॥ २ ॥ अयणगए तिहिरासी चउग्गुणे पव्वपायभइयंमि । जं लद्धमंगुलाणि य खयवुड्ढी पोरिसीए उ ॥ ३ ॥ दक्खिणवुड्ढी दुपया अंगुलाणं तु होइ नायवा । उत्तरअयणे हाणी कायवा चउहि पायाहिं ॥ ४ ॥ सावणबहुलपडिवया दुपया पुण पोरिसी धुवा होइ । चत्तारि अंगुलाइं मासेणं वड्ढए तत्तो ॥ ५ ॥ इक्कत्तीसइभागा तिहिए पुण अंगुलस्स चत्तारि । दक्खिणअयणे वुड्ढी जाव य चत्तारि उ पयाइं ॥ ६ ॥ उत्तरअयणे हाणी चउहिं पायाहिं जाव दो पाया । एवं तु पोरिसीए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वुड्ढिखया हुंति नायव्वा ॥ ७ ॥ वुड्ढी वा हाणी वा जावइआ पोरिसीइ दिट्ठा उ । तत्तो दिवसगएणं जं लद्धं तं खु अयणगयं ॥ ८ ॥' अत्र व्याख्या—युगमध्ये यस्मिन् पर्वणि यस्यां तिथौ पोरुषीपरिमाणं ज्ञातुमिष्यते ततः पूर्वं युगादित आरभ्य यानि पर्वाणि अतिक्रान्तानि तानि ध्रियन्ते धृत्वा च पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते गुणयित्वा च विवक्षितायास्तिथेः याः प्रागतिक्रान्तास्तिथयस्ताभिः सहितानि क्रियन्ते कृत्वा च षडशीत्यधिकेन शतेन तेषां भागो ह्रियते, इहैकस्मिन् अयने त्र्यशीत्यधिकमण्डलशतपरिमाणे चन्द्रनिष्पादितानां तिथीनां षडशीत्यधिकं शतं भवति ततस्तेन भागे हृते यल्लब्धं तद्विजानीहि सम्यगवधारयेत्यर्थः, तत्र यदि लब्धं विषमं भवति यथा एककत्रिकः पञ्चकः सप्तको नवको वा तदा तत्पर्यन्तवर्त्ति दक्षिणमयनं ज्ञातव्यं, अथ भवति लब्धं समं यथा द्विकश्चतुष्कः षट्कः अष्टको दशको वा तदा तत्पर्यन्तवर्त्ति उत्तरायणमवसेयं, तदेवमुक्तो दक्षिणोत्तरायणपरिज्ञानोपायः, सम्प्रति षडशीत्यधिकेन भागे हृते यच्छेषमवतिष्ठते यदिवा भागासम्भवेन यच्छेषं तिष्ठति तद्गतविधिमाह—'अयणगए' इत्यादि, यः पूर्वं भागे हृते भागासम्भवे वा शेषीभूतोऽयनगतस्तिथिराशिर्वर्त्तते स चतुर्भिर्गुण्यते गुणयित्वा च 'पर्वपादेन' युगमध्ये यानि सङ्ख्यया पर्वाणि चतुर्विंशत्यधिकशतसङ्ख्यानि तेषां पादेन—चतुर्थेनांशेनैकत्रिंशता इत्यर्थः, (भागो ह्रियते) तया भागे हृते यल्लब्धं तान्यङ्गुलानि चकारादङ्गुलांशाश्च पौरुष्याः क्षयवृद्ध्योर्ज्ञातव्यानि, दक्षिणायने पदध्रुवराशेरुपरि वृद्धौ उत्तरायणे पदध्रुवराशेः क्षये ज्ञातव्यानीत्यर्थः, अथैवंभूतस्य गुणकारस्य भागहारस्य कथमुत्पत्तिरिति, उच्यते, यदि षडशीत्यधिकेन चतुर्विंशत्यङ्गुलानि क्षये वृद्धौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा प्राप्यन्ते ततः एकस्यां तिथौ का वृद्धिः क्षयो वा?, राशित्रयस्थापना १८६।२४।१ अत्रान्त्येन राशिना एककल-क्षणेन मध्यमो राशिश्चतुर्विंशतिरूपो गुण्यते, जातः स तावानेव, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति वचनात्, तत आद्येन राशिना षडशीत्यधिकशतरूपेण भागो ह्रियते, तत्रोपरितनराशेः स्तोकत्वाद् भागो न लभ्यते ततः छेद्यच्छेद-कराश्योः षट्केनापवर्त्तना जात उपरितनो राशिश्चतुष्करूपोऽधस्तन एकत्रिंशत् लब्धमेकस्यां तिथौ चत्वार एकत्रिं-शद्भागाः क्षये वृद्धौ वेति चतुष्को गुणकार उक्तः एकत्रिंशद् भागहार इति, इह यल्लब्धं तान्यङ्गुलानि क्षये वृद्धौ वा ज्ञातव्यानीत्युक्तं, तत्र कस्मिन्नयने कियत्प्रमाणध्रुवराशेरुपरि वृद्धौ कस्मिन् वा अयने किंप्रमाणध्रुवराशौ क्षये इत्येतन्नि-रूपणार्थमाह–'दक्खिणवुड्ढी'इत्यादि, दक्षिणायने द्विपदात्–पदद्वयस्योपरि अंगुलानां वृद्धिर्ज्ञातव्या, उत्तरायणे चतुर्भ्यः पादेभ्यः सकाशादङ्गुलानां हानिः, तत्र युगमध्ये प्रथमे संवत्सरे दक्षिणायने यतो दिवसादारभ्य वृद्धिस्तन्निरूपयति-'सावणे'त्यादि, गाथाद्वयं, युगस्य प्रथमे संवत्सरे श्रावणमासबहुलपक्षे प्रतिपदि पौरुषी द्विपदा–पदद्वयप्रमाणा ध्रुवा भवति, ततस्तस्याः प्रतिपद आरभ्य प्रतितिथि क्रमेण तावद्धर्द्धते यावन्मासेन–सूर्यमासेन सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणेन चन्द्रमासापेक्षया एकत्रिंशत्तिथिभिरित्यर्थः चत्वारि अङ्गुलानि वर्द्धन्ते, कथमेतदवसीयते?–यथा मासेन सार्द्धत्रिंश-दहोरात्रप्रमाणेन एकत्रिंशत्तिथ्यात्मकेनेत्यत आह—'एक्कतीसे'त्यादि, यत एकस्यां तिथौ चत्वार एकत्रिंशद्भागा वर्द्धन्ते, एतच्च प्रागेव भावितं, परिपूर्णे तु दक्षिणायने वृद्धिः परिपूर्णानि चत्वारि पदानि, ततो मासेन सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणेन एकत्रिंशत्तिथ्यात्मकेनेत्युक्तं, तदेवमुक्ता वृद्धिः, सम्प्रति हानिमाह–'उत्तरे'त्यादि, युगस्य प्रथमे संवत्सरे माघमासे बहुलपक्षे सप्तम्या आरभ्य चतुर्भ्यः पादेभ्यः सकाशात् प्रतितिथि एकत्रिंशद्भागचतुष्टयहानिस्तावदवसेया यावदुत्तरायणपर्यन्ते द्वौ पादौ पौरुषीति । एष प्रथमसंवत्सरगतो विधिः, द्वितीये संवत्सरे श्रावणमासे बहुलपक्षे त्रयोदशीमादौ कृत्वा वृद्धिः, माघमासे शुक्लपक्षे चतुर्थीमादिं कृत्वा क्षयः, तृतीये संवत्सरे श्रावणमासे शुक्लपक्षे दशमी वृद्धेरादिः माघमासे बहुलपक्षे प्रतिपत् क्षयस्यादिः, चतुर्थे संवत्सरे श्रावणमासे बहुलपक्षे सप्तमी वृद्धेरादिः, माघमासे बहुलपक्षे त्रयोदशी क्षयस्यादिः, पञ्चमे संवत्सरे श्रावणे मासे शुक्लपक्षे चतुर्थी वृद्धेरादिः, माघमासे शुक्लपक्षे दशमी क्षयस्यादिः, एतच्च करणगाथानुपात्तमपि पूर्वाचार्यप्रदर्शितव्याख्यानादवसितं । सम्प्रत्युपसंहारमाह—'एवं तु'इत्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण पौरुष्यां–पौरुषीविषये वृद्धिक्षयौ यथाक्रमं दक्षिणायनेषूत्तरायणेषु वेदितव्यौ, तदेवमक्षरार्थमधिकृत्य व्याख्याताः करणगाथाः । सम्प्रत्यस्य करणस्य भावना क्रियते, कोऽपि पृच्छति–युगादितः आरभ्य पञ्चाशीतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ कतिपदा पौरुषी भवति?, तत्र चतुरशीतिर्ध्रियते, तस्याश्चाधस्तात् पञ्चम्यां तिथौ पृष्टमिति पञ्च, चतुरशीतिश्च पञ्चदशभिर्गुण्यते जातानि द्वादश शतानि षष्ट्यधिकानि १२६० एतेषु मध्येऽधस्तनाः पञ्च प्रक्षिप्यन्ते जातानि १२६५ तेषां षडशीत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते लब्धाः षट्, आगतं षट् अयनान्यतिक्रान्तानि सप्तममयनं वर्त्तते, तद्गतं च शेषमेकोनपञ्चाशदधिकं शतं तिष्ठति १४९ ततश्चतुर्भिर्गुण्यते जातानि पञ्च शतानि षण्णवत्यधिकानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९६ तेषामेकत्रिंशता भागहरणे लब्धाः एकोनविंशतिः, शेषास्तिष्ठन्ति सप्त, तत्र द्वादशांगुलानि पाद इत्येकोनविंशतेः द्वादशभिः, पदं लब्धं, शेषाणि तिष्ठन्ति सप्तांगुलानि, षष्ठं चायनमुत्तरायणं तद् गतं सप्तमं तु दक्षिणायनं वर्त्तते, ततः पदमेकं सप्त चांगुलानि पदद्वयप्रमाणे ध्रुवराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रीणि पदानि सप्तांगुलानि, ये च सप्त एकत्रिंशद्भागाः शेषीभूता वर्त्तन्ते तान् यवान् कुर्मः, तत्राष्टौ यवा अंगुले इति ते सप्ताष्टभिर्गुण्यन्ते जातानि षट्पञ्चाशत् ५६ तस्या एकत्रिंशता भागे हृते लब्ध एको यवः शेषास्तिष्ठन्ति यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः, आगतं पञ्चाशीतितमे पर्वणि पञ्चम्यां त्रीणि पदानि सप्तांगुलानि एको यवः एकस्य च यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागा इत्येतावती पौरुषीति, तथा अपरः कोऽपि पृच्छति–सप्तनवतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ कतिपदा पौरुषी?, तत्र षण्णवतिर्धियते, तस्याश्चाधस्तात्पञ्च, षण्णवतिश्च पञ्चदशभिर्गुण्यते जातानि चतुर्दश शतानि चत्वारिंशदधिकानि १४४० तेषां मध्येऽधस्तनाः पञ्च प्रक्षिप्यन्ते जातानि चतुर्दश शतानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि १४४५, तेषां षडशीत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते लब्धानि सप्त अयनानि शेषं तिष्ठति त्रिचत्वारिंशदधिकं शतं १४३ तच्चतुर्भिर्गुण्यते जातानि पञ्च शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ५७२ तेषामेकत्रिंशता भागो ह्रियते लब्धान्यष्टादशांगुलानि १८ तेषां मध्ये द्वादशभिरंगुलैः पदमिति लब्धमेकं पदं षट् अंगुलानि उपरि चांशा उद्धरिताश्चतुर्दश १४ ते यवानयनार्थमष्टभिर्गुण्यन्ते जातं द्वादशोत्तरं शतं ११२ तस्यैकत्रिंशता भागे हृते लब्धास्त्रयो यवाः शेषास्तिष्ठन्ति यवस्य एकोनविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः, सप्त चायना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यतिक्रान्तानि अष्टमं चायनमुत्तरायणं उत्तरायणे च पदचतुष्टयेरूपाद् ध्रुवराशेर्हानिर्वक्तव्या तत एकं पदं सप्तांगुलानि त्रयो यवा एकस्य च यवस्य एकोनविंशतिरेकत्रिंशद्भागा इति पदचतुष्टयात् पात्यते, शेषं तिष्ठति द्वे पदे चत्वार्यंगुलानि चत्वारो यवाः एकस्य च यवस्य द्वादश एकत्रिंशद्भागाः, एतावती युगे आदित आरभ्य सप्तनवतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ पौरुषीति, एवं सर्वत्र भावनीयं । सम्प्रति पौरुषीपरिमाणतोऽयनगतपरिमाणज्ञापनार्थमियं करणगाथा–'वुड्ढी वे'त्यादि, पौरुष्यां यावती वृद्धिर्हानिर्वा दृष्टा ततः सकाशादिवसगतेन प्रवर्त्तमानेन च त्रैराशिककरणानुसारेण यल्लब्धं तत् अयनगतं–अयनस्य तावत्प्रमाणं गतं वेदितव्यं, एष करणगाथाक्षरार्थः, भावना त्वियम्–तत्र दक्षिणायने पदद्वयस्योपरि चत्वारि अङ्गुलानि वृद्धौ दृष्टानि, ततः कोऽपि पृच्छति–किं गतं दक्षिणायनस्य?, अत्र त्रैराशिककर्मावतारो–यदि चतुर्भिरङ्गुलस्य एकत्रिंशद्भागैरेका तिथिर्लभ्यते ततश्चतुर्भिरंगुलैः कति तिथीर्लभामहे?, राशित्रयस्थापना– ४।१।४ अत्रान्त्यो राशिरंगुलरूप एकत्रिंशद्भागकरणार्थमेकत्रिंशता गुण्यते जातं चतुर्विंशत्यधिकं १२४ शतं तेन मध्यो राशिर्गुण्यते जातं तदेव चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४ तस्य चतुष्करूपेणादिराशिना भागो ह्रियते लब्धा एकत्रिंशत्तिथयः, आगतं दक्षिणायने एकत्रिंशत्तमायां तिथौ चतुरंगुला पौरुष्यां वृद्धिरिति । तथा उत्तरायणे पदचतुष्टयादङ्गुलाष्टकहीनं पौरुष्यामुपलभ्य कोऽपि पृच्छति–किं गतमुत्तरायणस्य?, अत्रापि त्रैराशिकं–यदि चतुर्भिरंगुलस्य एकत्रिंशद्भागैरेका तिथिर्लभ्यते ततोऽष्टभिरंगुलैर्हीनैः कति तिथयो लभ्यन्ते?, राशित्रयस्थापना ४।१।८ । अत्रान्त्यो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राशिरेकत्रिंशद्भागकरणार्थमेकत्रिंशता गुण्यते जाते द्वे शते अष्टचत्वारिंशदधिके २४८ ताभ्यां मध्यो राशिरेककरूपो गुण्यते जाते ते एव द्वे शते अष्टचत्वारिंशदधिके २४८ तयोराद्येन राशिना चतुष्करूपेण भागहरणं लब्धा द्वाषष्टिः ६२, आगतमुत्तरायणे द्वाषष्टितमायां तिथौ अष्टावंगुलानि पौरुष्या हीनानीति । अथोपसंहारवाक्यमाह—'एतेसि ण'-मित्यादि, एतेषामनन्तरोक्तानां पूर्ववर्णितानां पदानामियं–वक्ष्यमाणा संग्रहणीगाथा, तद्यथा–'जोगो देवय तारग्ग' इत्यादि, प्राग्व्याख्यातस्वरूपा, अस्या निगमनार्थं पुनरुपन्यासस्तेन न पुनरुक्तिर्भावनीयेति, यत्तु पूर्वमुद्देशसमये सन्निपातद्वारं सूत्रे साक्षादुपात्तं सम्प्रति च छायाद्वारं तद्विचित्रत्वात् सूत्रकाराणां प्रवृत्तेः, पूर्णिमामावास्याद्वारे सन्निपातद्वारमन्तर्भावितं छायाद्वारं च नेतृद्वारानुयोग्यपि भिन्नस्वरूपतया पृथक्त्वेन विवक्षितमिति ध्येयम् । अथास्मिन्नेवाधिकारे षोडशभिर्द्वारैरर्थान्तरप्रतिपादनाय गाथाद्वयमाह—

हिट्ठिं ससिपरिवारो मन्दरऽबाधा तहेव लोगंते । धरणितलाओं अबाधा अंतो बाहिं च उड्ढमुहे ॥ १ ॥ संठाणं च पमाणं वहंति सीहगई इड्ढिमन्ता य । तारंतरऽग्गमहिसी तुडिअ पहु ठिई अ अप्पबहू ॥ २ ॥ अत्थि णं भन्ते! चंदिमसूरिआणं हिट्ठिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि समेवि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि ?, हंता! गो० ! तं चेव उच्चारेअव्वं, से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ—अत्थि णं० जहा जहा णं तेसिं देवाणं तवनियमबंभचेराणि ऊसिआइं भवंसि तहा तहा णं तेसि णं देवाणं एवं पण्णायए तंजहा–अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा, जहा जहा णं तेसिं देवाणं तवनियमबंभचेराणि णो ऊसिआइ भवंति तहा तहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

णं तेसिं देवाणं एवं (णो) पण्णायए, तं० अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा (सूत्रं १६२) एगमेगस्स णं भन्ते! चन्दस्स केवइआ महग्गहा परिवारो केवइआ णक्खत्ता परिवारो केवइया तारागणकोडाकोडीओ पण्णत्ताओ ?, गो० अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो छावट्ठिसहस्साइं णव सया पण्णत्तरा तारागणकोडाकोडीओ पण्णत्ता (सूत्रं १६३) मन्दरस्स णं भन्ते! पव्वयस्स केवइआए अबाहाए जोइसं चारं चरइ ?, गो० इक्कारसहिं इक्कवीसेहिं जोअणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ, लोगंताओ णं भन्ते! केवइआए अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ?, गो० एक्कारस एक्कारसेहिं जोअणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते। धरणितलाओ णं भन्ते!, सत्तहिं णउएहिं जोअणसएहिं जोइसे चारं चरइत्ति, एवं सूरविमाणे अट्ठहिं सएहिं, चंदविमाणे अट्ठहिं असीएहिं, उवरिल्ले तारारूवे नवहिं जोअणसएहिं चारं चरइ। जोइसस्स णं भन्ते! हेट्ठिल्लाओ तलाओ केवइआए अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ ?, गो० दसहिं जोअणेहिं अबाहाए चारं चरइ, एवं चन्दविमाणे णउईए जोअणेहिं चारं चरइ, उवरिल्ले तारारूवे दसुत्तरे जोअणसए चारं चरइ, सूरविमाणाओ चन्दविमाणे असीईए जोअणेहिं चारं चरइ, सूरविमाणाओ जोअणसए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ, चन्दविमाणाओ वीसाए जोअणेहिं उवरिल्ले णं तारारूवे चारं चरइ (सूत्रं १६४)

अधः चन्द्रसूर्ययोस्तारामण्डलं उपलक्षणात् समपंक्तौ उपरि च अणुं समं वेत्यादि वक्तव्यं १, शशिपरिवारो वक्तव्यः २ ज्योतिश्चक्रस्य मन्दरतोऽबाधा वक्तव्या ३ तथैव लोकान्तज्योतिश्चक्रयोरबाधा ४ धरणितलात् ज्योतिश्चक्रस्याबाधा ५ किञ्च–नक्षत्रमन्तः–चारक्षेत्रस्याभ्यन्तरे किं बहिः किं चोर्ध्वं किञ्चाधश्चरतीति वक्तव्यं ६ ज्योतिष्कविमानानां संस्थानं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादकस्य मुद्रण-शुद्धेः स्खलनत्वात् 'सू० १६२' इति द्विवारान् मुद्रितं, तत् कारणात् मया '१६२ R' इति सूत्रक्रम निर्दिष्टं

वक्तव्यं ७ एषामेव प्रमाणं वक्तव्यं ८ चन्द्रादीनां विमानानि कियन्तो वहन्तीति वक्तव्यं ९ एषां मध्ये के शीघ्रगतयः के मन्दगतय इति वक्तव्यं १०, एषां मध्ये केऽल्पर्द्धयो महर्द्धयश्चेति वक्तव्यं ११ ताराणां परस्परमन्तरं वक्तव्यं १२ अग्रमहिष्यो वक्तव्याः १३, तुटिकेन–अभ्यन्तरपर्षत्सत्कस्त्रीजनेन सह प्रभुः–भोगं कर्तुं समर्थश्चन्द्रादिर्नवा इति वक्तव्यं १४ स्थितिरायुषो वक्तव्या १५ ज्योतिष्काणामल्पबहुत्वं वक्तव्यं १६ इति । अथ प्रथमं द्वारं पिपृच्छिषुराह–'अत्थि ण'मित्यादि, अस्त्येतद् भगवन्! चन्द्रसूर्याणां देवानां 'हिट्ठिंपि'त्ति क्षेत्रापेक्षया अधस्तना अपि तारारूपः तारा विमानाधिष्ठातारो देवा द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि–हीना अपि भवन्ति केचित्तुल्या अपि–सदृशा अपि भवन्ति, अधिकत्वं तु स्वस्वेन्द्रेभ्यः परिवारदेवानां न सम्भवतीति न पृष्टं, तथा समेऽपीति चन्द्रादिविमानैः क्षेत्रापेक्षया समाः–समश्रेणिस्थिता अपि तारारूपाः–ताराविमानाधिष्ठातारो देवास्तेऽपि चन्द्रसूर्याणां देवानां द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि केचित्तुल्या अपि भवन्ति, तथा चन्द्रादिविमानानां क्षेत्रापेक्षया उपरि–उपरिस्थितास्तारारूपाः–ताराविमानाधिष्ठातारो देवास्तेऽपि चन्द्रसूर्याणां देवानां द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि केचित्तुल्या अपि भवन्ति, अत्र काकुपाठात् प्रश्नावगमः, एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह–गौतम! हन्तेति यदेव पृष्टं तत्सर्वं तथैवास्ति अतस्तदेवोच्चारणीयं, अत्रार्थे हेतुप्रश्नायाह–अथ केनार्थेन भगवन्नेवमुच्यते–'अत्थि ण'मित्यादिना, तदेव सूत्रमनुस्मरणीयं, अत्रोत्तरमाह–यथा यथा तेषां–तारारूपविमानाधिष्ठातॄणां देवानां प्राग्भवे तपोनियमब्रह्मचर्याण्यु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्छ्रितानि–उत्कटानि भवन्ति, तत्र तपः–अनशनादि द्वादशविधं नियमः–शौचादिः ब्रह्मचर्यं–मैथुनविरतिः, अत्र च शेषव्रतानामनुपदर्शनमुत्कटव्रतधारिणां ज्योतिष्केषु उत्पादासम्भवात्, उच्छ्रितानीत्युपलक्षणं तेन यथा यथा अनुच्छ्रितानीत्यपि बोध्यं, अन्यथोत्तरसूत्रे वक्ष्यमाणमणुत्वं नोपपद्येत, यच्छब्दगर्भितवाक्यस्य तच्छब्दगर्भितवाक्यसापेक्षत्वादुत्तरवाक्यमाह––तथा तथा तेषां देवानामेवं प्रज्ञायते–ज्ञायते इति, तद्यथा–अणुत्वं वा तुल्यत्वं वा, न चैतदनुचितं, दृश्यते हि मनुष्यलोकेऽपि केचिज्जन्मान्तरोपचिततथाविधपुण्यप्राग्भारा राजत्वमप्राप्ता अपि राज्ञा सह तुल्यविभवा इति, अत्र व्यतिरेकमाह–यथा यथा तेषां देवानां–ताराविमानाधिष्ठातृणां प्राग्भवार्जितान्युच्छ्रितानि तपोनियमब्रह्मचर्याणि न भवेयुस्तथा तथा तेषां देवानां नो एवं प्रज्ञायते–अणुत्वं वा तुल्यत्वं वा, अभियोगिककर्मोदयेनातिनिकृष्टत्वात्, अयमर्थः–अकामनिर्जरादियोगादेवत्वप्राप्तावपि देवर्द्धेरलाभेन चन्द्रसूर्येभ्यो द्युतिविभवाद्यपेक्षयाऽणुत्वमपि न सम्भवेत्, कुतस्तमां तेषां तैस्सह तुल्यत्वमिति। अथ द्वितीयं द्वारं प्रश्नयति–'एगमेगस्स णं भन्ते!'इत्यादि, एकैकस्य भदन्त! चन्द्रस्य कियन्तो महाग्रहाः परिवारःतथा कियन्ति नक्षत्राणि परिवारः तथा कियत्यस्तारागणकोटाकोट्यः परिवारभूताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! अष्टाशीतिर्महाग्रहाः परिवारोऽष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि परिवारः षट्षष्टिसहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि तारागणकोटाकोटीनां परिवारभूतानि प्रज्ञप्तानि, यद्यप्यत्र एते चन्द्रस्यैव परिवारतयोक्तास्तथापि सूर्यस्यापीन्द्रत्वादेते एव परिवारतयाऽवगन्तव्याः, समवायाङ्गे जीवाभिगमसूत्रवृत्त्यादौ तथा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादकस्य मुद्रण-शुद्धेः स्खलनत्वात् 'सू० १६२' इति द्विवारान् मुद्रितं, तत् कारणात् मया '१६२ R' इति सूत्रक्रम निर्दिष्टं

दर्शनात्, अथ तृतीयं द्वारं पृच्छति–'मन्दरस्स णं भन्ते!'इत्यादि, मन्दरस्य भदन्त! पर्वतस्य कियत्याऽबाधया–अपान्तरालेन ज्योतिश्चक्रं चारं चरति?, भगवानाह–गौतम! जगत्स्वभावात् एकादशभिरेकविंशत्यधिकैर्योजनशतैरित्येवंरूपयाऽबाधया ज्योतिषं चारं चरति, किमुक्तं भवति?–मेरुतश्चक्रवालेनैकविंशत्यधिकान्येकादशयोजनशतानि मुक्त्वा चलं ज्योतिश्चक्रं तारारूपं चारं चरति, प्रक्रमाज्जम्बूद्वीपगतमवसेयं, अन्यथा लवणसमुद्रादिज्योतिश्चक्रस्य मेरुतो दूरवर्त्तित्वेन उक्तप्रमाणासम्भवः, पूर्वं तु सूर्यचन्द्रवक्तव्यताधिकारे अबाधाद्वारे सूर्यचन्द्रयोरेव मेरुतोऽबाधा उक्ता साम्प्रतं तारापटलस्यैति न पूर्वापरविरोध इति। अथ स्थिरं ज्योतिश्चक्रमलोकतः कियत्या अबाधया अर्वाक् अवतिष्ठत इति पिपृच्छिषुश्चतुर्थं द्वारमाह–'लोगन्ताओ ण'मित्यादि, लोकान्ततो–अलोकादितोऽर्वाक् कियत्या अबाधया प्रक्रमात् स्थिरं ज्योतिश्चक्रं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह–गौतम! जगत्स्वभावात् एकादशभिरेकादशाधिकैर्योजनशतैरबाधया ज्योतिषं प्रज्ञप्तं, प्रक्रमात् स्थिरं बोध्यम्, चरज्योतिश्चक्रस्य तत्राभावादिति। अथ पञ्चमं द्वारं पृच्छति—'धरणितलाओ णं भन्ते'! इत्यनेन तत्सूत्रैकदेशेन परिपूर्णं प्रश्नसूत्रं बोध्यं, तच्च 'धरणितलाओ णं भन्ते! उड्ढं उप्पइत्ता केवइआए अबाहाए हिट्ठिल्ले जोइसे चारं चरइ?, गोअमा!' इत्यन्तं, वस्त्वेकदेशस्य वस्तुस्कन्धस्मारकत्वनियमात्, तत्रायमर्थः–धरणितलात्–समयप्रसिद्धात् समभूतलभूभागादूर्ध्वमुत्पत्य कियत्याऽबाधया अधस्तनं ज्योतिषं तारापटलं चारं चरति?, भगवानाह–गौतम! सप्तभिर्नवतैः–नवत्यधिकैर्योजनशतैरित्येवंरूपया अबाधया अधस्तनं ज्योतिश्चक्रं चारं चरति, अथ सूर्यादि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयमबाधास्वरूपं संक्षिप्य भगवान् स्वयमेवाह—'एवं सूरविमाणे अट्ठहिं सएहिं चन्द'इत्यादि, एवमुक्तन्यायेन यथा समभूमिभागादधस्तनं ज्योतिश्चक्रं नवत्यधिकसप्तयोजनशतैस्तथा समभूमिभागादेव सूर्यविमानमष्टभिर्योजनशतैश्चन्द्रविमानमशीत्यधिकैरष्टभिर्योजनशतैः उपरितनं तारारूपं नवभिर्योजनशतैश्चारं चरति। अथ ज्योतिश्चक्रचारक्षेत्रापेक्षया अबाधाप्रश्नमाह—'जोइसस्स ण'मित्यादि, ज्योतिश्चक्रस्य दशोत्तरयोजनशतबाहल्यस्याधस्तनात् तलात् कियत्या अबाधया सूर्यविमानं चारं चरति?, गौतम! दशभिर्योजनैरित्येवंरूपया अबाधया सूर्यविमानं चारं चरति, अत्र च सूत्रे समभूभागादूर्ध्वं नवत्यधिकसप्तयोजनातिक्रमेण ज्योतिश्चक्रबाहल्यमूलभूत आकाशप्रदेशप्रतरः सोऽवधिर्मन्तव्यः, एवं चन्द्रादिसूत्रेऽपि, एवं चन्द्रविमानं नवत्या योजनैरित्येवंरूपया अबाधया चारं चरति, तथोपरितनं तारारूपं दशाधिके योजनशते ज्योतिश्चक्रबाहल्यप्रान्ते इत्यर्थः चारं चरति, अथ गतार्थमपि शिष्यव्युत्पादनाय सूर्यादीनां परस्परमन्तरं सूत्रकृदाह—'सूरविमाणाओ'इत्यादि, सूर्यविमानात् चन्द्रविमानं अशीत्या योजनैश्चारं चरति, सूर्यविमानात् योजनशतेऽतिक्रान्ते उपरितनं तारापटलं चारं चरति, चन्द्रविमानात् विंशत्या योजनैरुपरितनं तारापटलं चारं चरति, अत्र सूचामात्रत्वात् सूत्रेऽनुक्तापि ग्रहाणां नक्षत्राणां च क्षेत्रविभागव्यवस्था मतान्तराश्रिता संग्रहणिवृत्त्यादौ दर्शिता लिख्यते—'शतानि सप्त गत्वोर्ध्वं, योजनानां भुवस्तलात्। नवतिं च स्थितास्ताराः, सर्वाधस्तान्नभस्तले ॥ १ ॥ तारकापटलाद् गत्वा, योजनानि दशोपरि। सूराणां पटलं तस्मादशीतिं शीतरोचिषाम् ॥ २ ॥ चत्वारि तु ततो गत्वा, नक्षत्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पटलं स्थितम् । गत्वा ततोऽपि चत्वारि, बुधाना पटलं भवेत् ॥ ३ ॥ शुक्राणां च गुरूणां च, भौमानां मन्दसंज्ञिनाम् । त्रीणि त्रीणि च गत्वोर्ध्वं, क्रमेण पटलं स्थितम् ॥ ४ ॥' इति॥ अथ षष्ठं द्वारं पृच्छन्नाह—

जम्बुद्दीवे णं दीवे अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ते सव्वब्भंतरिल्लं चारं चरइ?, कयरे णक्खत्ते सव्ववाहिरं चारं चरइ?, कयरे सव्वहिट्ठिलं चारं चरइ, कयरे सव्वउवरिलं चारं चरइ?, गो०! अभिई णक्खत्ते सव्वब्भंतरं चारं चरइ, मूलो सव्ववाहिरं चारं चरइ, भरणी सव्वहिट्ठिलगं साई सव्वुवरिलगं चारं चरइ । चन्दविमाणे णं भन्ते! किंसंठिए पण्णत्ते?, गो० ! अद्धकविट्ठसंठाणसंठिए सव्वफालिआमए अब्भुग्गयमुसिए एवं सव्वाइं णेअव्वाइं, चन्दविमाणे णं भन्ते ! केवइयं आयामविक्खंभेणं केवइयं बाहल्लेणं?, गो०! छप्पण्णं खलु भाए विच्छिण्णं चन्दमंडलं होइ । अट्ठावीसं भाए बाहल्लं तस्स बोद्धव्वं ॥ १ ॥ अडयालीसं भाए विच्छिण्णं सूरमण्डलं होइ । चउवीसं खलु भाए बाहल्लं तस्स बोद्धव्वं ॥ २ ॥ दो कोसे अ गहाणं णक्खत्ताणं तु हवइ तस्सद्धं । तस्सद्धं ताराणं तस्सद्धं चेव बाहल्लं ॥ ३ ॥ (सूत्रं १६५)

जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपेऽष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये कतरन्नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरं—सर्वेभ्यो मण्डलेभ्योऽभ्यन्तरः सर्वाभ्यन्तरः तं, अनेन द्वितीयादिमण्डलचारव्युदासः, चारं चरति?, तथा कतरन्नक्षत्रं सर्वबाह्यं—सर्वतो नक्षत्रमण्डलिकाया बहिश्चारं चरति—भ्रमति, तथा कतरन्नक्षत्रं सर्वेभ्योऽधस्तनं चारं चरति, तथा कतरन्नक्षत्रं सर्वेषां नक्षत्राणामुपरितनं चारं चरति, सर्वेभ्यो नक्षत्रेभ्य उपरिचारीत्यर्थः, भगवानाह—गौतम! अभिजिन्नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरं चारं चरति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारीण्यभिजिदादिद्वादशनक्षत्राण्यभिहितानि तथापीदं शेषैकादशनक्षत्रापेक्षया मेरुदिशि स्थितं सत् चारं चरतीति सर्वाभ्यन्तरचारीत्युक्तं, तथा मूलो–मूलनक्षत्रं सर्वबाह्यं चारं चरति, यद्यपि पञ्चदशमण्डलाद्बहिश्चारीणि मृगशिरःप्रभृतीनि षड् नक्षत्राणि पूर्वाषाढोत्तराषाढयोश्चतुर्णां तारकाणां मध्ये द्वे द्वे च तारे उक्तानि तथाप्येतदपरबहिश्चारिनक्षत्रापेक्षया लवणदिशि स्थितं सच्चारं चरतीति सर्वबहिश्चारीत्युक्तं, तथा भरणीनक्षत्रं सर्वाधस्तनं चारं चरति, तथा स्वातिनक्षत्रं सर्वोपरितनं चारं चरति, अयं भावः–दशोत्तरशतयोजनरूपे ज्योतिश्चक्रबाहल्ये यो नक्षत्राणा क्षेत्रविभागश्चतुर्योजनप्रमाणस्तदपेक्षयोक्तनक्षत्रयोः क्रमेणाधस्तनोपरितनभागौ ज्ञेयौ, हरिभद्रसूरयस्तु "अधस्तने ज्योतिष्कतले भरण्यादिकं नक्षत्रमुपरितने च ज्योतिष्कतले स्वात्यादिकमस्तीत्याहु"रिति। अथ सप्तमं द्वारं पृच्छति– 'चन्दविमाणे ण'मित्यादि, चन्द्रविमानं भदन्त! किंसंस्थितं–किंसंस्थानं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! उत्तानीकृतार्द्धकपित्थफलसंस्थानसंस्थितं सर्वस्फटिकमयं 'अभ्युद्गतोत्सृत'मित्यनेन विजयद्वारपुरस्थप्रकण्ठकगतप्रासादवर्णकः सर्वोऽपि विमानप्रकरणात् क्लीबैकवचनपूर्वको वाच्यः, एवं चन्द्रविमानन्यायेन सर्वाणि सूर्यादिज्योतिष्कविमानानि नेतव्यानि संस्थाननैयत्यबुद्धिं प्रापणीयानि, ननु यदि सर्वाण्यपि ज्योतिष्कविमानान्यर्द्धीकृतकपित्थाकाराणि ततश्चन्द्रसूर्यविमानान्यतिस्थूलत्वादुदयकालेऽस्तमयकाले वा यदिवा तिर्यक् परिभ्रमन्ति कस्मात्तथाविधानानि नोपलभ्यन्ते?, यस्तु शिरस उपरि वर्त्तमानानां तेषामधस्थायिजनेषु वर्त्तुलतया प्रतिभासः अर्द्धकपित्थस्य शिरस उपरि दूरमवस्थापितस्य परभागा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनतो वर्त्तुलतया दृश्यमानत्वात् सोऽपि न सम्यग्भावमञ्चति पूर्णवृत्तस्यापि तथा दर्शनात्, उच्यते, इहार्द्धकपित्थाकाराणि न सामस्त्येन विमानानि प्रतिपत्तव्यानि किन्तु विमानानां पीठानि, तेषां पीठानामुपरि चन्द्रादीनां प्रासादास्ते च प्रासादास्तथा कथंचनापि व्यवस्थिता यथा पीठैः सह भूयान् वर्त्तुल आकारो भवति, स च दूरभावादेकान्ततः समवृत्ततया जनानां प्रतिभासते ततो न कश्चिद्दोषः। अथाष्टमं द्वारं पृच्छति–'चन्दविमाणे ण'मित्यादि, चन्द्रविमानं णमिति प्राग्वत्, भदन्त! कियदायामविष्कम्भेन कियद्बाहल्येन–उच्चैस्त्वेन प्रज्ञप्तं?, उपलक्षणात् सूर्यादिविमानमपि प्रश्नितं द्रष्टव्यं, अत्र पद्येनोत्तरसूत्रमाह–गौतम! खल्वितिपदं निश्चयेऽलङ्कारे वा षट्पञ्चाशदेकषष्टिभागान् योजनस्य विस्तीर्णं चन्दमण्डलं भवति, अयमर्थः–एकस्य प्रमाणांगुलयोजनस्यैकषष्टिभागीकृतस्य षट्पञ्चाशता भागैः समुदितैर्यावत्प्रमाणं भवति तावत्प्रमाणोऽस्य विस्तार इत्यर्थः, वृत्तवस्तुनः सदृशायामविष्कम्भत्वात्, एवमेवोत्तरसूत्रं, तेनायामोऽपि तावानेव, परिक्षेपस्तु स्वयमभ्युह्यः, वृत्तस्य सविशेषस्त्रिगुणः परिधिरिति प्रसिद्धेः, बाहल्यं चाष्टाविंशतिभागान् यावत्तस्य बोद्धव्यं, षट्पञ्चाशद्भागानामर्द्धं एतावत एव लाभात्, सर्वेषामपि ज्योतिष्क(ष्काणां)विमानानां (नि) स्वस्वव्यासप्रमाणात् अर्द्धप्रमाणबाहल्यानीति वचनात्, तथा अष्टचत्वारिंशतं भागान् विस्तीर्णं सूर्यमण्डलं भवति, चत्वारिंशद्(चतुर्विंशति)भागान् यावद् बाहल्यं तस्य बोद्धव्यं, तथा द्वौ क्रोशौ च ग्रहाणां तदेवार्द्धं योजनमित्यर्थः, तथा नक्षत्राणां तु भवति तस्यार्द्धं–एकं क्रोशमित्यर्थः, तस्यार्द्धं क्रोशार्द्धमित्यर्थः ताराणां विमानानि विस्तीर्णानि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

ग्रहादिविमानाना मध्ये यस्य यो व्यासस्तस्य तदर्द्धं बाहल्यं भवति, यथा क्रोशद्वयस्यार्द्धं क्रोशो ग्रहविमानबाहल्यं, क्रोशार्द्धं नक्षत्रविमानबाहल्यं, क्रोशतुर्यांशस्ताराविमानबाहल्यमिति, एतच्चोत्कृष्टस्थितिकतारादेवविमानमाश्रित्योक्तं, यत्पुनर्जघन्यस्थितिकतारादेवविमानं तस्यायामविष्कम्भपरिमाणं पञ्चधनुःशतानि उच्चत्वपरिमाणमर्द्धतृतीयानि धनुःशतानीति तत्त्वार्थभाष्ये । अथ नवमं द्वारं प्रश्नविषयीकुर्वन्नाह—

चन्दविमाणेणं भन्ते ! कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?, गोअमा ! सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंतीत्ति । चन्दविमाणस्स णं पुरत्थिमेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययणिगरप्पगासाणं थिरलट्ठपउट्ठवट्टपीवरसुसिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढाविडंबिअमुहाणं रत्तुप्पलपत्तमउयसूमालतालुजीहाणं महुगुलिअपिंगलक्खाणं पीवरवरोरुपडिपुण्णविउलखंधाणं मिउविसयसुहुमलक्खणपसत्थवरवण्णकेसरसडोवसोहिआणं ऊसिअसुनमियसुजायअप्फोडिअलंगूलाणं वइरामयणक्खाणं वइरामयदाढाणं वइरामयदन्ताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमाणं महया अप्फोडिअसीहणायबोलकलकलरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरूवधारीणं पुरत्थिमिलं बाहं वहंति । चंद्रविमाणस्स णं दाहिणेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययणिगरप्पगासाणं वइरामयकुंभजुअलसुट्ठिअपीवरवरवइरसोंडवट्टिअदित्तसुरत्तपउमप्पगासाणं अब्भुण्णयमुहाणं तवणिज्जविसालकण्णचंचलचलंतविमलुज्जलाणं महुवण्णभिसंतणिद्धपत्तलनिम्मलतिवण्णमणिरयणलो-

॥५२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चन्द्रादि विमान-वाहका: प्रदर्श्यते

अणाणं अब्भुग्गयमउलमल्लिआधवलसरिससंठिअणिव्वणदढकसिणफालिआमयसुजायदन्तमुसलोवसोभिआणं कंचणकोसीपविट्ठदन्त-ग्गविमलमणिरयणरुइलपेरंतचित्तरूवगविराइआणं तवणिज्जविसालतिलगप्पमुहपरिमण्डिआणं नानामणिरयणमुद्धगेविज्जबद्धगलयवर-भूसणाणं वेरुलिअविचित्तदण्डनिम्मलवइरामयतिक्खलट्ठअंकुसकुंभजुअलयंतरोडिआणं तवणिज्जसुबद्धकच्छदप्पिअबलुद्धराणं विम-लघणमण्डलवइरामयलाललियतालणं णाणामणिरयणघण्टपासगरजतामयबद्धलज्जुलंबिअघंटाजुअलमहुरसरमणहराणं अक्षीणपमा-णजुत्तवट्टिअसुजायलक्खणपसत्थरमणिज्जवालगत्तपरिपुंछणाणं उवचिअपडिपुण्णकुम्मचलणलहुविक्कमाणं अंकमयणक्खाणं तवणिज्जजी-हाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबलवीरिअ-पुरिसक्कारपरक्कमाणं महयागंभीरगुलुगुलाइतरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ गय-रूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं वाहं परिवहंतित्ति । चन्दविमाणस्स णं पच्चत्थिमेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं चलचवलककुह-सालीणं घणनिचिअसुबद्धलक्खणुण्णयईसिआणयवसभोट्ठाणं चंकमिअललिअपुलिअचलचवलगविअगईणं सन्नतपासाणं संगतपासाणं सुजायपासाणं पीवरवट्टिअसुसंठिअकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमाणजुत्तरमणिज्जबालगण्डाणं समखुरवालिधाणाणं समलिहिअसिंग-तिक्खग्गसंगयाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छविधराणं उवचिअमंसलविसालपडिपुण्णखंधपएससुंदराणं वेरुलिअभिसंतक-डक्खसुनिरिक्खणाणं जुत्तपमाणपहाणलक्खणपसत्थरमणिज्जगग्गरगल्लसोभिआणं घरघरगसुसद्दबद्धकंठपरिमण्डिआणं णाणामणिकण-गरयणघण्टिआवेगच्छिगसुकयमालिआणं वरघण्टागलयमालुज्जलसिरिधराणं पउमुप्पलसगलसुरभिमालाविभूसिआणं वइरखुराणं विविहविक्खुराणं फालिआमयदन्ताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं पीइगमाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

मणोगमाणं मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमाणं महयागज्जिअगंभीररवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ वसहरूवधारीणं देवाणं पच्चत्थिमिल्लं बाहं परिवहंतित्ति । चन्दविमाणस्स णं उत्तरेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं तरमल्लिहायणाणं हरिमेलमउलमल्लिअच्छाणं चंचुच्चिअललिअपुलिअचलचवलचंचलगईणं लंघणवग्गणधावणधोरणतिवइजइणसिक्खिअगईणं ललंतलामगललायवरभूसणाणं सन्नयपासाणं संगयपासाणं सुजायपासाणं पीवरवट्टिअसुसंठिअकडीणं ओलम्बपलंबलक्खणपमाणजुत्तरमणिज्जवालपुच्छाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छविहराणं मिउविसयसुहुमलक्खणपसत्थविच्छिण्णकेसरवालिहराणं ललंतथासगललाडवरभूसणाणं मुहमण्डगओचूलगचामरथासगपरिमण्डिअकडीणं तवणिज्जखुराणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं जाव मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमाणं महयाहयहेसिअकिलकिलाइअरवेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ हयरूवधारीणं देवाणं उत्तरिल्लं बाहं परिवहंतित्ति । गाहा—सोलसदेवसहस्सा हवंति चंदेसु चेव सूरेसु । अट्ठेव सहस्साइं एक्केक्कंमी गहविमाणे ॥ १ ॥ चत्तारि सहस्साइं णक्खत्तंमि अ हवंति इक्किके । दो चेव सहस्साइं तारारूवेक्कमेक्कंमि ॥ २ ॥ एवं सूरविमाणाणं जाव तारारूवविमाणाणं, णवरं एस देवसंघाएत्ति (सूत्रं १६६) ।

चन्द्रविमानं भदन्त! कति देवसहस्राणि परिवहन्ति?, गौतम! षोडश देवसहस्राणि परिवहन्ति, एकैकस्यां दिशि चतुश्चतुःसहस्राणां सद्भावात्, इयमत्र भावना—इह चन्द्रादीनां विमानानि तथा जगत्स्वभावात् निरालम्बनानि वहमा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नान्यवतिष्ठन्ते, केवलं ये आभियोगिका देवास्ते तथाविधनामकर्मोदयवशात् समानजातीयानां हीनजातीयाना वा देवानां निजमहिमातिशयदर्शनार्थमात्मानं बहुमन्यमानाः प्रमोदभृतः सततवहनशीलेषु विमानेष्वधः स्थित्वा २ केचित् सिंहरूपाणि केचिद् गजरूपाणि केचिद्वृषभरूपाणि केचित्तुरङ्गमरूपाणि कृत्वा तानि विमानानि वहन्ति, न चैतदनुपपन्नं, तथाहि–यथेह कोऽपि तथाविधाभियोग्यनामकर्मोपभोगभागी दासोऽन्येषां समानजातीयानां हीनजातीयानां वा पूर्वपरिचितानामेवमहं नायकस्यास्य सुप्रसिद्धस्य सम्मत इति निजमाहात्म्यातिशयदर्शनार्थं सर्वमपि स्वोचितं कर्म प्रमुदितः करोति तथा आभियोगिका अपि देवास्तथाविधाभियोग्यनामकर्मोपभोगभाजः समानजातीयानां हीनजातीयानां वा देवानामन्येषामेवं वयं समृद्धा यत्सकललोकप्रसिद्धानां चन्द्रादीनां विमानानि वहाम इत्येवं निजमाहात्म्यातिशयदर्शनार्थमात्मानं बहुमन्यमाना उक्तप्रकारेण चन्द्रादिविमानानि वहन्तीति । अथैषामेव षोडशसहस्राणां व्यक्तिमाह–'चन्दविमाण'इत्यादि, चन्द्रविमानस्य पूर्वस्यां-यद्यपि जङ्गमस्वभावेन ज्योतिष्काणां सूर्योदयाङ्कितैव पूर्वा न संभवति चारानुसारेण परापरदिक्परावर्त्तसम्भवात् तथापि जिगमिषितदिशं गच्छतोऽभिमुखा दिक् पूर्वेति व्यवह्रियते, यथा श्रुतदिक्, सिंहरूपधारिणां देवानां चत्वारि सहस्राणि पौरस्त्यां बाहां–पूर्वपार्श्वं वहन्तीति सम्बन्धः, तेषामेव विशेषायाह–'सेआण'मित्यादि, श्वेतानां–श्वेतवर्णानां तथा सुभगानां–सौभाग्यवतां जनप्रियाणामित्यर्थः, तथा सुप्रभाणां–सुष्ठु–शोभना प्रभा–दीप्तिर्येषां ते तथा तेषां, तथा शङ्खतलं–शंखमध्यभागो विमलनिर्मलः–अत्यन्तनिर्मलो यो दधि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घनः–स्त्यानीकृतं दधि गोक्षीरफेनः प्रसिद्धः, रजतनिकरो-रूप्यराशिस्तेषामिव प्रकाशः–तेजःप्रसारो येषा ते तथा तेषां, तथा स्थिरौ–दृढौ लष्टौ–कान्तौ प्रकोष्ठकौ–कलाचिके येषां ते तथा, तथा वृत्ताः–वर्त्तुलाः पीवराः–पुष्टाः सुश्लिष्टाः–अविवराः विशिष्टाः–तीक्ष्णा भेदिका या दंष्ट्रास्ताभिर्विडम्बितं–विवृतं मुखं येषां ते तथा, प्रायो हि सिंहजातीया दाढाभिर्व्याप्तमुखा एव भवन्तीति, अथवा विडम्बितं–धातूनामनेकार्थत्वात् शोभितं मुखं येषां ते तथा, ततः कर्मधारयस्तेषां, तथा रक्तोत्पलपत्रवत् मृदुसुकुमाले–अतिकोमले तालुजिह्वे येषां ते तथा तेषां, तथा मधुगुटिका–घनीभूतक्षौद्रपिण्डस्तद्वत्पिङ्गले अक्षिणी येषां ते तथा तेषां, प्रायो हि हिंस्रजीवानां चक्षूंषि पीतवर्णानीति, तथा पीवरे–उपचिते वरे–प्रधाने ऊरू–जंघे येषां ते तथा, परिपूर्णः अत एव विपुलो–विस्तीर्णः स्कन्धो येषां ते तथा, ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषां, तथा मृदवो विशदाः–स्पष्टाः सूक्ष्माः–प्रतलाः लक्षणैः प्रशस्ताः वरवर्णाः–प्रधानवर्णाः यौ केसरसटाः–स्कन्धकेसरच्छटास्ताभिरुपशोभितानां तथा उच्छ्रितं–ऊर्ध्वीकृतं सुनमितं–सुष्ठु अधोमुखीकृतं सुजातं–शोभनतया जातमास्फोटितं च–भूमावास्फालितं लाङ्गूलं यैस्तथा तेषां, तथा वज्रमयनखानां तैलादित्वाद् द्वित्वं वज्रमयदंष्ट्राणां वज्रमयदंतानां, त्रयाणामप्यवयवानामभङ्गुरत्वोपदर्शनार्थं वज्रोपमानं, तथा तपनीयमयजिह्वानां तथा तपनीयमयतालुकानां तथा तपनीयं योक्त्रकं प्रतीतं सुयोजितं येषु ते तथा तेषां कामेन–स्वेच्छया गमो–गमनं येषां ते तथा तेषां, यत्र जिगमिषन्ति तत्र गच्छन्तीत्यर्थः, अत्र 'युवर्णवृदृवशरणगमृद्रुहः' (श्रीसिद्ध० ५–३–२८७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यनेनालूप्रत्ययः, तथा प्रीतिः–चित्तोल्लासस्तेन गमो–गमनं येषां ते तथा तेषां, तथा मनोवद् गमो–गमनं वेगवत्त्वेन येषां ते तथा तेषां, तथा मनोरमाणां मनोहराणां तथा अमितगतीनां–बहुतरगतीनामित्यर्थः, तथा अमितबलेत्यादिपदानि प्राग्वत्, तथा महता आस्फोटितसिंहनादबोलकलकलरवेण मधुरेण मनोहरेण पूरयन्ति–शब्दाद्वैतं विदधानानि अम्बरं–नभोमण्डलं दिशश्च–पूर्वाद्याः शोभयन्ति–शोभयमानानीति विशेषणद्वयं सहस्राणीति विशेष्येण सह योज्यं । अथ द्वितीयवाहावाहकानाह–'चंदविमाण'इत्यादि, चन्द्रविमानस्य दक्षिणस्यां–जिगमिषितदिशो दक्षिणे पार्श्वे गजरूपधारिणां देवानां चत्वारि देवसहस्राणि दाक्षिणात्यां बाहां परिवहन्तीत्यन्वयः, एषां विशेषणायाह–'सेआण'मित्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत्, तथा वज्रमयं कुम्भयुगलं येषां ते तथा सुस्थिता–सुसंस्थाना पीवरा–पुष्टा वरा वज्रमयी शुण्डा वर्त्तिता–वृत्ता पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात् तस्यां दीप्तानि सुरक्तानि यानि पद्मानि–बिन्दुजालरूपाणि तेषां प्रकाशो–व्यक्तभावो येषां ते तथा, पालकाप्यशास्त्रे हि तारुण्ये हस्तिदेहे जायमाना रक्तबिन्दवः पद्मानीति व्यवह्रियन्ते इति, ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषां, तथा अभ्युन्नतमुखानां पुरत उन्नतत्वात् तथा तपनीयमयावन्तररुणत्वेन विशालौ–इतरजीवकर्णापेक्षया विस्तीर्णौ चञ्चलौ–सहजचापल्ययुक्तौ अत एव चलन्तौ–इतस्ततो दोलायमानौ विमलौ–आगन्तुकमलरहितौ उज्ज्वलौ–भद्रजातीयहस्त्यवयवत्वेन बहिःश्वेतवर्णौ कर्णौ येषां ते तथा तेषां, अत्र पदव्यत्ययः प्राग्वत्, तथा मधुवर्णे–क्षौद्रसदृशे 'भिसंति'त्ति भासमाने स्निग्धे पत्रले–पक्ष्मवती निर्मले–छायादिदोषरहिते त्रिवर्णे–रक्तपी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तश्वेतवर्णाश्रये मणिरत्नमये लोचने येषां ते तथा तेषां, तथा अभ्युद्गतानि–अत्युन्नतानि मुकुलमल्लिकेव–कोरकावस्थविचकिलकुसुमवद् धवलानि तथा सदृशं–समं संस्थानं येषां तानि तथा, निर्व्रणानि–व्रणवर्जितानि दृढानि कृत्स्नस्फटिकमयानि–सर्वात्मना स्फटिकमयानीत्यर्थः सुजातानि–जन्मदोषरहितानि दन्तमुसलानि तैरुपशोभितानां, तथा विमलमणिरत्नमयानि रुचिराणि पर्यन्तचित्ररूपकाणि अर्थात् कोशीमुखवर्त्तीनीत्यर्थः तैर्विराजिता या काञ्चनकोशीषोलिकेति प्रसिद्धा तस्यां प्रविष्टा दन्ताग्रा–अग्रदन्ता येषां ते तथा तेषां, पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तथा तपनीयमयानि विशालानि तिलकप्रमुखाणि यानि मुखाभरणानि आदिशब्दाद्रत्नशुण्डिकाचामरादिपरिग्रहस्तैः परिमण्डितानां, तथा नानामणिरत्नमयो मूर्द्धा येषां ते तथा ग्रैवेयेन सह बद्धानि गलकवरभूषणानि–कण्ठाभरणानि घण्टादीनि येषां ते तथा, ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषां, तथा कुम्भयुगलान्तरे–कुम्भद्वयमध्ये उदितः–उदयं प्राप्तः तत्र स्थित इत्यर्थः, तथा वैडूर्यमयो विचित्रदण्डो यस्मिन् स तथा, निर्मलवज्रमयस्तीक्ष्णो लष्टो—मनोहरोऽङ्कुशो येषां ते तथा तेषां, तथा तपनीयमयी सुबद्धा कक्षा—हृदयरज्जुर्येषा ते तथा, दर्पिता—सञ्जातदर्पास्ते तथा, बलोद्धुरा–बलोत्कटास्ते तथा, ततः पदत्रयस्य पदद्वयमीलने २कर्मधारयस्तेषां, तथा विमलं तथा घनं मण्डलं यस्य तत् तथा, वज्रमयलालाभिर्ललितं-श्रुतिसुखं ताडनं यस्य तत् तथा, नानामणिरत्नमय्यः पार्श्वगाः--पार्श्ववर्त्तिन्यो घण्टा अर्थाल्लघुघण्टा यस्य तत् तथा एवंविधं रजतमयी तिर्यग्बद्धा या रज्जुस्तस्यां लम्बितं यद् घण्टायुगलं तस्य यो मधुरस्वरः तेन मनोहराणां, तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलीनं–सुश्लिष्टं निर्भरभरकेशत्वात् प्रमाणयुक्तं–चरणावधि लम्बमानत्वात् वर्त्तितं–वर्त्तुलं सुजाता–लक्षणप्रशस्ता रमणीया–मनोहरा वाला यस्य तत् एवंविधं गात्रपरिपुञ्छनं–पुच्छं येषां ते तथा तेषां, तिर्यञ्चो हि पुच्छेनैव गात्रं प्रमार्जयन्तीति, तथा उपचिता–मांसलाः परिपूर्णाः–पूर्णावयवास्तथा कूर्मवदुन्नताश्चरणास्तैर्लघुलाघवोपेतः–शीघ्रतर इत्यर्थः विक्रमः–पादविक्षेपो येषां ते तथा तेषां, तथा अङ्करत्नमयनखानां तवणिज्जजीहाणमित्यादि नव पदानि प्राग्वत्, महता–बहुव्यापिना गम्भीरः–अतिमन्द्रो गुलुगुलायितरवो–बृंहितशब्दस्तेन मधुरेण मनोहरेण अम्बरं पूरयन्ति दिशश्च शोभयन्तीत्यादि प्राग्वत् । अथ तृतीयवाहावाहकानाह—'चन्दविमाणस्स ण'मित्यादि, चन्द्रविमानस्य पश्चिमायांजिगमिषितदिशः पृष्ठभागे वृषभरूपधारिणां देवानां चत्वारि देवसहस्राणि पश्चिमां बाहां परिवहन्तीत्यर्थः, श्वेतानां सुभगानामित्यादि प्राग्वत्, चलचपलं–इतस्ततो दोलायमानत्वेनास्थिरत्वादतिचपलं ककुदं–अंसकूटं तेन शालिनां–शोभायमानानां तथा घनवद्–अयोघनवन्निचितानां–निर्भरभृतशरीराणामत एव सुबद्धानां–अश्लथानां लक्षणोन्नतानांप्रशस्तलक्षणानां तथा ईषदानतं–किञ्चिन्नम्रभावमुपागतं वृषभौष्ठं–वृषभौ–प्रधानौ लक्षणोपेतत्वेनौष्ठौ यत्र तत्, समर्थविशेषणेन विशेष्यं लभ्यत इति मुखं येषां ते तथा, ततः पूर्ववत् पदचतुष्टयकर्मधारयस्तेषां, तथा चंक्रमितं–कुटिलगमनं ललितं–विलासवद्गमनं पुलितं–गतिविशेषः स चाकाशक्रमणरूपः एवंरूपा चलचपला–अत्यन्तचपला गर्विता गतिर्येषां ते तथा सन्नतपार्श्वानां अधोऽधःपार्श्वयोरवनतत्वात् तथा सङ्गतपार्श्वानां–देहप्रमाणोचितपार्श्वानां तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुजातपार्श्वानां–सुनिष्पन्नपार्श्वानां तथा पीवरा–पुष्टा वर्त्तिता–वृत्ता सुसंस्थिता–सुसंस्थाना कटिर्येषा ते तथा तेषा, तथा अवलम्बानि–अवलंबनस्थानानि तेषु प्रालम्बानि–लम्बायमानानि लक्षणैः प्रमाणेन च यथोचितेन युक्तानि रमणीयानि वालगण्डानि–चामराणि येषां ते तथा तेषां, तथा समाः–परस्परं सदृशाः खुराः प्रतीताः वालिधानं–पुच्छं च येषां ते तथा तेषां, तथा 'समलिखितानि' समानि–परस्परं सदृशानि लिखितानीवोत्कीर्णानीवेत्यर्थः तीक्ष्णाग्राणि सङ्गतानि–यथोचितप्रमाणानि शृङ्गाणि येषां ते तथा तेषां, पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तथा तनुसूक्ष्माणि–अत्यन्तसूक्ष्माणि सुजातानि–सुनिष्पन्नानि स्निग्धानि लोमानि तेषां या छविस्तां धरन्ति ते तथा, उपचितः–पुष्टोऽत एव मांसलो विशालो धूर्वहनसमर्थत्वात् परिपूर्णोऽव्यङ्गत्वात् यः स्कन्धप्रदेशस्तेन सुन्दराणां, तथा वैडूर्य्यमयानि 'भिसंतकडक्ख'त्ति भासमानकटाक्षाणि–शोभमानार्द्धप्रेक्षितानि सुनिरीक्षणानि–सुलोचनानि येषां ते तथा तेषां, तथा युक्तप्रमाणो–यथोचितमानोपेतः प्रधानलक्षणः प्रतीतः प्रशस्तरमणीयः–अतिरमणीयो गग्गरकः–परिधानविशेषो लोकप्रसिद्धस्तेन शोभितगलानां पदव्यत्ययः प्राग्वत्, तथा घरघरकाः–कण्ठाभरणविशेषः सुशब्दा बद्धा यत्र स चासौ कण्ठश्च तेन परिमण्डितानां, तथा नानाप्रकारमणिकनकरत्नमय्यो या घण्टिकाः–क्षुद्रघण्टाः किङ्किण्य इत्यर्थस्तासां वैकक्षिकास्तिर्यग्वक्षसि स्थापितत्वेन सुकृताः–सुष्ठु रचिता मालिकाः–श्रेणयो येषां ते तथा तेषां, तथा वरघण्टिकाः–उक्तघंटिकातो विशिष्टतरत्वेन प्रधानघण्टा गले येषां ते वरघण्टागलकाः तथा मालया उज्ज्वलास्ते तथा ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषां, तथा पुष्पा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लङ्कारमेव विशेषेणाह—पद्मानि–सूर्यविकासीनि उत्पलानि–चन्द्रविकासीनि सकलानि–अखण्डितानि सुरभीणि तेषां मालास्ताभिर्विभूषितानां पदव्यत्ययः प्राग्वत्, तथा वज्ररत्नमयाः खुराः प्रतीता येषां ते तथा तेषां विविधाः मणिकनकादिमयत्वेन नानाप्रकारा विखुरा–उक्तखुरेभ्य ऊर्ध्ववर्त्तित्वेन विकृष्टाः खुरा येषां ते तथा तेषां, तथा स्फटिकमयदन्तानां तथा तपनीयमयजिह्वानां तथा तपनीयमयतालुकानां तथा तपनीययोक्त्रके सुयोजितानां तथा 'कामगमाण'मित्यादि षट् पदानि प्राग्वत्, महता–गम्भीरेण गर्जितरवेण–भाङ्कारशब्दरूपेणेत्यादि प्राग्वदिति। अथ चतुर्थवाहावाहकानाह—'चन्दविमाणस्स ण'मित्यादि, चन्द्रविमानस्योत्तरस्यां जिगमिषितदिश उत्तरपार्श्वे वामपार्श्वे इत्यर्थः, हयरूपधारिणां देवानां चत्वारि देवसहस्राणि उत्तरां बाहां परिवहन्तीति सम्बन्धः, श्वेतानामित्यादि प्राग्वत्, तथा तरो–वेगो बलं वा तथा 'मलि मल्लि धारणे' ततश्च तरोधारको वेगादिधारको हायनः–संवत्सरो येषां ते तरोमल्लिहायना यौवनवन्त इत्यर्थः अतस्तेषां वरतुरङ्गमाणामित्यादियोगः, तथा हरिमेलको–वनस्पतिविशेषस्तस्य मुकुलं–कुड्मलं तथा मल्लिका–विचकिलस्तद्वदक्षिणी येषां ते तथा तेषां शुक्लाक्षाणामित्यर्थः, तथा 'चंचुच्चिय'त्ति प्राकृतत्वेन चंचुरितं–कुटिलगमनं अथवा चंचुः–शुकचंचुस्तद्वद्वक्रतयेत्यर्थः उच्चितं–उच्चताकरणं पादस्योच्चितं वा–उत्पाटनं पादस्यैव चंचूच्चितं च तत् ललितं च–विलासवद् गतिः पुलितं च–गतिविशेषः प्रसिद्धः एवंरूपा तथा चलयतीति चलो–वायुः कम्पनत्वात् तद्वच्चपलच्चला-अतीवचपला गतिर्येषां ते तथा तेषां, तथा लंघनं–गर्त्तादेरतिक्रमणं वल्गनं–उत्कूर्दनं धावनं–शीघ्रमृजुगमनं धोरणं–गति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्यं त्रिपदी–भूमौ पदत्रयन्यासः जयिनीव–गमनान्तरजयवती जविनी वा–वेगवती शिक्षिता–अभ्यस्ता गतिर्यैस्ते तथा तेषां, तथा ललन्ति–दोलायमानानि 'लाम'त्ति प्राकृतत्वाद्रम्याणि गललातानि–कण्ठे न्यस्तानि वरभूषणानि येषां ते तथा तेषां, तथा सन्नतपार्श्वानामित्यादि पञ्च पदानि प्राग्वत्, नवरं वालप्रधानानि पुच्छानि वालपुच्छान्यर्थाच्चामराणीत्यर्थः, तथा 'तणुसुहुमे'त्ति पदं प्राग्वत् तथा मृद्वी विशदा–उज्ज्वला अथवा परस्परमसम्मिलिता प्रतिरोमकूपमेकैकसम्भवात् सूक्ष्मा–तन्वी लक्षणप्रशस्ता विस्तीर्णा या केसरपालिः–स्कन्धकेशश्रेणिस्तां धरंति ये ते तथा तेषां, तथा ललन्तः–सुबद्धत्वेन सुशोभाका ये स्थासका–दर्पणाकारा आभरणविशेषास्त एव ललाटवरभूषणानि येषां ते तथा तेषां, तथा मुखमण्डकं च–मुखाभरणं अवचूलाश्च–प्रलम्बमानगुच्छाः चामराणि च स्थासकाश्च प्रतीता एषां द्वन्द्वस्तत एते यथास्थाने नियोजिता येषां सन्ति ते तथा, अभ्रादित्वादप्रत्यये रूपसिद्धिः, परिमण्डिता कटिर्येषां ते तथा, ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषां, तथा तपनीयखुराणां तथा तपनीयजिह्वानामित्यादि नव पदानि प्राग्वत्, तथा महता–बहुव्यापिना हयहेषितरूपो यः किलकिलायितरवः–सानन्दशब्दस्तेनेत्यादि प्राग्वत्, एवु च चतुर्ष्वपि विमानवाहावाहकसिंहादिवर्णकसूत्रेषु कियन्ति पदानि प्रस्तुतोपाङ्गसूत्रादर्शगतपाठा(न)नुसारीण्यपि श्रीजीवाभिगमोपाङ्गसूत्रादर्शपाठानुसारेण व्याख्यातानि, न च तत्र वाचनाभेदात् पाठभेदः सम्भवतीति वाच्यं, यतः श्रीमलयगिरिपादैर्जीवाभिगमवृत्तावेव "क्वचित् सिंहादीनां वर्णनं दृश्यते तद्बहुषु पुस्तकेषु न दृष्टमित्युपेक्षितं, अवश्यं चेत्तद्व्याख्यानेन प्रयोजनं तर्हि जम्बूद्वीपटीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

परिभावनीया, तत्र सविस्तरं तद्व्याख्यानस्य कृतत्वादि"त्यतिदेशविषयीकृतत्वेन द्वयोः सूत्रयोः सदृशपाठकत्वमेव सम्भाव्यत इति, यत्तु जीवाभिगमपाठदृष्टान्यपि 'मिअमाइअपीणरइअपासाण'मित्यादिपदानि न व्याख्यातानि तत् प्रस्तुतसूत्रे सर्वथा अदृष्टत्वात्, यानि च पदानि प्रस्तुतसूत्रादर्शपाठे दृष्टानि तान्येव जीवाभिगमपाठानुसारेण सङ्गतपाठीकृत्य व्याख्यातानीत्यर्थः। अथ चन्द्रवक्तव्यस्य सूर्यादिवक्तव्यविषयेऽतिदेशं चन्द्रादीनां सिंहादिसङ्ख्यासंग्रहणिगाथे चाह गाहा–"सोलस देवसहस्सा "इत्यादि, अत्र सङ्गतिप्राधान्याद् व्याख्यानस्य दृश्यमानप्रस्तुतसूत्रादर्शेषु पुरःस्थितोऽपि प्रथमं 'एवं सूरविमाणा'मित्याद्यालापको व्याख्येयो, यथा एवं–चन्द्रविमानवाहकानुसारेण सूर्यविमानानामपि वाहका वर्णनीयाः यावत्तारारूपाणामपि विमानवाहका वर्णनीयाः यावत्पदाद् ग्रहविमानानां नक्षत्रविमानानां च विमानवाहका वर्णनीयाः, नवरं एष देवसंघातः, अयमर्थः–सर्वेषां ज्योतिष्काणां विमानवाहकवर्णनसूत्रं सममेव तेषां सङ्ख्याभेदस्तु व्याख्यास्यमानगाथाभ्यामवगन्तव्यः, ते चेमे वक्ष्यमाणे गाहा इति–गाथे–'सोलसे'त्यादि, षोडशदेवसहस्राणि भवन्ति चन्द्रविमाने चैवेति समुच्चये तथा सूर्यविमानेऽपि षोडश देवसहस्राणि, बहुवचनं चात्र प्राकृतत्वात्, तथा अष्टौ देवसहस्राण्येकैकस्मिन् ग्रहविमाने तथा चत्वारि सहस्राणि नक्षत्रे चैकैकस्मिन् भवन्ति, तथा द्वे चैव सहस्रे तारारूपविमाने एकैकस्मिन्निति। अथ दशमद्वारप्रश्नमाह—

एतेसि णं भन्ते! चंदिमसूरिअगहगणनक्खत्ततारारूवाणं कयरे सव्वसिग्घगई कयरे सव्वसिग्घतराए चेव?, गोअमा! चन्देहिंतो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिष्काणाम् शीघ्र-शीघ्रतरगत्यः वर्ण्यते

सूरा सव्वसिग्घगई सूरेहिंतो गहा सिग्घगई गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगई णक्खत्तेहिंतो तारारूवा सिग्घगई, सव्वप्पगई चंदा सव्वसिग्घगई तारारूवा इति (सूत्रं १६७)। एतेसि णं भन्ते! चंदिमसूरिअगहणक्खतारारूवाणं कयरे सव्वमहिड्ढिआ कयरे सव्वप्पड्ढिआ?, गो०! तारारूवेहिंतो णक्खत्ता महिड्ढिआ णक्खत्तेहिंतो गहा महिड्ढिआ गहेहिंतो सूरिआ महिड्ढिआ सूरेहिंतो चन्दा महिड्ढिआ सव्वप्पिड्ढिआ तारारूवा सव्वमहिड्ढिआ चन्दा (सूत्रं१६८) जम्बुद्दीवे णं भन्ते! दीवे ताराए अ ताराए अ केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?, गोअमा! दुविहे–वाघाइए अ निव्वाघाइए अ, निव्वाघाइए जहण्णेणं पंचधणुसयाइं उक्कोसेणं दो गाऊआइं, वाघाइए जहण्णेणं दोण्णि छावट्ठे जोअणसए उक्कोसेणं बारस जोअणसहस्साइं दोण्णि अ बायाले जोअणसए तारारूवस्स २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते (सूत्रं १६९)।

'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषां भदन्त! चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणां मध्ये कतरः 'सर्वशीघ्रगतिः' सर्वेभ्यश्चन्द्रादिभ्यश्चरज्योतिष्केभ्यः शीघ्रगतिः, इदं च सर्वाभ्यन्तरमण्डलापेक्षया, कतरश्च सर्वशीघ्रगतितरकः, अत्र द्वयोः प्रकृष्टे तरप्, इदं च सर्वबाह्यमण्डलापेक्षयोक्तं, अभ्यन्तरमण्डलापेक्षया सर्वबाह्यमण्डलस्य गतिप्रकर्षस्य सुप्रसिद्धत्वात्, प्रज्ञप्त इति गम्यं, भगवानाह–गौतम! चन्द्रेभ्यः सूर्याः सर्वशीघ्रगतयः, सूर्येभ्यः ग्रहाः शीघ्रगतयः, ग्रहेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि, नक्षत्रेभ्यस्तारारूपाणि शीघ्रगतीनि, मुहूर्त्तगतौ विचार्यमाणायां परेषां परेषां गतिप्रकर्षस्यागमसिद्धत्वात्, अत एव सर्वेभ्योऽल्पा–मन्दा–गतिर्येषां ते तथा एवंविधाश्चन्द्रास्तथा सर्वेभ्यः शीघ्रगतीनि तारारूपाणीति। अथैकादशद्वारं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नयति—'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषां भदन्त! चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारारूपाणां मध्ये कतरे सर्वमहर्द्धिकाः कतरे च चकारोऽत्र गम्यः सर्वाल्पर्द्धिकाः?, भगवानाह—गौतम! तारारूपेभ्यो नक्षत्राणि महर्द्धिकानि नक्षत्रेभ्यो ग्रहा महर्द्धिकाः ग्रहेभ्यः सूर्या महर्द्धिकाः सूर्येभ्यश्चन्द्रा महर्द्धिकाः, अत एव सर्वाल्पर्द्धिकास्तारारूपाः सर्वमहर्द्धिकाश्चन्द्राः, इयमत्र भावना–गतिविचारणायां ये येभ्यः शीघ्रा उक्तास्ते तेभ्यः ऋद्धिविचारणायामुत्कमतो महर्द्धिका ज्ञेया इति। अथ द्वादशद्वारप्रश्नमाह–'जम्बुद्दीवे ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे तारायास्तारायाश्च कियदबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! द्विविधं–व्याघातिकं निर्व्याघातिकं च, तत्र व्याघातः–पर्वतादिस्खलनं तत्र भवं व्याघातिकं, निर्व्याघातिकं व्याघातिकान्निर्गतं स्वाभाविकमित्यर्थः, तत्र यन्निर्व्याघातिकं तज्जघन्यतः पञ्चधनुःशतानि उत्कृष्टतो द्वे गव्यूते, एतच्च जगत्स्वाभाव्यादेवावगन्तव्यं, यच्च व्याघातिकं तज्जघन्यतो द्वे योजनशते षट्षष्ट्यधिके, एतच्च निषधकूटादिकमपेक्ष्य वेदितव्यं, तथाहि–निषधपर्वतः स्वभावतोऽप्युच्चैश्चत्वारि योजनशतानि तस्य चोपरि पञ्चयोजनशतोच्चानि कूटानि तानि च मूले पञ्चयोजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां मध्ये त्रीणि योजनशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि उपरि अर्द्धतृतीये द्वे योजनशते तेषां चोपरितनभागसमश्रेणिप्रदेशे तथाजगत्स्वाभाव्यादष्टावष्टौ योजनान्यबाधया कृत्वा ताराविमानानि परिभ्रमन्ति ततो जघन्यतो व्याघातिकमन्तरं द्वे योजनशते षट्षष्ट्यधिके भवतः, उत्कर्षतो द्वादश योजनसहस्राणि द्वे योजनशते द्विचत्वारिंशदधिके, एतच्च मेरुमपेक्ष्य द्रष्टव्यं, तथाहि—मेरौ दशयोजनसहस्राणि मेरोश्चोभयतोऽबाधया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥५३२॥

एकादशयोजनशतान्येकविंशत्यधिकानि, ततः सर्वसङ्ख्यामीलने भवन्ति द्वादशयोजनसहस्राणि द्वे च योजनशते द्विचत्वारिंशदधिके, एवं तारारूपस्य तारारूपस्य अन्तरं प्रज्ञप्तमिति । अथ त्रयोदशं द्वारं प्रश्नयन्नाह—

चन्दस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?, गोअमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं०— चन्दप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा, तओ णं एगमेगा देवी चत्तारि २ देवीसहस्साइं परिवारो पण्णत्तो, पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नं देवीसहस्सं विउव्वित्तए, एवामेव सपुव्वावरेणं सोलस देवीसहस्सा, सेत्तं तुडिए । पहू णं भंते! चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे चन्दाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं महयाहयणट्टगीअवाइअ जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?, गोअमा! णो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं जाव विहरित्तए?, गो०! चंदस्स णं जोइसिंदस्स० चंदवडेंसए विमाणे चंदाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइअखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूईओ जिणसकहाओ सन्निखित्ताओ चिट्ठंति ताओ णं चंदस्स अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ, से तेणट्ठेणं गोयमा! णो पभूत्ति, पभू णं चंदे सभाए सुहम्माए चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं एवं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परिआरिद्धीए, णो चेव णं मेहुणवत्तिअं, विजया १ वेजयंती २ जयंती ३ अपराजिआ ४ सव्वेसिं गहाईणं एआओ अग्गमहिसीओ, छावत्तरसस्सवी गहसयस्स एआओ अग्गमहिसीओ वत्तव्वाओ, इमाहि गाहाहिंति—इंगालए १ विआलए २ लोहिअंके ३ सणिच्छरे चेव । आहुणिए ५ पाहुणिए ६ कणगसणामा य पंचेव ११ ॥१॥ सोमे १२ सहिए १३ आसणेय १४ कज्जोवए १५ अ

७वक्षस्कारे अग्रमहिष्यो गुहाश्च स्थितिः सू. १६७-१७०

॥५३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रादि ज्योतिष्काणाम् अग्रमहिष्याया: वर्णनं क्रियते

कब्बुरए १६। अयकरए १७ दुंदुभए संखसनामेवि तिण्णेव ॥२॥ एवं भाणियव्वं जाव भावकेउस्स अग्गमहिसीओत्ति॥ (सूत्रं१६८)◆
चंदविमाणे णं भंते! देवाणं केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता?, गो०! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससय-सहस्समब्भहिअं, चंदविमाणे णं देवीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उ० अद्धपलियोवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिमब्भहिअं, सूरविमाणे देवाणं चउब्भागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं, सूरविमाणे देवीणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओ-वमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं गहविमाणे देवाणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं गहविमाणे देवीणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं, णक्खत्तविमाणे देवाणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिणोवमं णक्खत्तविमाणे देवीणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं उक्कोसेणं साहिअं चउब्भागपलिओवमं, तारावि-माणे देवाणं जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउब्भागपलिओवमं तारविमाणदेवीणं जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं (सूत्रं १७०)

'चन्दस्स ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे चतस्रोऽग्रमहिष्यः, तद्यथा–चन्द्रप्रभा 'दोसिणाभ'त्ति ज्योत्स्नाभा अर्चिर्मालिनी प्रभङ्करा, ततश्च–चतुःसङ्ख्याकथनानन्तरं परिवारो वक्तव्य इत्यर्थः एकैकस्या देव्याश्चत्वारि २ देवीसहस्राणि परिवारः प्रज्ञप्तः, किमुक्तं भवति?–एकैका अग्रमहिषी चतुर्णां २ देवीसहस्राणां पट्टराज्ञी, अथ विकुर्वणासामर्थ्यमाह— प्रभुः समर्था णमिति वाक्यालङ्कारे 'ताओ'त्ति वचनव्यत्ययात् सा इत्थंभूता अग्रमहिषी परिचारणावसरे तथा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

◆ अत्र मूल-संपादकस्य मुद्रण-शुद्धेः स्खलनत्वात् 'सू० १६८' इति द्विवारान् मुद्रितं, तत् कारणात् मया '१६८ R' इति सूत्रक्रम निर्दिष्टं

विधां ज्योतिष्कराजचन्द्रदेवेच्छामुपलभ्यान्यमात्मसमानरूपं देवीसहस्रं विकुर्विंतुं, स्वाभाविकानि पुनरेवं–उक्तप्रकारेणैव, सपूर्वापरमीलनेन षोडशदेवीसहस्राणि चन्द्रदेवस्य भवन्ति, चतस्रोऽग्रमहिष्य एकैका चात्मना सह चतुश्चतुर्देवीसहस्रपरिवारा, ततः सर्वसङ्कलने भवन्ति षोडश देवीसहस्राणि, इह यथा चमरेन्द्रादितुडिकवक्तव्यताधिकारे स्वस्वपरिवारसङ्ख्यानुसारेण विकुर्वणीयसङ्ख्या उक्ता तथैव जीवाभिगमादौ चन्द्रदेवानामपि चतुःचतुःसहस्रस्वपरिवारानुसारेण चतुश्चतुर्देवीसहस्रविकुर्वणा दृश्यते अत्र तु न तथेति मतान्तरमवसेयं प्रस्तुतसूत्रादर्शलेखकवैगुण्यं वा ज्ञेयमिति, 'सेत्तं तुडिए'इति, तदेतत् चन्द्रदेवस्य तुटिकं–अन्तःपुरं, उक्तं च जीवाभिगमचूर्णौ–"तुटिकमन्तःपुरमुपदिश्यते" इति। अथ चतुर्दशं द्वारं प्रश्नयति–'पहू ण'मित्यादि, प्रभुर्भदन्त! चन्द्रो ज्योतिषेन्द्रो ज्योतिषराजश्चन्द्रावतंसके विमाने चन्द्रायां राजधान्यां सुधर्मायां सभायां तुटिकेनेति–अन्तःपुरेण सार्द्धं 'महया'इत्यादि प्राग्वत् विहर्त्तुमित्यन्वयः, अत्र काकुपाठात् प्रश्नसूत्रमवगन्तव्यं, भगवानाह––गौतम! नायमर्थः समर्थः, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–यावत्करणात् णो पभू चंदे जोइसिंदे जोइसराया चन्दवडेंसए विमाणे चन्दाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं महयाहयगीअवाइअणट्ट जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे' इति ग्राह्यं विहर्त्तुमिति, अत्रोत्तरसूत्रमाह––गौतम! चन्द्रस्य ज्योतिषेन्द्रस्य चन्द्रावतंसके विमाने चन्द्रायां राजधान्यां सभायां सुधर्मायां माणवकनाम्नि चैत्यस्तम्भे–चैत्यवत् पूज्यः स्तम्भः चैत्यस्तम्भस्तस्मिन् वज्रमयेषु गोलवद्वृत्तेषु समुद्गकेषु–सम्पुटरूपभाण्डेषु बह्व्यो जिनसकथा–जिन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सक्थीनि सन्निक्षिप्ताः—स्थापितास्तिष्ठन्ति ताश्च णमिति प्राग्वत् चन्द्रस्य अन्येषां च बहूनां देवानां देवीनां चार्च्चनीयाश्चन्दनादिना यावत्करणाद् वन्दनीयाः स्तुतिभिर्नमस्यनीयाः प्रणामतः पूजनीयाः पुष्पैः सत्कारणीया वस्त्रादिभिः सन्माननीयाः प्रतिपत्तिविशेषैरिति ग्राह्यं, पर्युपासनीयाः कल्याणमित्यादिबुद्ध्या, अथ तेनार्थेन एवमुच्यते—गौतम! न प्रभुरिति, जिनेष्विव जिनसक्थिष्वपि तेषां बहुमानपरत्वेनाशातनाभीरुत्वादिति, अथैवं सति कल्पातीतदेवानामिवास्यापि अप्रविचारता उत नेत्याशङ्कामपाकर्त्तुमाह—'पभू ण'मिति, प्रभुश्चन्द्रसभायां सुधर्मायां चतुर्भिः सामानिकसहस्रैः एवमित्युक्तप्रकारेण यावत्करणात् चतसृभिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिरित्यादिकः सर्वोऽप्यालापको वाच्यः, दिव्यान् भोगार्हान् ये भोगाः—शब्दादयस्तान् भुञ्जानो विहर्त्तुमिति, अत्रैव विशेषमाह—केवलं—नवरं परिवारः—परिकरस्तस्य ऋद्धिः—सम्पत्तत्तया, एते सर्वेऽपि मम परिचारकाः अहं चैषां स्वामीत्येवं निजस्फातिविशेषदर्शनाभिप्रायेणेति भावः, नैव च मैथुनप्रत्ययं—सुरतनिमित्तं यथा भवत्येवं भोगभोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुं प्रभुरिति। अथ प्रस्तुतोपाङ्गादर्शेष्वदृष्टमपि जीवाभिगमाद्युपाङ्गादर्शदृष्टं सूर्याग्रमहिषीवक्तव्यमुपदर्श्यते, 'सूरस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?, गोअमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पं०, तंजहा—सूरप्पभा आयवाभा अच्चिमालि पभंकरा एवं अवसेसं जहा चन्दस्स णवरं सूरवडेंसए विमाणे सूरंसि सीहासणंसी'ति व्यक्तम्। अथ ग्रहादीनामग्रमहिषीवक्तव्यमाह—'विजया'इत्यादि, ग्रहादीनामादिशब्दात् नक्षत्रतारकापरिग्रहः सर्वेषामपि विजया वैजयन्तीत्यादिचतुर्भिर्नामभिरेवाग्रमहिष्यो ज्ञेयाः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्तमेव विशिष्य आह—'छावत्तर'इत्यादि, षट्सप्तत्यधिकस्य ग्रहशतस्यापि जम्बूद्वीपवर्त्तिचन्द्रद्वयपरिवारभूतानां ग्रहाणां द्विगुणितायां अष्टाशीतेरित्यर्थः, एता—अनन्तरोक्ता विजयाद्या अग्रमहिष्यो वक्तव्याः इमाभिर्वक्ष्यमाणाभिर्गाथाभिरुक्तनामभिः इति गम्यं, इदं च ग्रहशतस्य विशेषणं बोध्यं, अत्र सूत्रादर्शे प्रथमदृष्टमपि नक्षत्रदैवतसूत्रमुपेक्ष्य क्रमप्राधान्याद् व्याख्यानस्येति प्रथममष्टाशीतिग्रहनामसूत्रं व्याख्यायते—'इंगालए'इत्यादि, अङ्गारकः १ विकालकः २ लोहिताङ्कः ३ शनैश्चरः ४ आधुनिकः५ प्राधुनिकः ६ कनकेन सह एकदेशेन समानं नाम येषां ते कनकसमाननामानस्ते पञ्चैव प्रागुक्तसङ्ख्यापरिपाट्या योजनीयाः, तद्यथा—कणः ७ कणकः ८ कणकणकः ९ कणवितानकः १० कणसन्तानकः ११ 'सोमे'त्यादि सोमः १२ सहितः १३ आश्वासनः १४ कार्योपगः १५ कर्बुरकः १६ अजकरकः १७ दुन्दुभकः १८ शंखसमाननामानो नाम्नि शंखशब्दाङ्किता इत्यर्थः ते त्रयः, तद्यथा—शंखः १९ शंखनाभः २० शंखवर्णाभः २१ 'एवं' उक्तेन प्रकारेण भणितव्यं, प्रत्येकमग्रमहिषीसंख्याकथनाय अष्टाशीतेर्ग्रहाणां नामसंग्राहकगाथाकदम्बकमिति शेषः, यावत् भावकेतोर्ग्रहस्याग्रमहिष्यः, यावत्करणात् इदं द्रष्टव्यं—तिण्णेव कंसनामा णीले रुप्पि अ हवंति चत्तारि । भावतिलपुप्फवण्णे दग दगवण्णे य कायवंधे य ॥ ३ ॥ इंदग्गिधूमकेऊ हरिपिंगलए बुहे अ सुक्के अ । वहस्सइराहु अगत्थी माणवगे कामफासे अ ॥४॥ धुरए पमुहे वियडे विसंधि कप्पे तहा पयलेय । जडियालए य अरुणे अग्गिलकाले महाकाले ॥५॥ सोत्थिअ सोवत्थिअए वद्धमाणग तहा पलंबे अ । णिच्चालोए णिच्चुज्जोए सयंपभे चेव ओभासे ॥६॥ सेयं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करखेमंकर आभंकर पभंकरे अ णायवो । अरए विरए अ तहा असोग तह वीतसोगे य ॥७॥ विमल वितत्थ विवत्थे विसाल तह साल सुव्वए चेव । अनियट्टी एगजडी अ होइ बिजडी य बोद्धव्वे ॥८॥ कर करिअ राय अग्गल बोद्धव्वे पुष्फ-भावकेऊ अ । अट्ठासीई गहा खलु णायव्वा आणुपुवीए॥९॥ अत्र व्याख्या–कंसशब्दोपलक्षितं नाम येषां ते कंसनामानः ते त्रय एव, तद्यथा–कंसः २२ कंसनाभः २३ कंसवर्णाभः २४ नीले रुप्ये च शब्दे विषयभूते द्विद्विनामसंभवात् सर्वसंख्यया भवन्ति चत्वारस्तद्यथा–नीलः २५ नीलावभासः २६ रुप्पी २७ रुप्यावभासः २८ भास इति नामद्वयोप-लक्षणं तद्यथा–भस्म २९ भस्मराशिः ३० तिलः ३१ तिलपुष्पवर्णः ३२ दकः ३३ दकवर्णः ३४ कायः ३५ वन्ध्यः ३६ चः समुच्चये इंद्राग्निः ३७ धूमकेतुः ३८ हरिः ३९ पिङ्गलकः ४० बुधः ४१ तथैव, एवमग्रेऽपि, शुक्रः ४२ बृह-स्पतिः ४३ राहुः ४४ अगस्तिः ४५ माणवकः ४६ कामस्पर्शः ४७ धुरकः ४८ प्रमुखः ४९ विकटः ५० विसन्धिकल्पः ५१ तथा प्रकल्पः ५२ जटालः ५३ अरुणः ५४ अग्निः ५५ कालः ५६ महाकालः ५७ स्वस्तिकः ५८ सौवस्तिकः ५९ वर्धमानकः ६० तथा प्रलम्बः ६१ नित्यालोकः ६२ नित्योद्योतः ६३ स्वयंप्रभः ६४ अवभासः ६५ श्रेयस्करः ६६ क्षेमङ्करः ६७ आभङ्करः ६८ प्रभङ्करः ६९ बोद्धव्यः अरजाः ७० विरजाः ७१ तथा अशोकः ७२ तथा वीतशोकः ७३ विमलः ७४ विततः ७५ विवस्त्रः ७६ विशालः ७७ शालः ७८ सुव्रतः ७९ अनिवृत्तिः ८० एकजटी ८१ भवति द्विजटी ८२ बोद्धव्यः करः ८३ करिकः ८४ राजा ८५ अर्गलः ८६ बोद्धव्यः पुष्पकेतुः ८७ भावकेतुः ८८ इति अष्टा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

शीतिर्ग्रहाः खलु ज्ञातव्या आनुपूर्व्येति। अथ 'सबेसिं गहाईण'मित्यादिपदेन सूचिताना नक्षत्राणामधिदैवतद्वारा नामप्रतिपादनाय गाथाद्वयमाह–

बह्मा विण्हू अ वसू वरुणे अय वुड्ढी पूस आस जमे। अग्गि पयावइ सोमे रुद्दे अदिती बहस्सई सप्पे ॥ १ ॥ पिउ भगअज्जमसविआ तट्ठा वाऊ तहेव इंदग्गी। मित्ते इंदे निरुई आऊ विस्सा य बोद्धव्वे ॥ २ ॥ इति (सूत्रं १७१)

ब्रह्मा अभिजित् १ विष्णुः श्रवणः २ वसुर्धनिष्ठा ३ वरुणः शतभिषक् ४ अजः पूर्वभाद्रपदा ५ वृद्धिरित्यत्र पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् अभिवृद्धिरुत्तरभाद्रपदा ६ अन्यत्राहिर्बुध्न इति, पूषा रेवती ७ अश्वोऽश्विनी ८ यमो भरणि ९ अग्निः कृत्तिका १० प्रजापती रोहिणी ११ सोमो मृगशिरः १२ रुद्र आर्द्रा १३ अदितिः पुनर्वसुः १४ बृहस्पतिः पुष्यः १५ सर्पोऽश्लेषा १६ पिता मघा १७ भगःपूर्वफाल्गुनी १८ अर्यमा उत्तराफाल्गुनी १९ सविता हस्तः २० त्वष्टा चित्रा २१ वायुः स्वातिः २२ इंद्राग्नी विशाखा २३ मित्रोऽनुराधा २४ इन्द्रो ज्येष्ठा २५ निर्ऋतिर्मूलं २६ आपः पूर्वाषाढा २७ विश्वे उत्तराषाढा २८ चेति नक्षत्राणि बोद्धव्यानि, ननु स्वस्वामिभावसम्बन्धप्रतिपादकभावमन्तरेण कथं देवतानामभिर्नक्षत्रनामानि संपद्येरन्?, उच्यते, अधिष्ठातरि अधिष्ठेयस्योपचारात् भवति, एतेषां चाष्टाविंशतेरपि नक्षत्राणां विजयादिनामभिरेव पूर्वोक्ताश्चतस्रोऽग्रमहिष्यो वक्तव्या इति। तारकाणां च सपञ्चसप्ततिसहस्राधिकषट्षष्टिकोटाकोटीप्रमाणत्वेन बहुसंख्याकतया नामव्यवहारस्यासंव्यवहार्यत्वेन चोपेक्षा, परमेषामप्येता एव चतस्रोऽग्रमहिष्यो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ नक्षत्राणां अधिदेवतायाः नामानि दर्श्यते

बोध्या इति । अथ पञ्चदशं द्वारं प्रश्नविषयीकर्तुमाह–'चन्दविमाणे णं भंते!' इत्यादि, प्रायः सुगमं, नवरं चतुर्भागपल्योपमस्थितिः–चतुर्भागमात्रं पल्योपमं चतुर्भागपल्योपममिति विशेषणसमासः पल्योपमचतुर्भाग इत्यर्थः प्राकृतत्वात् पूरणप्रत्ययलोपः, एवमग्रेऽष्टभागपल्योपमादावपि बोध्यं, चन्द्रविमाने हि चन्द्रदेवः सामानिकाश्च आत्मरक्षकादयश्च परिवसन्ति तेन चन्द्रसामानिकापेक्षया उत्कृष्टमायुर्बोध्यं, तेषामेवोत्कृष्टायुःसंभवात्, जघन्यं चात्मरक्षकादिदेवापेक्षयेति, एवं सूर्यविमानादिसूत्रेष्वपि भाव्यम् । अथ सूर्यायुःसूत्रम्—'सूरविमाणे'इत्यादि, व्यक्तं, अथ ग्रहादीनां स्थितिसूत्राणि 'गहविमाणे'इत्यादि, एतानि त्रीण्यपि सूत्राणि निगदसिद्धानीति । षोडशं द्वारं पृच्छति—

एतेसि णं भन्ते! चंदिमसूरिअगहणक्खत्ततारारूवाणं कयरे२हिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिआ वा?, गो० ! चंदिमसूरिआ दुवे तुल्ला सव्वत्थोवा णक्खत्ता संखेज्जगुणा गहा संखेज्जगुणा तारारूवा संखेज्जगुणा इति (सूत्रं. १७२) जम्बुदीवे णं भन्ते ! दीवे जहण्णपए वा उक्कोसपए वा केवइआ तित्थयरा सव्वग्गेणं पं०?, गो० ! जहण्णपए चत्तारि उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थयरा सव्वग्गेणं पण्णत्ता । जम्बुदीवे णं भंते ! दीवे केवइआ जहण्णपए वा उक्कोसपए वा चक्कवट्टी सव्वग्गेणं पं०?, गो० ! जहण्णपदे चत्तारि उक्कोसपदे तीसं चक्कवट्टी सव्वग्गेणं पण्णत्ता इति, बलदेवा तत्तिआ चेव जत्तिआ चक्कवट्टी, वासुदेवावि तत्तिया चेवत्ति । जम्बुदीवे दीवे केवइआ निहिरयणा सव्वग्गेणं पं०?, गो० ! तिण्णि छलुत्तरा णिहिरयणसया सव्वग्गेणं पं०, जम्बुदीवे २ केवइआ णिहिरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति?, गो०! जहण्णपए छत्तीसं उक्कोसपए दोण्णि सत्तरा णिहिरयणसया परिभोगत्ताए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हव्वमागच्छंति, जम्बुद्दीवे २ केवइआ पंचिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?, गो० ! दो दसुत्तरा पंचिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता, जम्बुद्दीवे २ जहण्णपदे वा उक्कोसपदे वा केवइआ पंचिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?, गो० ! जहण्णपए अट्ठावीसं उक्कोसपए दोण्णि दसुत्तरा पंचिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइआ एगिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पं० ?, गो० ! दो दसुत्तरा एगिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पं०, जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइआ एगिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छन्ति ?, गो० ! जहण्णपए अट्ठावीसं उक्कोसेणं दोण्णि दसुत्तरा एगिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति (सूत्रं १७३)

'एतेसि ण'मित्यादि, एतेषां–अनन्तरोक्तानां प्रत्यक्षप्रमाणगोचराणां वा भदन्त ! चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारारूपाणां कतरे कतरेभ्योऽल्पाः–स्तोकाः वा विकल्पसमुच्चयार्थे कतरे कतरेभ्यो बहुका वा कतरे कतरेभ्यस्तुल्या वा, अत्र विभक्तिपरिणामेन तृतीया व्याख्येया, कतरे कतरेभ्यो विशेषा वेति, गौतम ! चन्द्रसूर्या एते द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं चन्द्रसूर्याणां समसङ्ख्याकत्वात्, शेषेभ्यो ग्रहादिभ्यः सर्वेऽपि स्तोकाः, तेभ्यो नक्षत्राणि सङ्ख्येयगुणानि अष्टाविंशतिगुणत्वात्, तेभ्योऽपि ग्रहाः सङ्ख्येयगुणाः सातिरेकत्रिगुणत्वात्, तेभ्योऽपि तारारूपाणि सङ्ख्येयगुणानि प्रभूतकोटाकोटीगुणत्वादिति, व्याख्यातं षोडशमल्पबहुत्वद्वारं, तेन सम्पूर्णं संग्रहणीगाथाद्वयव्याख्यानमिति । अथ जम्बूद्वीपे जघन्योत्कृष्टपदाभ्यां तीर्थकरान् पिपृच्छिषुराह—'जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे जहण्णपए'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे जघन्यपदे सर्वस्तोके स्थाने वा उत्कृष्टपदे सर्वोत्कृष्टस्थाने वा विचार्यमाणे इति शेषः कियन्तस्तीर्थकराः सर्वाग्रेण-सर्वसंख्यया केवलिदृष्टमात्रया इत्यर्थः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! जघन्यपदे चत्वारः प्राप्यन्ते, तथाहि–जम्बूद्वीपस्य पूर्वविदेहे शीतामहानद्या द्विभागीकृते दक्षिणोत्तरदिग्भागयोरेकैकस्य सद्भावात् द्वौ अपरविदेहेऽपि शीतोदया महानद्या द्विभागीकृते तथैव द्वौ जिनेन्द्रौ मिलिताश्चत्वारः, भरतैरावतयोस्तु एकान्तसुषमादावभाव एव, उत्कृष्टपदे चतुस्त्रिंशत्तीर्थकराः सर्वाग्रेण प्रज्ञप्ताः, तथाहि–महाविदेहे प्रतिविजयं भरतैरावतयोश्चैकैकस्य सम्भव इति सर्वमीलने चतुस्त्रिंशत्, एषां हि भगवतां स्वस्वक्षेत्रवर्त्तिभिश्चक्रिभिरर्द्धचक्रिभिश्च सहानवस्थानलक्षणविरोधासम्भवात्, एतच्च विहरमानजिनापेक्षया बोद्धव्यं, न तु जन्मापेक्षया, तच्चिन्तायां तूत्कृष्टपदे चतुस्त्रिंशतस्तीर्थकराणामसम्भवादिति। अथात्रैव जघन्योत्कृष्टपदाभ्यां चक्रिणः पृच्छति–'जम्बुद्दीवे'इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे कियन्तो जघन्यपदे वा उत्कृष्टपदे वा चक्रवर्त्तिनः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! जघन्यपदे चत्वारः उपपत्तिस्तु तीर्थङ्कराणामिव, उत्कृष्टपदे त्रिंशच्चक्रवर्त्तिनः सर्वाग्रेण प्रज्ञप्ताः, कथमिति चेत्, उच्यते, द्वात्रिंशद्विजयेषु वासुदेवस्वामिकान्यतरविजयचतुष्कवर्जितविजयसत्काऽष्टाविंशतिः भरतैरावतयोस्तु द्वाविति पूर्वापरमीलितास्त्रिंशत्, यदा महाविदेहे उत्कृष्टपदेऽष्टाविंशतिश्चक्रिणः प्राप्यन्ते तदा नियमाच्चतुर्णामर्द्धचक्रिणां सम्भवेन तन्निरुद्धक्षेत्रेषु चक्रिणामसम्भवात्, चक्रिणामर्द्धचक्रिणां च सहानवस्थानलक्षणविरोधादिति, अथात्र तथैव बलदेवानर्द्धचक्रिणश्चाह—'बलदेवा तत्तिआ'इत्यादि, बलदेवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

अपि तावन्त एवोत्कृष्टपदे जघन्यपदे च यावन्तश्चक्रवर्त्तिनः, वासुदेवा अपि तावन्त एव बलदेवसहचारित्वात्, कोऽर्थः ?- यदा चक्रवर्त्तिनः उत्कृष्टपदे त्रिंशद् तदा अवश्यं बलदेववासुदेवा जघन्यपदे चत्वारः तेषां चतुर्णामवश्यं भावात्, यदा च बलदेवा वासुदेवा उत्कृष्टपदे त्रिंशत् तदा चक्रिणो जघन्यपदे चत्वारः तेषामपि चतुर्णामवश्यं भावात्, तेनैतेषां परस्परं सहानवस्थानलक्षणविरोधभावेनान्यतराश्रितक्षेत्रे तदन्यतरस्याभाव इति । अथैते निधिपतयो भवन्तीति जम्बूद्वीपे निधिसङ्ख्यां प्रष्टुमाह—'जम्बुद्दीवे दीवे'इत्यादि, जम्बूद्वीपे द्वीपे कियन्ति निधिरत्नानि-उत्कृष्टनिधानानि यानि गङ्गादिनदीमुखस्थानि चक्रवर्त्ती हस्तगतपरिपूर्णषट्खण्डदिग्विजयव्यावृत्तोऽष्टमतपःकरणा-नन्तरं स्वसात्करोति तानि सर्वाग्रेण–सर्वसङ्ख्यया प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! त्रीणि षडुत्तराणि निधिरत्न-शतानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–नवसङ्ख्याकानि निधानानि चतुस्त्रिंशता गुण्यन्त इति यथोक्तसङ्ख्येति, इयं च सत्तामाश्रित्य प्ररूपणा कृता, अथ निधिपतीनां कति निधानानि विवक्षितकाले भोग्यानि भवन्तीति प्रश्न-माह—'जम्बुद्दीवे दीवे'इत्यादि, जम्बूद्वीपे द्वीपे कियन्ति निधिरत्नशतानि परिभोग्यतया उत्पन्ने प्रयोजने चक्रवर्त्तिभि-र्व्यापार्यमाणत्वेन हवमिति–शीघ्रं चक्रवर्त्त्यभिलाषोत्पत्त्यनन्तरं निर्विलम्बमित्यर्थः आगच्छन्ति ?, भगवानाह–गौतम ! जघन्यपदे षट्त्रिंशत् जघन्यपदभाविनां चक्रवर्त्तिनां नवनिधानानि चतुर्गुणितानि यथोक्तसङ्ख्याप्रदानीति, उत्कृष्टपदे तु द्वे सप्तत्यधिके निधिरत्नशते परिभोग्यतया शीघ्रमागच्छतः, उत्कृष्टपदभाविनां चक्रिणां त्रिंशतो नव नव निधानानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवन्तीति नव त्रिंशता गुण्यन्त इत्युपपद्यते यथोक्तसंख्येति । अथ जम्बूद्वीपवर्त्तिचक्रवर्त्तिरत्नसंख्यां पिपृच्छिषुराह–'जम्बुद्दीवे'त्ति, जम्बूद्वीपे २ भदन्त! कियन्ति पञ्चेन्द्रियरत्नानि–सेनापत्यादीनि सप्त तेषां शतानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! द्वे दशोत्तरे पञ्चेन्द्रियरत्नशते सर्वाग्रेण प्रज्ञप्ते, तद्यथा–उत्कृष्टपदभाविनां त्रिंशतश्चक्रिणां प्रत्येकं सप्तपञ्चेन्द्रियरत्नसद्भावेन सप्तसंख्या त्रिंशता गुण्यते भवति यथोक्तं मानं, ननु निधिसर्वाग्रपृच्छायां चतुस्त्रिंशता गुणनं पञ्चेन्द्रियरत्नसर्वाग्रपृच्छायां तु किमिति त्रिंशता गुणनं?, उच्यते, चतुर्षु वासुदेवविजयेषु तदा तेषामनुपलम्भात्, निधीनां तु नियतभावत्वेन सर्वदाऽप्युपलब्धेः, तेन रत्नसर्वाग्रसूत्रे रत्नपरिभोगसूत्रे च न कश्चित् संख्याकृतो विशेष इति, अथ रत्नपरिभोगप्रश्नसूत्रमाह–'जम्बुद्दीवे'इत्यादि, प्रायो व्याख्यातत्वाद् व्यक्तं, अथैकेन्द्रियरत्नानि प्रश्नयितुमाह–'जम्बुद्दीवे'त्ति व्यक्तं, नवरं एकेन्द्रियरत्नानि चक्रिणां चक्रादीनि तेषां शतानीति । अथैकेन्द्रियरत्नपरिभोगसूत्रं पृच्छन्नाह–'जम्बुद्दीवे' त्ति व्यक्तं ॥ अथ जम्बूद्वीपस्य विष्कम्भादीनि पृच्छन्नाह—

जम्बुद्दीवे णं भन्ते! दीवे केवइअं आयामविक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं केवइअं उव्वेहेणं केवइअं उद्धं उच्चत्तेणं केवइअं सव्वग्गेणं पं०?, गो०! जम्बुद्दीवे २ एगं जोअणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोअणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तिण्णि अ कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं पं०, एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेणं णवणउतिं जोअणसहस्साइं साइरेगाइं उद्धं उच्चत्तेणं साइरेगं जोअणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते। (सूत्रं १७४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ जम्बूद्वीपस्य आयाम-विष्कंभ आदि प्रदर्श्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

जम्बुद्दीवे णं भन्ते! दीवे किं सासए असासए?, गोअमा! सिअ सासए सिअ असासए, से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ–सिअ सासए सिअ असासए?, गो०! दव्वट्ठयाए सासए वण्णपज्जवेहिं गंध० रस०फासपज्जवेहिं असासए, से तेणट्ठेणं गो०! एवं वुच्चइ सिअ सासए सिअ असासए । जम्बुद्दीवे णं भन्ते! दीवे कालओ केवचिरं होइ?, गोअमा! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि ण भविस्सइ, भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे णिइए सासए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे जम्बुद्दीवे दीवे पण्णत्ते इति (सूत्रं १७५) जम्बुद्दीवे णं भन्ते! दीवे किं पुढविपरिणामे आउपरिणामे जीवपरिणामे पोग्गलपरिणामे?, गोअमा! पुढविपरिणामेवि आउपरिणामेवि जीवपरिणामेवि पुग्गलपरिणामेवि । जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे सव्वपाणा सव्वजीवा सव्वभूआ सव्वसत्ता पुढविकाइअत्ताए आउकाइअत्ताए तेउकाइअत्ताए वाउकाइअत्ताए वणस्सइकाइअत्ताए उववण्णपुव्वा?, हंता गो०! असइं अदुवा अणंतखुत्तो (सूत्रं १७६) ।

'जम्बुद्दीवे'त्ति, अत्र सूत्रे विष्कम्भायामपरिक्षेपाः प्राग्व्याख्याताः, पुनः प्रश्नविषयीकरणं तु उद्वेधादिक्षेत्रधर्मप्रश्नकरणप्रस्तावाद्विस्मरणशीलविनेयजनस्मरणरूपोपकारायेति, तेन उद्वेधादिसूत्रे जम्बूद्वीपं द्वीपं अत्र द्वीपशब्दस्य क्लीबत्वनिर्देशः क्लीबेऽपि वर्त्तमानत्वात् कियदुद्वेधेन–उण्डत्वेन भूमिप्रविष्टत्वेनेत्यर्थः कियदूर्ध्वोच्चत्वेन–भूनिर्गतोच्चत्वेनेत्यर्थः कियच्च सर्वाग्रेण–उण्डत्वोच्चत्वमीलनेन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! विष्कम्भायामपरिक्षेपविषयं निर्वचनसूत्रं प्राग्वत् उद्वेधादिनिर्वचनसूत्रे तु एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन सातिरेकाणि नवनवतिं योजनसहस्राणि ऊर्ध्वोच्चत्वेन सातिरेकं योज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नशतसहस्रं सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तम्, ननु ऊण्डत्वव्यवहारो जलाशयादौ उच्चत्वव्यवहारस्तु पर्वतविमानादौ प्रसिद्धः द्वीपे तु स किं?, व्यवहाराविषयत्वादिति, उच्यते, समभूतलादारभ्य रत्नप्रभायामधः सहस्रयोजनानि यावद् गमनेऽधोग्रामविजयादिषु जम्बूद्वीपव्यवहारस्योपलभ्यमानत्वेनोण्डत्वव्यवहारः सुप्रसिद्ध एव, तथा जम्बूद्वीपोत्पन्नानां तीर्थकृतां जम्बूद्वीपमेरोः पण्डगवनेऽभिषेकशिलायामभिषिच्यमानत्वात् जम्बूद्वीपव्यपदेशपूर्वकमभिषेकस्य जायमानत्वेनोच्चत्वव्यवहारोऽप्यागमे सुप्रसिद्ध एवेति । अथास्यैव शाश्वतभावादिकं प्रश्नयन्नाह—'जम्बुद्दीवे ण'मित्यादि, इदं च यथा प्राक् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातं तथाऽत्र जम्बूद्वीपव्यपदेशेन बोध्यमिति, एवं च शाश्वताशाश्वतो घटो निरन्वयविनश्वरो दृष्टः किमसावपि तद्वत् उत नेत्याह—'जम्बुद्दीवे ण'मित्यादि, इदमपि प्राक् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातमिति । अथ किंपरिणामोऽसौ द्वीप इति पिपृच्छिषुराह—'जम्बुद्दीवे णं भन्ते!'इत्यादि, जम्बूद्वीपो भदन्त! द्वीपः किं पृथिवीपरिणामः—पृथिवीपिण्डमयः किमप्परिणामः—जलपिण्डमयः, एतादृशौ च स्कन्धावचित्तरजःस्कन्धादिवदजीवपरिणामावपि भवत इत्याशङ्क्याह—किं जीवपरिणामः—जीवमयः, घटादिरजीवपरिणामोऽपि भवतीत्याशङ्क्याह—किं पुद्गलपरिणामः—पुद्गलस्कन्धनिष्पन्नः केवलपुद्गलपिण्डमय इत्यर्थः, तेजसस्त्वेकान्तसुषमादावनुत्पन्नत्वेन एकान्तदुष्षमादौ तु विध्वस्तत्वेन जम्बूद्वीपेऽस्य तत्परिणामेऽङ्गीक्रियमाणे कादाचित्कत्वप्रसङ्गः वायोस्त्वतिचलत्वेन तत्परिणामे द्वीपस्यापि चलत्वापत्तिरिति तयोः स्वत एव सन्देहाविषयत्वेन न प्रश्नसूत्रे उपन्यासः, भगवानाह—गौतम! पृथिवी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणामोऽपि पर्वतादिमत्त्वात् अप्परिणामोऽपि नदीह्रदादिमत्त्वात् जीवपरिणामोऽपि मुखवनादिषु वनस्पत्यादिमत्त्वात्, यद्यपि स्वसमये पृथिव्यप्कायपरिणामत्वग्रहणेनैव जीवपरिणामत्वं सिद्धं तथापि लोके तयोर्जीवत्वस्याव्यवहारात् पृथग्ग्रहणं, वनस्पत्यादीनां तु जीवत्वव्यवहारः स्वपरसम्मत इति, पुद्गलपरिणामोऽपि मूर्त्तत्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, कोऽर्थः?–जम्बूद्वीपो हि स्कन्धरूपः पदार्थः, स चावयवैः समुदितैरेव भवति, समुदायरूपत्वात् समुदायिन इति । अथ यदि चायं जीवपरिणामस्तर्हि सर्वे जीवा अत्रोत्पन्नपूर्वा उत नेत्याशङ्क्याह—'जम्बुद्दीवे णं भन्ते!'इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे सर्वे प्राणाः–द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सर्वे जीवाः–पञ्चेन्द्रियाः सर्वे भूताः–तरवः सर्वे सत्त्वाः–पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः, अनेन च सांव्यवहारिकराशिविषयक एवायं प्रश्नः, अनादिनिगोदनिर्गतानामेव प्राणजीवादिरूपविशेषपर्यायप्रतिपत्तेः, पृथिवीकायिकतया अप्कायिकतया तेजस्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पतिकायिकतया उपपन्नपूर्वाः–उत्पन्नपूर्वाः?, भगवानाह—'हंता गोअमा!' एवं गौतम! यथैव प्रश्नसूत्रं तथैव प्रत्युच्चारणीयं पृथिवीकायिकतया यावद्वनस्पतिकायिकतया उपपन्नपूर्वाः कालक्रमेण संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वे प्राणादयो जीवविशेषा युगपदुत्पन्नाः सकलजीवानामेककालं जम्बूद्वीपे पृथिव्यादिभावेनोत्पादे सकलदेवनारकादिभेदाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथा जगत्स्वभावादिति, कियन्तो वारानुत्पन्ना इत्याह–असकृद्–अनेकशः अथवा अनन्तकृत्वः–अनन्तवारान् संसारस्यानादित्वादिति । अथ जम्बूद्वीपेतिनाम्नो व्युत्पत्तिनिमित्तं जिज्ञासिषुः पृच्छति—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादकस्य मुद्रण-शुद्धेः स्खलनत्वात् शिर्षक-स्थाने 'सू० १७७-१७८' मुद्रितं, तत् अशुद्धं, अत्र सू० '१७४-१७६' एव वर्तते

से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ जम्बुदीवे २?, गो०! जम्बुदीवे णं दीवे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे जम्बूरुक्खा जम्बूवणा जम्बूवणसंडा णिच्चं कुसुमिआ जाव पिंडिममंजरिवडेंसगधरा सिरीए अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति, जम्बूए सुदंसणाए अणाढिएणामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ जम्बुदीवे दीवे इति। (सूत्रं १७७) तए णं समणे भगवं महावीरे मिहिलाए णयरीए माणिभद्दे चेइए बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं साविआणं बहूणं देवाणं बहूणं देवीणं मज्झगए एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ जम्बूदीवपण्णत्ती णामत्ति अज्जो! अज्झयणे अट्ठं च हेउं च पसिणं च कारणं च वागरणं च भुज्जो २ उवदंसेइत्तिवेमि (सूत्रं १७८)॥ इति श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रं समाप्तम्॥ ग्रंथाग्रं०४१४६॥

'से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ–जम्बुदीवे दीवे'इत्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते जम्बूद्वीपो द्वीपः?, भगवानाह–गौतम! जम्बूद्वीपे २ तत्र तत्र देशे तस्य देशस्य २ तत्र तत्र प्रदेशे बहवो जम्बूवृक्षाः एकैकरूपाः विरलस्थितत्वात् तथा बहूनि जम्बूवनानि–जम्बूवृक्षा एव समूहभावेन स्थिताः अविरलस्थितत्वात् 'एकजातीयतरुसमूहो वन'मिति वचनात्, तथा बहवो जम्बूवनखण्डाः–जम्बूवृक्षसमूहा एव विजातीयतरुमिश्रिताः, 'अनेकजातीयतरुसमूहो वनखण्ड' इति वचनात्, तत्रापि जम्बूवृक्षाणामेव प्राधान्यमिति प्रस्तुते वर्णकसाफल्यं, अन्यथा अपरवृक्षाणां वनखण्डैर्निमित्तभूतैर्जम्बूद्वीपपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वेऽसाङ्गत्यात्, ते च कथंभूता इत्याह–नित्यं–सर्वकालं कुसुमिताः यावत्पदात् 'णिच्चं माइया णिच्चं लवइआ णिच्चं थवइआ जाव णिच्चं कुसुमिअमाइअलवइअथवइअगुलइअगोच्छइअजमलिअजुवलिअविणमिअसुविभत्त' इति ग्राह्यम्, एतद्व्याख्यानं प्राग्वनखण्डवर्णके कृतमिति ततो ज्ञेयं, उक्तवर्णकोपेताश्च वृक्षाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रिया अतीव उपशोभमानास्तिष्ठन्ति, इदं च नित्यकुसुमितत्वादिकं जम्बूवृक्षाणामुत्तरकुरुक्षेत्रापेक्षया बोध्यं, अन्यथैषां प्रावृट्कालभाविपुष्पफलोदयवत्त्वेन प्रत्यक्षबाधात्, एतेन च जम्बूवृक्षबहुलो द्वीपो जम्बूद्वीप इत्यावेदितं भवति, अथवा जम्ब्वां सुदर्शनाभिधानायामनादृतनामा–पूर्वं जम्बूवृक्षाधिकारे व्याख्यातनामा देवो महर्द्धिको यावत्करणात् 'महज्जुईए'इत्यादि ग्राह्यं, पल्योपमस्थितिकः परिवसति, अथ तेनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–स्वाधिपत्यनादृतनामदेवाश्रयभूतया जम्ब्वोपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीप इति, सूत्रैकदेशो ह्यपरं सूत्रैकदेशं स्मारयतीति 'अदुत्तरं च णं जम्बुद्दीवस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जण्ण कयाइ ण आसी ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सइ जाव णिच्चे' इति ज्ञेयम्, जीवाभिगमादर्शे तथादर्शनात्, एतेन किमाकारभावप्रत्यवतारो जम्बूद्वीप इति चतुर्थः प्रश्नो निर्व्यूढ इति। अथ प्रस्तुततीर्थद्वादशाङ्गीसूत्रसंसूत्रणाविश्वकर्मा श्रीसुधर्मस्वामी स्वस्मिन् गुरुत्वाभिमानं परिजिहीर्षुः प्रस्तुतग्रन्थनामोपदर्शनपूर्वकं निगमनवाक्यमाह—'तए ण'मित्यादि, शाश्वतत्वाच्छाश्वतनामकत्वाच्च सद्रूपोऽयं जम्बूद्वीपरूपो भावः, सन्तं हि भावं नापलपन्ति वीतरागास्ततः श्रमणो भगवान् महावीरो मिथिलायां नगर्यां माणिभद्रे चैत्ये बहूनां श्रमणानां बहूनां श्रमणीनां बहूनां श्रावकाणां बहूनां श्राविकाणां बहूनां देवानां बहूनां देवीनां मध्यगतो न पुनरेकान्ते एकतरस्य कस्यचित् पुरतः एवं–यथोक्तमुक्तानुसारेणेत्यर्थः आख्याति–प्रथमतो वाच्यमात्रकथनेन एवं भाषते–विशेषवचनकथनतः एवं प्रज्ञापयति–व्यक्तपर्यायवचनतः एवं प्ररूपयत्युपपत्तितः, आख्येयस्याभिधानमाह–जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरिति नाम षष्ठो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाङ्गमिति शेषः, एतच्च ग्रन्थाग्रेण साधिकैकचत्वारिंशच्छतश्लोकमानं, यत्तु श्रीमलयगिरिपादैः सूर्यप्रज्ञप्तिटीकायां द्वितीयप्राभृतप्राभृते 'एवामेव सपुव्वावरेणं जम्बुद्दीवे दीवे चउद्दस सलिलासयसहस्साइं छप्पण्णं च सलिलासहस्साइं भवंतीतिमक्खाय'मित्यंतं श्लोकसहस्रचतुष्टयमानमुक्तं, ज्योतिष्काधिकारसूत्रमीलनेन च सप्तचत्वारिंशच्छताधिकमपि, तत्तु यावत्पदसंग्रहेण जन्माधिकारबृहद्वाचनाप्रक्षेपेण च तावत्परिमाणं सम्भाव्यत इति बोध्यं। अत्र गुणान् विभावयन्नाह– 'अज्जो अज्झयणे अट्ठं च हेउं च पसिणं च'इत्यादि, आरात्–सर्वपापाद् दूरं यातः आर्यः–श्रीवर्द्धमानस्वामी अत एव सर्वसावद्यवर्जकत्वेन 'सावद्यं निरर्थकं तुच्छार्थकं च न ब्रूयादि'ति वक्तृप्रामाण्येन वचनप्रामाण्यमावेदितं भवति, अथवा श्रीसुधर्मस्वामिसम्बोधनं श्रीजम्बूस्वामिनं प्रति हे आर्य! इति, अध्ययने–प्रस्तुतजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिनामके स्वतन्त्राध्ययने न तु शस्त्रपरिज्ञादिवत् श्रुतस्कन्धाद्यन्तर्गते अर्थं च चाः परस्परं समुच्चयार्थाः हेतुं च प्रश्नं च कारणं च व्याकरणं च भूयो भूयो–विस्मरणशीलश्रोत्रनुग्रहार्थं वारंवारं प्रकाशनेन अथवा प्रतिवस्तु नामार्थादिप्रकाशनेनोपदर्शयतीति सम्बन्धः, अनेन गुरुपारतन्त्र्यमभिहितं, तत्रार्थो जम्बूद्वीपादिपदानामन्वर्थः, स यथा 'से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ–जम्बुद्दीवे दीवे?, गोअमा! जम्बुद्दीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे जम्बूरुक्खा जम्बूवणा जम्बूवणसंडा णिच्चं कुसुमिआ जाव पिंडिममंजरिवडेंसगधरा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा चिट्ठंति, जम्बूए अ सुदंसणाए अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ–जम्बुद्दीवे २' इति, तथा हेतुः–निमित्तं स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

यथा 'पभू णं भन्ते! चंदे जोइसिंदे जोइसराया चन्दवडेंसए विमाणे चन्दाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं महयाहयणट्टगीअवाइअ जाव दिवाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?, गोअमा! णो इणट्ठे समट्ठे' इत्यत्राभिधातव्यार्थस्य 'से केणट्ठेणं जाव विहरित्तए?, गोअमा! चन्दस्स जोइसिंदस्स० चन्दवडेंसए विमाणे चन्दाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइअखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूईओ जिणसकहाओ संनिक्खित्ताओ चिट्ठंति, ताओ णं चन्दस्स अन्नेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ, से तेणट्ठेणं गोअमा! णो पभू'त्ति, इदं सूत्रं हेतुप्रतिपादकम्, तथा प्रश्नः–शिष्यपृष्टस्यार्थस्य प्रतिपादनरूपः, यथा लोकेऽप्युच्यते–अनेन प्रश्नानि सम्यक् कथितानि, अन्यथा सर्वथा सर्वभावविदो भगवतः प्रष्टव्यार्थाभावेन कुतः प्रश्नसम्भव इति, यथा–'कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे केमहालए णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे किंसंठिए णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे किमायारभावपडोआरे णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे पण्णत्ते?, गोअमा! अयण्णं जम्बुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूअसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकण्णिआसंठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए एगं जोअणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोअणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तिण्णि अ कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते' इति, तथा करणं–अपवादो विशेषवचनमितियावत्, तच्च नवरंपदगर्भितसूत्रवाच्यं, यथा–'कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे एरवए णामं वासे पण्णत्ते?,

॥५४१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

गोअमा! सिहरिस्स उत्तरेणं उत्तरलवणसमुद्दस्स दक्खिणेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे एरवए णामं वासे पण्णत्ते, खाणुबहुले कंटकबहुले एवं जच्चेव वत्तव्वया भरहस्स सच्चेव सव्वा निरवसेसा णेअव्वा सओअवणा सणिक्खमणा सपरिणिव्वाणा' इत्यतिदेशसूत्रे णवरं एरावओ चक्कवट्टी देवे एरावए से तेणट्ठेणं एरावए वासे' इति, तथा व्याकरणं–अपृष्टोत्तररूपं, तद्यथा—जया णं भन्ते! सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ?, गोअमा! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोअणसए एगूणतीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ' इत्यन्तसूत्रे 'तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एगवीसाए अ जोअणस्स सट्ठिभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ' इत्येवंरूपेण सूत्रेण सूर्यस्य चक्षुःपथप्राप्तता शिष्येणापृष्टापि परोपकारैकप्रवृत्तेन भगवता स्वयं व्याकृतेति, इति ब्रवीमीति सुधर्म्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्रति ब्रूते अहमिति ब्रवीमि, कोऽर्थः?–गुरुसम्प्रदायागतमिदं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिनामकमध्ययनं, ननु मया स्वबुद्ध्योत्प्रेक्षितमिति, उपदर्शयतीत्यत्र वर्त्तमाननिर्देशस्त्रिकालभाविष्वर्हत्सु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्युपाङ्गविषयकार्थप्रणेतृत्वरूपविधिदर्शनार्थं, अत्र च ग्रन्थपर्यवसाने श्रीमन्महावीरनामकथनं चरममङ्गलमिति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सप्तम-वक्षस्कारः परिसमाप्तः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविसर्पयमानऐदंयुगीननराधिपतिचक्रवर्तिसमानश्रीअकब्बर-सुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजन्तुजाताभयदानशत्रुंजयादिकरमोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृ-तिबहुमानयुगप्रधानोपमानसाम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजय-सूरीश्वरपदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्री-शान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ रत्नमञ्जूषानाम्न्यां ज्यो-तिष्काधिकारवर्णनो नाम सप्तमो वक्षस्कारः समाप्तः, तत्समाप्तौ च

समाप्तेयं श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्युपाङ्गवृत्तिः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमसूत्र-१८ [उपांगसूत्र-७] ‘जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति’ परिसमाप्तः

प्रशस्तिः ।

श्रेयःश्रीप्रतिभूप्रभूततपसा यो मोहराजं रिपुं, दध्वंसे सहसा श्रितो गतमलं ज्ञानं च यः केवलम् ।
यो जुष्टश्च सदा त्रिविष्टपसदां वृन्दैस्तथा तथ्यवाग्, यस्तीर्थाधिपतिः श्रियं स ददतां श्रीवीरदेवः सताम् ॥ १ ॥

अर्हत्स्विवात्र निखिलेषु गणाधिपेषु, वामेयदेव इव यो विदितो जगत्याम् ।
आदेयतामदधदद्भुतलब्धिधाम, श्रीगौतमोऽस्तु सम (मम) पूरितसिद्धिकामः ॥ २ ॥

यं पञ्चमं प्रथमतोऽपि रतोपयेमे, श्रीवीरपट्टपटुलक्ष्मिसरोरुहाक्षी ।
रुद्राङ्कितेषु गणभृत्सु सुधर्म्मनामा, भूयादयं सुभगतानिधिरिष्टसिद्ध्यै ॥ ३ ॥

तस्य प्रभोः स्थविरवृन्दपरम्परायां, तत्तल्लसत्कुलगणावलिसम्भवायाम् ।
जातः क्रमाद् वटगणेन्द्रतपस्विसूरेः, श्रीमांस्तपागण इति प्रथितः पृथिव्याम् ॥ ४ ॥

पद्मावतीवचनतोऽभ्युदयं विभाव्य, यत्सूरये स्तवनसप्तशतीं स्वकीयाम् ।
सूरिर्जिनप्रभ उपप्रददे प्रथायै, सोऽयं सतां तपगणो न कथं प्रशस्यः? ॥ ५ ॥

तत्रानेके बभूवुः सुविहितगुरवः श्रीजगच्चन्द्रमुख्याः, दोषायां वा दिवा वा सदसि रहसि वा स्वक्रियास्वेकभावाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिक्रोडैरिवोर्वीं चिकिलभरगता दुष्प्रमादावमग्ना, यैरुदधे वितन्द्रैः स्वपरहितकृते सत्क्रिया सत्क्रियार्हा ॥ ६ ॥ प्रशस्तिः.
अदुष्यं वैदुष्यं चरणगुणवैदुष्यसहितं, प्रमादाद्वैमुख्यं प्रवचनविधेः सत्कथकता ।
गुणौघो यस्येत्थं न खलदुर्वाक्यविषयः, क्रमादासीदस्मिन् परमगुरुरानन्दविमलः ॥ ७ ॥
अन्तर्बाह्यमिति द्विधापि कुमतं श्रद्धावतां स्वागतं, निःश्रद्धैस्तु यथाशयं प्रकटितं विच्छिन्दतोऽस्य प्रभोः ।
बाह्यध्वान्तविभेदिनो दिनमणेः साम्यं न रम्यं न वा, ध्वान्तद्वैतभिदोऽपि मन्दिरमणेः संरक्षतोऽधस्तमः ॥ ८ ॥
स्वगच्छे स्वस्मिंश्च प्रथयति तरां स्म प्रथमतस्तथा साधोश्चर्यां ध्रुवसमय एंव प्रभुरसौ ।
यथा सैतत्पट्टाधिपतिपुरुषे संयतगणे, क्रमाद्धुर्वीं गुर्वीं प्रजनितयशस्काऽनुववृते ॥ ९ ॥
तत्पट्टभूषणमणिः सुगुरूक्तधर्मबीजप्रवर्द्धनपटुर्भरतक्षमायाम् ।
सूरीश्वरो विजयदानगुरुर्बभूव, के वादिनो विजयदा न बभूवुरस्य? ॥ १० ॥
नालीकनीरनिधिनिर्जरसिन्धुसेवां, चक्रुश्चतुर्मुखचतुर्भुजचन्द्रचूडाः ।
यस्य प्रतापपरितापभृतो न भीता, एते जडाश्रयिण इत्यपवादतोऽपि ॥ ११ ॥ ॥५४३॥
तत्पट्टं गुरुहीरहीरविजयो विभ्राजयामासिवान्, जाग्रद्भाग्यनिधिः प्रियागमविधिश्चारित्रिणां चावधिः ।
यं सम्प्राप्य जगत्त्रयैकसुभगं मुक्तो मिथो मत्सरः, श्रीवाग्भ्यामिव दीर्घकालजनितो ज्ञानक्रियाभ्यामपि ॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौभाग्यं यस्य नाम्नो नृपसदसि गुणिष्वादितायां प्रसिद्धेः, सौभाग्यं देशनाया अकबरनृपतिः पादयोः पादुकार्च्चा ।
सौभाग्यं यस्य पाणेरुपपदविजयः सेनसूरीश्वरोऽसौ, सौभाग्यं दर्शनस्य त्वहमहमिकया स्वान्यलोकोपपातः ॥१३॥
इदानीं तत्पट्टे गुरुविजयसेनो विजयते, कलौ काले मूर्त्तः सुविहितजनाचारनिचयः ।
विरेजे राजन्वान् शशधरगणो येन विभुना, गुणग्रामो यस्माद् भवति विनयेनैव सुभगः ॥ १४ ॥
खलास्तेजोराशिं चरणगुणराशिं सुविहिता, विनेयाश्चिद्राशिं प्रतिवचनराशिं कुमतिनः ।
कविः कीर्त्ते राशिं वरविनयराशिं च गुरवो, विदुः स्थाने जाने शुचिसुकृतराशिं पुनरमुम् ॥ १५ ॥
गुरोरस्य श्रुत्वा श्रवणमधुरं चारु चरितं, स्वगन्धर्वोद्गीतं शुचिगुणगणोपार्जनभवम् ।
चमत्कारोत्कर्षात् ससलिलसहस्रानिमिषदृक्, पटक्लेदक्लेशं सुबहु सहते गिर्यसहनः ॥ १६ ॥
तेषां गणे गुणवतां धुरि गण्यमानः, श्रीवाचकः सकलचन्द्रगुरुर्बभूव ।
मेधाविषु प्रथमतः प्रथमानकीर्त्तिः, स्फूर्तिर्यदीयकविकर्मणि सुप्रसिद्धा ॥ १७ ॥
पुनः पुनः संस्मृतिमीयुषीणां, प्रतिक्रियेयं यदुपक्रियाणाम् ।
पुनः पुनर्लोचनसान्द्रभावः, पुनः पुनर्निःश्वसनस्वभावः ॥ १८ ॥
तेषां शिष्याणुनेयं गुरुजनविहितानुग्रहादेव जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तिः स्वपरहितकृते शान्तिचन्द्रेण चक्रे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षे श्रीविक्रमार्काद्विधुशरशरभूवक्रधात्री १६५१ प्रमाणे, राज्ये प्राज्ये श्रिया श्रीअकबरनृपतेः पुण्यकारुण्यसिन्धोः १९

अस्योपाङ्गस्य गाम्भीर्यान्मदीयमतिमान्द्यतः । सम्प्रदायव्यपायाच्च, पूर्ववृत्तिनिवृत्तितः ॥ २० ॥
विरुद्धमागमादिभ्यो, यदत्र लिखितं मया । धीलोचनैस्तदालोच्य, शोध्यं सानुग्रहैर्मयि ॥ २१ ॥ युग्मम् ॥
तुष्यन्तु साधवः सर्वे, मा रुष्यन्तु खला मयि । नमस्करोमि निःशेषान्, प्रीत्या भीत्या क्रमादिमान् ॥ २२ ॥
गम्भीरमिदमुपाङ्गं यथामति विवृण्वता विशदमतिना । यदवापि मया कुशलं कुशलमतिस्तेन भवतु जनः ॥२३॥
अथे यावल्लीलौकसि नभसि नक्षत्रकुसुमव्रजं राज्ञः श्यामाभिगमसमये पूरिततरम् ।
मृजाकारः सूर्यः करबहुकरेणापनयति, ध्रुवा तावद्भूयादियमखिललोकैः परिचिता ॥ २५ ॥
अथ शोधनसमयगता पुरोऽनुसन्धीयते प्रशस्तिरियम् । तपगणसाम्राज्यरमां श्रयति श्रीविजयसेनगुरौ ॥ २६ ॥
यत्सौभाग्यमनुत्तरं गुणगणो येषां वचोगोचरातीतः कोऽप्यभवत् पुरापि विनयाधारः (सदा) पूजितः ।
हित्वा येन पतिंवरावदपरान् यानेव सच्चातुरीयुक्ताचार्यपदव्युदाररचिता सौवश्रियेऽशिश्रियत् ॥ २७ ॥
यद्रूपं मदनं सदा विमदनं निर्म्माति रम्यश्रिया, यत्कीर्त्तिश्च पदातिकं वितनुते कान्त्या निशानायकम् ।
चित्रं सञ्चिनुते च चेतसि सतां यद्देशनावाक् सुधादेश्या शासनदीक्षिकृच्च सतपो यद् ध्यानमत्यद्भुतम् ॥ २८ ॥
ते श्रीअकब्बरमहीधरदत्तमान–विख्यातिमद्विजयसेनगणाधिपानाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दन्ति पट्टयुवराजपदं दधानाः, श्रीसूरयो विजयदेवयतिप्रधानाः ॥ २९ ॥
श्रीविजयसेनसूरी—श्वरगणनायकनिदेशकरणचणाः ।
चत्वारोऽस्या वृत्तेः शुद्धिकृते सङ्गता निपुणाः ॥ ३० ॥ तथाहि—
श्रीसूरेर्विजयादिदानसुगुरोः श्रीहीरसूरेरपि, प्राप्ता वाञ्छयतत्त्वमद्भुततरं ये सम्प्रदायागतम् ।
ये जैनागमसिन्धुतारणविधौ सत्कर्णधारायिता, ये ख्याताः क्षितिमण्डले च गणितग्रन्थज्ञरेखाभृतः ॥ ३१ ॥
लुम्पाकमुख्यकुमतैकतमःप्रपञ्चे, रोचिष्णुचण्डरुचयः प्रतिभासमानाः ।
श्रीवाचका विमलहर्षवराभिधानास्तेऽत्रादिमा गुणगणेषु कृतावधानाः ॥ ३२ ॥
तथा—ये संविग्नधुरन्धराः समभवन्नाबालकालादपि, प्रज्ञावत्स्वपि ये च बन्धुरतराः प्रापुः प्रसिद्धिं पराम् ।
श्रीवीरे गणधारिगौतम इव श्रीहीरसूरौ गुरौ, ये राजद्विनयास्तदातनसुधाभानोः पदुर्वाक्सुधाम् ॥ ३३ ॥
सत्तर्कलक्षणविशालजिनागमादिशास्त्रावगाहनकलाकुशलाद्वितीयाः ।
श्रीसोमयुगूविजयवाचकनामधेयास्ते सद्गुणैरपि परैर्ध्रुवमप्रमेयाः ॥ ३४ ॥
किञ्च—ये वैरङ्गिकतादिकैर्वरगुणैः सम्प्राप्तसद्गौरवाः, सर्वादेयगिरः कलावपि युगे साम्नायजैनागमाः ।
जज्ञुः श्रीवरवानरर्षिविबुधास्तच्छिष्यमुख्याश्च ये, किं तन्मूर्त्तिरिवापरेत्यभिमतास्तैस्तैर्गुणैर्धीमताम् ॥ ३५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रज्ञागुणगुरुगेहं परिभावितभूरिशास्त्रवरतत्त्वाः । श्रीआनन्दविजयविबुधपुङ्गवास्ते तृतीयास्तु ॥ ३६ ॥

अपि च—येऽद्वैतस्मृतयः कुशाग्रधिषणाः सल्लक्षणाम्भोधराश्छन्दोऽलंकृतिकाव्यवाङ्मयमहाभ्यासैर्भृशं विश्रुताः ।
सिद्धान्तोपनिषत्प्रकाशनपरा विज्ञावतंसायितास्तत्तन्नूतनशास्त्रशुद्धिकरणे पारीणतां संश्रिताः ॥ ३७ ॥
श्रीकल्याणविजयवरवाचकशिष्येषु मुख्यतां प्राप्ताः । श्रीलाभविजयविबुधास्ते तुर्या इह बहुद्युक्ताः ॥ ३८ ॥
एतेषां प्रतिभाविशेषविलसत्तीर्थे प्रथामागते, नानाशास्त्रविचारचारुसलिलापूर्णे चतुर्णामपि ।
स्नाता वाचकवाच्यदूषणमलान्मुक्ता सुवर्णाञ्चिता, सत्यश्रीरजनिष्ट शिष्टजनताकाम्यैव वृत्तिः कनी ॥ ३९ ॥
श्रीमद्विक्रमभूपतोऽम्बरंगुर्णक्ष्माखण्डदाक्षायणीप्राणेशाङ्कितवत्सरे (१६६०)ऽतिरुचिरे पुष्येन्दुभूवासरे ।
राधे शुद्धतिथौ तथा रसमिते श्रीराजधन्ये पुरे, पार्श्वे श्रीविजयादिसेनसुगुरोः शुद्धा समग्राऽभवत् ॥ ४० ॥

श्रीशान्तिचन्द्राभिधवाचकेन्द्रशिष्येष्वनेकेषु मणीयमानाः ।
ध्वस्तान्तरध्वान्तजिनेन्द्रचन्द्रराद्धान्तरम्यस्मृतिलब्धमानाः ॥ ४१ ॥

अस्यामनेकशो लिखनशुद्धिगणनादिविधिषु साहाय्यम् । गुरुभक्ताः कृतवन्तः श्रीमन्तस्तेजचन्द्रबुधाः ॥ ४२ ॥
दैवादिन्द्रातिथितां गतेष्विदंवृत्तिसूत्रधारेषु । तन्मन्त्रिनिजमनीषाविशेषमिव वीक्षितुं व्यक्तम् ॥ ४३ ॥
तेषामन्तिषदामखिलशिष्यसमुदायमुख्यतां दधताम् । गुरुकार्ये धुर्याणां पण्डितवररत्नचन्द्राणाम् ॥ ४४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

श्रीतपगणपूर्वाद्रिसूरैः श्रीविजयसेनसूरिवरैः । निजहस्तेन वितीर्णा प्रवर्त्तनायै प्रसादपरैः ॥ ४५ ॥
बहुभिश्च सम्मतेयं कृता तदा विदितसमयतत्त्वार्थैः । श्रीविजयदेवसूरिश्रीवाचकमुख्यगीतार्थैः ॥ ४६ ॥
रत्नानीव प्रमेयानि, नानाशास्त्रखनीनि चेत् । भूयांसि लिप्सवो यूयं, विज्ञरत्नवणिग्वराः ॥ ४७ ॥
श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तेरुपाङ्गस्य सविस्तरा । प्रमेयरत्नमञ्जूषा, वृत्तिरेषा तदेक्ष्यताम् ॥ ४८ ॥ युग्मम् ।
श्रीशान्तिचन्द्रवाचकशिष्यवरो विबुधरत्नचन्द्रगणिः । अस्या बह्वादर्शानलीलिखद् भक्तियुक्तमनाः ॥ ४९ ॥
वाच्यमाना श्रूयमाणा, गीतार्थैः श्रावकोत्तमैः । शोध्यमाना लेख्यमाना, जीयासुस्ते चिरं भुवि ॥ ५० ॥
तच्छिष्यो धनचन्द्रः स्फुरदुरुधीर्लिपिकलाविधिवितन्द्रः । अकरोत्प्रथमादर्शं सूत्रार्थविवेचने चतुरः ॥ ५१ ॥
इति श्रीशान्तिचन्द्रगणिवाचकविरचितायाः प्रमेयरत्नमंजूषानाम्न्याः श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तेः प्रशस्तिः सम्पूर्णा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

आगम [18/3]

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति (उपांगसूत्र-७/३)” [मूलं एवं शांतिचंद्र विहिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

“जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति” मूलं एवं वृत्ति:” नामेण परिसमाप्त:

“सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि, भाग-25

आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

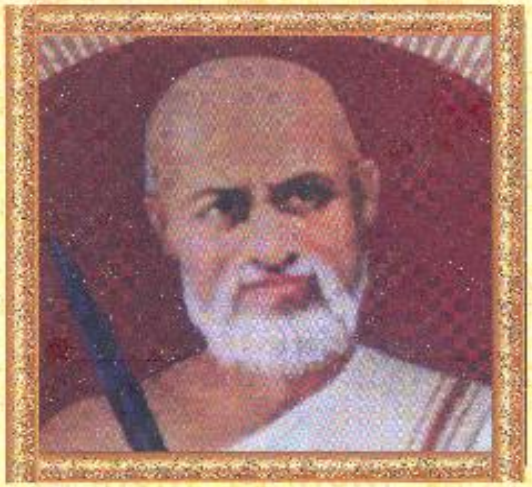

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

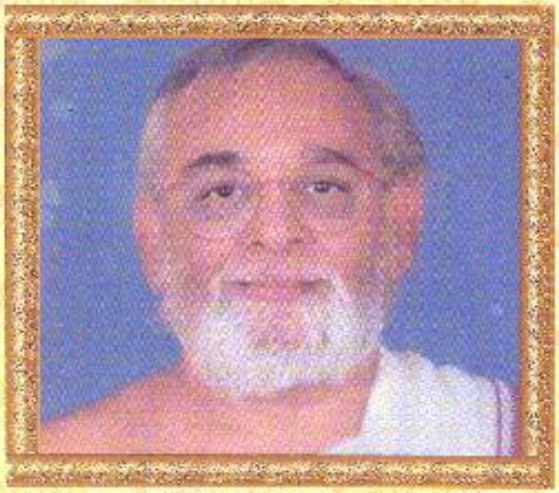

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदावाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

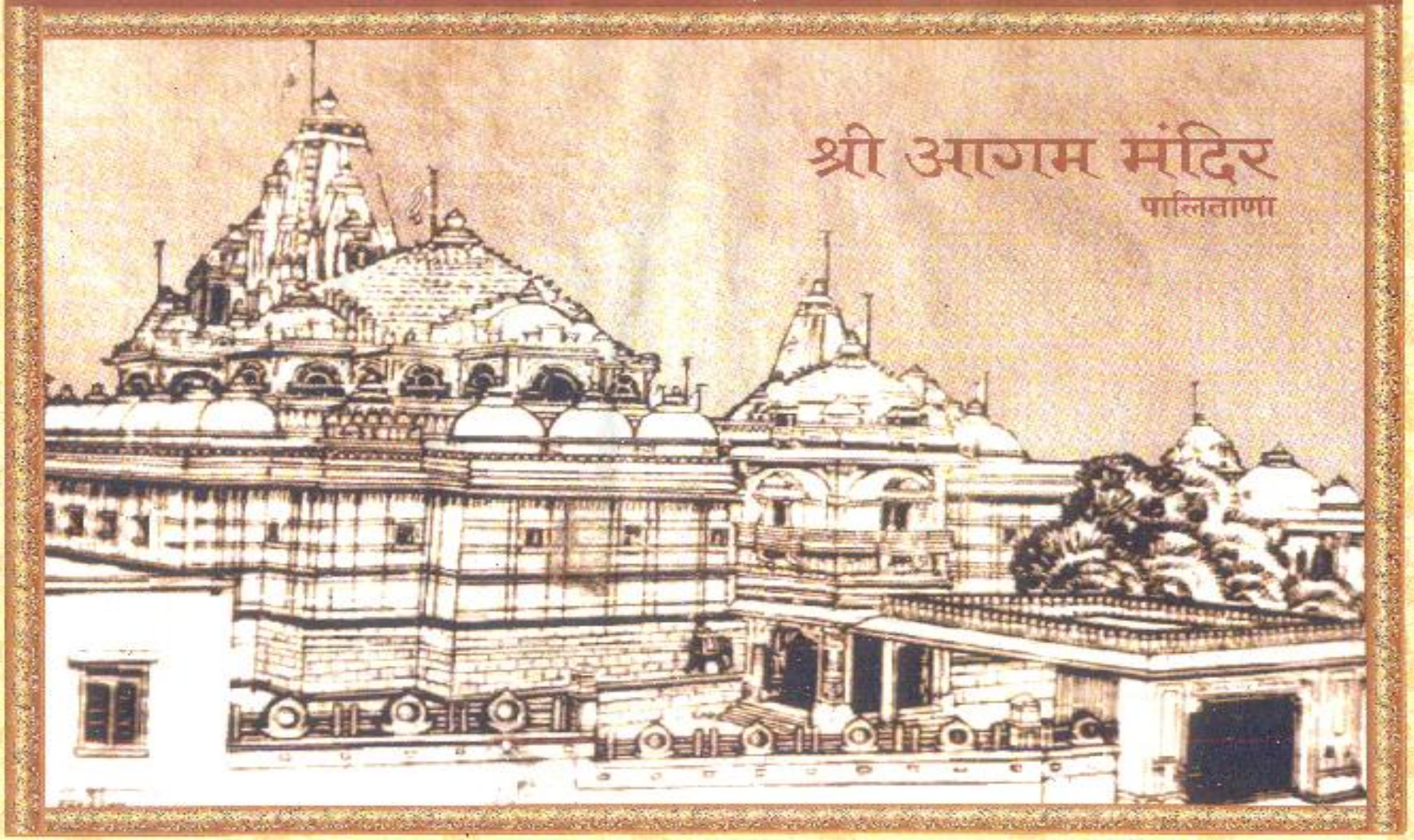

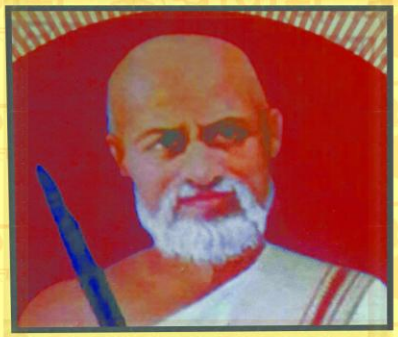

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम १८

"जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः [३]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]